

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180156

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP-902-26470-5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 928/H386

Accession No. H565

Author द्विवेदी, ज.

Title हिन्दू के नाव और नाव II

This book should be returned on or before the date last marked below.

हिंदी के कवि और काव्य

(भाग २)

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

१९३९

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

प्रकाशक—
हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत,
इलाहाबाद

ग्रन्थ { कपड़े की जिल्द ४)
सादी जिल्द ३॥)

मुद्रक—
गुरुप्रसाद, मैनेजर
कायस्थ पाठशाला प्रेस व प्रिंटिंग स्कूल, प्रयाग

विषय-सूची

संत-साहित्य—भूमिका	...	...	१—२८
कवोर	...	...	१—६०
नानक	...	...	६१—७३
बादू	...	...	७५—१०२
सुंदरदास	...	...	१०३—१२४
धरनीदास	...	...	१२५—१३९
पलटू	...	...	१४१—१६३
जगजीवन साहिब	...	...	१६५—१८४
भीखा साहिब	...	...	१८५—१९९
चरनदास	...	...	२०१—२१७
रैदास जी	...	...	२१९—२२४
मलूक दास	...	...	२२५—२३३
दयाबाई	...	...	२३५—२४०
सहजोबाई	...	...	२४१—२४६
दरिया साहब (बिहार वाले) } दरिया साहब (माड़वार वाले) }	...	...	२४७—२५४
गुलाल साहब	...	...	२५५—२६१
बुल्ला साहब	...	...	२६३—२६७
यारी साहब	...	...	२६९—२७३

दूलन दास	...	...	२५—२८३
गरीबदास	...	...	२८५—३००
काष्ठजिह्वा स्वामी	...	...	३०१—३०५
नामदेव जी	...	...	३०७—३०६
सदना जी	...	...	३११—३१३
भर्मदास	...	...	३१५—३२४

संत-साहित्य

भूमिका

उत्तरकालीन हिंदी-साहित्य या दूसरे शब्दों में रीति-काल की कविता को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अलंकारों के बोझ से असल चीज दब गई, शब्दाडंबर ही सब कुछ हो गया। चमत्कार और अर्थगौरव की भी कमी नहीं है, बिहारी आदि कुछ रीतिकालीन कवियों में। साहित्य मात्र का एक उद्देश्य होता है 'सत्य' की खोज और पाठकों के सामने शब्दों द्वारा उस का व्यक्तीकरण। पर यह तो कबीर आदि संतों की वाणी में ही मिलता है। इन की बानियों में असल चीज बिना किसी मुलभूत के, बिना किसी आडंबर के रखी हुई है। और फिर जो 'सत्य' है वही 'शिव' हो सकता है, और वही वास्तव में 'सुंदर' है। हम देखते हैं कि उत्तर-कालीन कवियों के काव्य में 'सौंदर्य क्या है', इस के बारे में बड़ी भ्रांत धाराणाएँ हो गई थीं। 'रस-धयोरी' के पीछे पड़ कर कविता-कामिनी को कुछ बाद के कवियों ने इतनी भड़ी बना डाला जिस का कुछ ठिकाना नहीं।

पर यहाँ इन सब बातों पर विचार करने का अवसर नहीं है। हमें संक्षेप से यह देखना है कि संतों की बानियों में कौन से संदेश भरे पड़े हैं, जीवन की व्याख्या क्या है, इन के अनुसार इन की कविता का मुख्य विषय क्या था, तथा इस की विशेषताएँ क्या थीं, जो इस को अन्य काल की कविताओं से बिल्कुल अलग कर देती हैं।

संतसाहित्य का मुख्य विषय परमार्थसाधन तो है ही, पर इन का मार्ग, इन के उपदेश, इन के समकालीन अथवा आस-पास के सूर, तुलसी आदि महात्माओं से कुछ भिन्न थे। साकार उपासना इन के मत से ठीक नहीं थी। परमार्थसाधन संबंधी इन के मार्ग और उपदेश अधिक विकसित और व्यापक थे।

हिंदी-साहित्य के मध्य-काल को साहित्य के इतिहास के अनुसार 'भक्ति'-काल या 'धार्मिक'-काल कहते हैं। इस का आरंभ बीरगाथा काल के प्रथम उत्थान के समाप्त होने पर अर्थात् चौदहवीं शताब्दी से आरंभ होता है। हिंदी का भक्ति-काव्य किस प्रकार की परिस्थितियों में उद्भूत हुआ यह भी संक्षिप्त रीति से जान लेना आवश्यक है, हम देखते हैं कि हमारे भक्ति-काव्य की उत्पत्ति मोटी तौर से देश में मुसलमानों के राज्य स्थापित हो जाने के बाद से ही आरंभ होती है, और ज्यों ज्यों यहाँ मुसलिम राज्य की नींव दृढ़ होती गई त्यों त्यों भक्ति-काव्य की विविध शाखाएँ भी प्रस्फुटित होती गईं। अकबर जहाँगीर काल में

जब भारत में मुसलिम राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था वही समय हमारे वैष्णव-काव्य और संत-साहित्य की परम उन्नति का भी था । मुसलिम राज्य की अवनति के साथ ही श्रेष्ठ भक्ति-काव्य का प्रायः लोप, वीरगाथा का द्वितीय उत्थान तथा रीतिकाव्य की उन्नति आरंभ होती है ।

यह मानी हुई बात है कि देश के साहित्य की उत्पत्ति, विकास तथा अवनति आदि पर तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता; अब हमें यह देखना है कि वीरगाथा के प्रथम उत्थान के अंत और साथ ही भक्ति-काव्य की उत्पत्ति से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का क्या संबंध है ।

अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज के निधन के बाद और साथ ही जयचंद को अपनी करतूत का जो फल मिला उस से हिंदुओं का लड़ाई का जोश तो ठंडा हो ही गया, साथ ही देश में एकछत्र राष्ट्रीय भावना का भी लोप हो गया । हिंदू राष्ट्र छोटे छोटे इतने फिरकों में बँट गया था, आपस की फूट और गृहयुद्ध का इतना बोलबाला हो रहा था कि सारी हिंदू जाति ही निस्तेज और निष्प्राण हो रही थी; और किसी भी विदेशी विजेता के लिए यहां पर प्रभुत्व जमा लेना कोई कठिन बात न थी, और हुआ भी ऐसा ही ।

पर साहित्य पर इस का क्या क्या प्रभाव पड़ा ? कड़खों और कड़खैतों की जरूरत नहीं थी । हिंदुओं का युद्धप्रेम, अपने देश और अपने राजा के लिए लड़ मरने का हौसला खतम हो चुका था । सब को अपनी व्यक्तिगत चिंता ही अधिक थी, ऐसी स्थिति में वीरकाव्य या 'जय'-काव्य की कहां गुंजाइश थी । स्पष्ट है कि अब रासो तथा उस ढंग के चारण-काव्य की आवश्यकता ही हिंदुओं को नहीं रह गई ।

पर इस के बाद ही जब देश में विदेशी शासन भी जम कर बैठता दिखाई दिया तब हिंदुओं की आँख खुली । पर अब क्या हो सकता था ? चिड़ियां खेत चुन चुकी थीं अब सिवा खुदा की याद के दूसरा काम ही क्या रह गया ? फलतः हिंदुओं का ध्यान ईश्वराराधन की ओर गया । तत्कालीन इतिहास हमें बताता है कि हिंदू जनता पर नवागत मुसलिम शासकों ने अनेक अमानुषिक अत्याचार किये । हिंदू प्रजा को रोटियों के लाले तो पड़ ही रहे थे साथ ही किसी प्रकार का नागरिक स्वत्व भी उन के पास न रह गया । बात बात पर अपमान, शारीरिक यंत्रणा की तो कोई बात ही नहीं, यहां तक कि हिंदुओं का साफ कपड़े पहनना, या घोड़े आदि की सवारी करना भी अपराध समझा जाने लगा और इस के दंड स्वरूप संपत्ति अपहरण, खाल खिंचवा कर भूसा भर देना, या कम से कम सर मुड़वा कर गधे पर सवार करा शहर में घुमाया जाना आदि बहुत साधारण बातें थीं ।

जो हो, इतिहासों में कहे हुए इन अत्याचारों की तालिका देने का यह अवसर नहीं है । हमारे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि इस प्रकार की घोर राजनैतिक

अशांति और देशव्यापी जातीय विपत्तिकाल में ही हिंदी के भक्ति-काल की नींव पड़ी। प्रारंभिक मुसलिम राजत्वकाल में हिंदू प्रजा को अपना जीवन भारभूत हो गया था और सब ओर उसे नैराश्य का घोर अंधकार ही दिखाई पड़ता था। शाहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण से लेकर तुगलकों के समय तक का तो यह हाल रहा; फिर तैमूर के प्रलयकारी आक्रमण ने हिंदुओं की बँची खुची आशाओं पर भी पानी फेर दिया।

घोर विपत्ति और निराशा में मनुष्य का विश्वास ईश्वर से भी उठ जाता है। सोवियट रूस का ताजा उदाहरण हमारे सामने है। सब से अधिक धर्मप्राण या धर्मभीरु जानि विपत्ति के आघातों से उब कर किस प्रकार अनीश्वरता को अपना सकती है यह हम आधुनिक रूस से भली भाँति सीख सकते हैं। ठीक यही अवस्था उस समय भारत की हो रही थी, पर विधि का विधान कुछ और ही था इस देश के लिये।

उत्तरभारत के इस अवस्था में परिणत होने के कुछ पहले ही दक्षिण में कुछ ऐसे महात्माओं का आविर्भाव हो चुका था जिन्होंने एक अभूतपूर्व भक्ति का स्रोत सारे देश में प्रवाहित कर दिया। सब से पहले (१०७३) स्वामी रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से भक्ति का उपदेश दिया और शिक्षित तथा सुसंस्कृत हिंदू जनता क्रमशः इन की ओर आकृष्ट होती आ रही थी। फिर गुजरात में (सं० १२५४-१३२३) स्वामी मध्वाचार्य का आविर्भाव हुआ। इन्होंने द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय की नींव डाली। इधर देश के उत्तरपूर्व भाग में जयदेव की कृष्ण-भक्ति का युग आया और इस के प्रधान अनुयायी हुए मैथिलकोकिल विद्यापति। 'अभिनव जयदेव' इन का नाम ही पड़ गया। परंतु इस भक्तिस्रोत के उत्तरभारत में प्रवाहित करने का श्रेय स्वामी रामानंद (१५ वीं शताब्दी) को मिला। यह स्वामी रामानुज की शिष्यपरंपरा में थे। इन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना को प्रधानता दी। इन्हीं के शिष्य कबीर हुए जिन्होंने भक्ति को एक नया ही रूप दे दिया जिस पर आगे विचार करेंगे। इसी समय के आस पास स्वामी वल्लभाचार्य का आविर्भाव हुआ जिन्होंने साकार कृष्णभक्ति को विशेष रूप दिया। इन्हीं की शिष्यपरंपरा में सूरदास, नंददास जैसे रत्नों का आविर्भाव हुआ जिन की विभूतियों से हिंदी साहित्य को उचित गर्व है।

पर जैसे एक ओर प्राचीन सगुण उपासना का प्रचार हुआ और उस के अनुरूप तुलसी, सूर आदि कवियों की रचनाओं से हिंदीकाव्य फला फूला उसी प्रकार देश में मुसलमानों के जम कर बस जाने और उन के अत्याचारों के दिनों दिन बढ़ते जाने से एक ऐसे सामान्य-भक्तिमार्ग की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसे हिंदू, मुसलमान, छूत, अछूत, ऊँच, नीच सभी अपना सकें। यही आगे चल कर 'निर्गुणपंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस मार्ग का मुख्य उद्देश्य था जाति, पाँति, ऊँच-नीच आदि के मिथ्या भेद भाव को हटा कर मनुष्य मात्र को एक प्रेमसूत्र

में बाँधना । बंगाल में सब से पहले चैतन्य महाप्रभु ने इस भाव की नींव डाली । इधर महाराष्ट्र और मध्य देश में नामदेव और रामानंद जी ने इसी भाव का सूत्रपात किया ।

नामदेव जी यद्यपि स्वयं सगुणोपासक थे पर मुसलमानों के अत्याचारों से समर्पित होकर हिंदू और मुसलमान के एक सूत्र में लाने का प्रथम प्रयास भी हम इन्हीं की वाणी में देखते हैं । एक स्थान पर ये कहते हैं—

पांडे तुम्हारी गायत्री लोघे का खेत खाती थी ।

लै कर टेंगा टेंगरी तोरी लंगत लंगत आती थी ॥

पांडे तुम्हारा महादेव धौला बलद चढ़ा आवत देखा था ।

पांडे तुम्हारा रामचंद सो भी आवत देखा था ॥

रावन सेती सरबर होई, घर की जोय गँवाई थी ।

हिंदू अंधा तुरकौ काना, दुहौ ते ज्ञानी सयाना ॥

हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद ।

नामा सोई सेबिया, जहँ देहरा न मसीद ॥

गुरु नानक ने ग्रंथसाहब में इन के इस आशय के कई पद उद्धृत किये हैं । यह हम पहले ही कह चुके हैं कि नामदेव जी वास्तव में मूर्तिपूजक थे और शिव आदि रूपों में इन की उपासना के अनेक प्रमाण मिलते हैं । पर ये विलक्षण प्रतिभासंपन्न और बड़े दूरदर्शी रहे होंगे इस में कोई संदेह नहीं । इन्होंने बहुत पहले जान लिया था कि भारत में हिंदू-मुसलमान तथा छूत-अछूत सब को एकता के सूत्र में बाँधने वाला यदि कोई सामान्य भक्तिमार्ग का प्रचार न किया जायगा तो या तो सारा देश नास्तिक हो जायगा या भयानक वर्ग-युद्ध में फँस कर सब एक दूसरे से लड़ मरेंगे । यही सोच कर इन्होंने एक ओर तो मंदिर मस्जिद की निःसारता घोषित करते हुए सर्वत्र ईश्वर की विद्यमानता का प्रचार किया तथा दूसरी ओर मूर्तिपूजा आदि को अनावश्यक बताते हुए 'राम-रहीम' की एकता का राग भी शुरू किया जैसे—

आपुन देव देहरा आपुहि आपु लगावै पूजा ।

जलते तरंग तरंग ते है, जल कहन सुनन को दूजा ॥

आपुहि गावै, आपुहि नाचै, आपु बजावै तुरा ।

कहत नामदेव तू मेरो ठाकुर, जन ऊरा तू पूरा ॥

इस प्रकार कबीर के प्रसिद्ध निर्गुण-पंथ का बीजारोपण करते हुए हम नामदेव जी को देखते हैं । पर इस के साथ ही इन का सगुणवाद किसी भी अवस्था में लोप नहीं हो पाया था । इस के प्रमाण भी इन के पदों में बराबर मिलते हैं जैसे—

दशरथ राय-नंद राजा मेरा रामचंद ।

प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीजै ॥

साथ ही आगे चल कर कबीर दादू आदि ने जिस ज्ञान-तत्त्व का उपदेश दिया उस का बीजारोपण भी हम इन्हीं की रचना में पहले पहल पाते हैं जैसे—

माइ न होती बाप न होती, कर्म न होती काया ।

हम नहिं होते तुम नहिं होते, कौन कहाँ ते आया ॥

चंद न होता, सूर न होता, पानी पवन मिलाया ।

शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँ ते आया ॥

इत्यादि

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण-पंथ की उत्पत्ति पहले ऐसे भक्तों की वाणियों से ही प्रगट हुई जो आरंभ में या वास्तव में, सूर, तुलसी आदि की भाँति सगुणोपासक भक्त ही थे ! हम 'वास्तव' में इस लिये कहते हैं कि यद्यपि इन्होंने समय समय पर मूर्तिपूजा आदि की निःसारता बताई पर इस देश की हिंदू जनता में सगुण उपासना का भाव इतना बद्धमूल हो गया था कि खुले आम इस का विरोध करने का साहस कबीर के पहले शायद किसी को नहीं हुआ । शंकर की अद्वैत फिलासफी हिंदू जाति के त्रिभुज मज्जागत संस्कार को मेटने में सफल न हो सकी उस के खिलाफ आवाज उठाना हँसी खेल न था । नामदेव ने वह आवाज उठाई पर दबी ज़बान से । उन की रचनाओं में यह दोरंगी बातें साथ साथ देखने से उन का अनिश्चितता स्पष्ट हो जाती है ।

पर इतिहास हमें बताता है कि कोई बड़ा आदमी जब एक बार किसी नये विचार को जन्म दे देता है तो वह दबता कभी नहीं । दूसरे प्रचारक शीघ्र ही प्रकाश में आकर उस को ले बढ़ते हैं । यहां भी ऐसा ही हुआ । 'निर्गुण-पंथ' या प्रथम 'ज्ञानाश्रयी शाखा' के प्रचारक अपनी दोरंगी रचनाओं से कुछ दुविधा में पड़े दिखाई देते हैं । कहीं तो इन की वाणियों में भारतीय अद्वैतवाद और मायावाद का परिचय मिलता है, कहीं सूफियों के प्रेमतत्त्व की झलक दिखाई देती है और कहीं पैगंबरी खुदावाद की । फिर कहीं सूर, तुलसी आदि की भाँति राम-कृष्ण की बहुदेवोपासना का भी परिचय मिलता है तो साथ ही मुसलमानी जोश के साथ मूर्तिपूजा अवतार पूजा था बहुदेवोपासना का खंडन भी मिलता है । फिर इसी के साथ साथ कुरबानी, रोजा, नमाज आदि की निःसारता प्रगट करते हुए तत्त्वज्ञानियों की भाँति माया, जीव, अन्हद नाद, सृष्टि, प्रलय आदि की भी चर्चा की गई है ।

इन सब बातों पर ध्यान देने से यही स्पष्ट होता है कि इन संतों की धारणा यही थी कि ईश्वरोपासना की इतनी बहुसंख्यक विधिओं, आडंबरों, और उन के अलग अलग मत-मतांतरों तथा पृथक् विधि-विधानों के कारण ही देश में इतना पारस्परिक द्वेष, भेदभाव और फूट बढ़ रही थी । जानि को एक प्रेमसूत्र में बाँधने के लिये इन्होंने धार्मिक भेदभाव को दूर करना अनिवार्य समझा और इस उद्देश्य

को सिद्ध करने के लिये इन्होंने धर्म और उपासना के सारे बाह्य आडंबर को हटाकर विशुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया।

पर इन संत-कवियों को जितने प्रोत्साहन की आशा थी उतना न प्राप्त हो सका। भारत की संस्कृत और सुशिक्षित जनता अधिकतर इन की मतानुयायी न हो सकी। उच्चवर्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि यथासंभव अंत तक इन के प्रभाव से दूर ही रहे। संस्कृत के विद्वान पण्डित लोग हृदय में कबीर आदि महात्माओं की महत्ता को मानते हुए भी प्रगट रूप से बराबर इन का विरोध करना ही अपना धर्म समझते रहे। यहाँ तक कि हिंदी-कविता के सूर्य महात्मा तुलसी दास भी इन 'वेद-पुरान' के निंदकों तथा 'अलख' जगाने वाले 'नीचों' की निंदा किये बिना न रह सके। सारांश यह कि इन के अनुयायी अधिकतर दलित जातियों और शूद्रों में से ही हुए। और साथ साथ सूर, तुलसी आदि द्वारा सगुण-भक्ति का विकास भी कभी बंद न होकर समानांतर रूप से विकसित ही होता गया।

अब इस निर्गुण-पंथ में भी आरंभकाल से ही हम दो शाखाएं देखते हैं। एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा जिस का प्रथम और प्रधान प्रवर्तक कबीर की मानना चाहिये, क्योंकि इस विषय पर विस्तृत और स्पष्ट रचना सब से पहले कबीर ही की मिलती है। दूसरी शाखा हुई सूफियों की विशुद्ध प्रेममार्गी-शाखा जिस के प्रधान कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए। इस शाखा के कवियों की शैली और विचार सब से निराले थे। इन्होंने कल्पित कहानियों (प्रेमगाथाओं) के माध्यम द्वारा प्रेममत्त्व का निरूपण किया। इन की शैली थी लौकिक प्रेम के छल या बहाने से भगवत्प्रेम का वर्णन करना। समूची गाथा एक विशाल रूपक के रूप में होती थी। इन की कथाएं आमतौर से सभी प्रायः एक सी होती थीं जिस का नायक कोई राजकुमार होता था जो किसी 'सुवा' या अन्य पत्नी से किसी राजकुमारी के अनुपम रूप, गुण की प्रशंसा सुन उस के 'प्रेम की पीर' से व्याकुल हो, त्यागी का भेष धर निकल पड़ता था और वही पत्नी उस का मार्ग प्रदर्शक हुआ करता था। वास्तव में राजकुमार को साधक, राजकुमारी को ईश्वर, और तोते को गुरु समझना चाहिये। यही इन प्रेमगाथा लेखकों की रीति थी। ये अधिकांश में पहुँचे हुए फकीर हुआ करते थे, पर इन का मार्ग ईरान के जलालुद्दीन रूमी आदि सूफी फकीरों के दार्शनिक विचारों से पूर्णतः प्रभावित था। ईश्वर, मोक्ष-प्राप्ति या पारलौकिक उत्कर्ष के जितने उपाय उस समय देश में प्रचलित हो रहे थे उन सब में यह निराला था। इन्होंने प्रियतमा 'माशूक' के रूप में ही ईश्वर से मिलने की राह को सब से सुगम समझा। राजयोग, हठयोग, साकार और निराकार भक्ति, पूजा-रोज़ा, नमाज़ आदि अनेकानेक उपायों और साधनों को छोड़ इन की राय में ईश्वर केवल प्रेम से मिलता है।

इन फकीरों ने अपना मत चलाने या अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पर इन की रचनाएं हिंदी साहित्य में एक विशेष स्थान रखती हैं। अवधी भाषा में दोहा चौपाई छंदों में महाकाव्यों के ढंग की

रचनाओं के चलन का श्रेय इन्हीं को है। महाकवि तुलसीदास को भी अपने राम-चरित मानस की रचना के लिये किसी हद तक जायसी का ऋणी मानना पड़ेगा। और फिर इन का विरह वर्णन तो हिंदी-साहित्य क्या संसार के किसी भी साहित्य में शायद ही अपना सानी रखता हो। इन्होंने समूचा हृदय निकाल कर रख दिया है, यद्यपि भाषा ठेठ अवधी और कहीं कहीं कुछ गंवारूपन भी लिये हुये हैं।

परंतु इस जिल्द में कबीर आदि ज्ञानाश्रयी शाखा के संतों की रचना और विचारधारा का ही विशेष वर्णन करना है। इन की रचनायें यद्यपि विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उतने मार्के की नहीं बन पड़ीं पर सत्य निरूपण और तत्त्वकथन की दृष्टि से इन का स्थान कदाचित् सर्वोपरि मानना पड़ेगा। यों तो इन के पहले नाथ-संप्रदाय के योगियों की परंपरा मिलती है। पर कुछ तो इन की रचनाओं के अप्राप्य होने के कारण और कुछ जो मिलती भी हैं साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण न होने के कारण काव्यजगत् में इन की चर्चा नहीं के ही बराबर है। पर कबीर आदि की ज्ञानाश्रयी शाखा इन की विचार-पद्धति से किसी हद तक प्रभावित अवश्य है और इस कारण इन का कुछ दिग्दर्शन कर लेना आवश्यक है।

बाबा गोरखनाथ एक ख्यातनामा योगी हो गए हैं। इन का समय विक्रम की ११ वीं शताब्दी माना जाता है। इन के गुरु प्रसिद्ध मछंदर नाथ (मत्स्येन्द्र) थे। इन का मार्ग था हठ योग। योग के चौरासी आसनों तथा यम नियम प्राणायाम आदि द्वारा शरीर और मन को वश में कर लेना ही इन का मार्ग था। प्रसिद्ध 'मत्स्येन्द्र' और 'अर्ध मत्स्येन्द्र' आसन शायद गुरु मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदर नाथ) द्वारा ही आविष्कृत हुए थे। जा कुछ इन की वाणियां मिलती हैं उन में योगाभ्यास की श्रेष्ठता, आत्मज्ञान, सृष्टि, प्रलय, शरीर और जगत् की क्षणभंगुरता आदि के संबंध में लगभग वैसे ही प्रवचन मिलते हैं जैसा आगे चलकर कबीर, दादू आदि की वाणियों में। यह सत्य है कि इन के बाद के संतों ने हठयोग तथा भाँति भाँति की यातनाओं से शरीर को कष्ट देकर उसे वश में करने की विधि को प्रोत्साहन नहीं दिया पर तत्त्वज्ञान संबंधी अन्य विचार दोनों शाखाओं के बहुत कुछ मिलते जुलते हैं जैसा कि नीचे दिये हुए कुछ उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा। अभी हाल में लगभग चौबीस ऐसे ग्रंथों का पता चला है जिन के रचयिता गुरु गोरखनाथ कहे जाते हैं। इन के सिवाय एक और प्राचीन संग्रहग्रंथ मिला है जिस में इसी ढंग के बीस योगियों की रचनाएं एकत्रित हैं। इन में से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं^१

गोरखनाथ—पवन गोटिका रहणि अकास।

महियल अंतरि गगनक विलास ॥

पयाल नी डीबी सुन्नि चढ़ाई ।
 कथत गोरखनाथ मछींद्र बताई ॥
 सुन्नि मंडल तहँ नीभर भरिया ।
 चंद सुरज ले उनमनि धरिया ॥
 वस्तीन सुन्यं सुन्यं वस्ती, अगम अगोचर ऐसा ।
 गगन सिखर में बालका बोलै, ताका नाँव घरहुरो कैसा ॥
 छांटै तजौ गुरु छांटै तजौ, तजौ लोभ माया ।
 आत्मा परचै राखौ गुरुदेव, सुंदर काया ॥

जलंधरनाथ—यह संसार कुबुधि का खेत ।

जब लगि जाँवै तब लगि चेत ॥

आँखियाँ देखै, कान सुनौ ।

जैसा बाहै वैसा लुणै ॥

घोड़ाचोली—रावल ते जे चालै राह ।

उलटि लहरि समावै माँह ॥

पंच तत्त का जाणै भेव ।

ते तो रावल परिचय देव ॥

चौरंगीनाथ—जे जे आइला ते ते गेला ।

अवना गमने काल विमन भइला ॥

हरि से कान्ह जिन उर बटई ।

भणइ कान्ह मो हियहि न पइसइ ॥

सगौ नहीं संसार, चितनहिं आवै बैरी ।

नृभय होइ निसंक, हरिप में हास्थौ कण्ठेरी ॥

चटपटनाथ—चरपट चीर चक्रमन कथा ।

चित्त चमाऊँ करना ॥

ऐसी करनी करो रे अवधू ।

ज्यां बहुरि न होई मरना ।

देवलनाथ—देवल भये दिसंतरी, सब जग देख्या जोइ ।

नादी बेदी बहु मिलैं, भेदी मिलै न कोइ ॥

धूंधलीमल—

आईसजी आवो, बाबा आवत जात बहुत जग दीठा कछू न चढ़िया हाथं ।

अब का आवण सूफल फलिया, पाया निरंजन सिध का साथं ॥

गरीबनाथ—पाताल की मीडकी आकास यंत्र बावै ।

चांद सूरज मिलै तहाँ, तहाँ गंग जमुन गीत गावै ॥

इन उद्धरणों में आये हुए विचारों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन के बहुत से आदर्शों को आगे चल कर संतकवियों ने अपनाया। ऊपर कहे हुए सब कवि कबीर से पहले के थे इस में संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि गुरु गोरखनाथ के समय में बहुत मतभेद है पर विद्वानों को जो कुछ साम-प्रियां मिल सकी हैं उन से यह स्पष्ट है कि ईसा की बारहवीं शताब्दी के आगे किसी तरह भी इन का रचना-काल बढ़ाया नहीं जा सकता। फिर इन की परंपरा हम को बतलाती है कि चौरंगीनाथ और घोड़ाचोली गोरखनाथ के गुरु भाई थे। गुरु जलंधर नाथ मछींद्रनाथ के गुरुभाई थे और कण्ठरीपाव जलंधर नाथ के शिष्य थे। फिर चरपटनाथ गहनीनाथ के गुरु भाई थे और देवलनाथ का समय भी प्रायः वही था। इसी प्रकार धूँधलीमल और गरीबनाथ का समय क्रमशः ई० १३८५ और १३४३ कहा गया है^१। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी महात्माओं का आविर्भाव कबीर के पहले हो चुका था और इन के उपदेशों की छाप परवर्ती संतसाहित्य पर निश्चय रूप से पड़ी।

पर हम संतसाहित्य में दो बातें स्पष्ट देखते हैं। एक तो ज्ञान संबंधी आध्यात्मिक उपदेश और दूसरी भक्ति। अपने आप को जानना, संसार मिथ्या है तथा इसी प्रकार के अन्य सिद्धांत तो इन्होंने एक विशेष सीमा तक नाथपंथी साधुओं से लिये। पर संतवाणी में भक्ति का जो हम एक प्रबल स्रोत देखते हैं वह कहाँ से आया? नाथपंथियों में तो इस का अभाव था। इस के लिये हमें रामानुजाचार्य के तथा रामानंद तक उन की शिष्य परंपरा के उपदेशों का सारांश संक्षेपतः जान लेना होगा। यह शिष्यपरंपरा इस प्रकार है—

रामानुज

|

देवाचार्य

|

हरिआनंद

|

राघवानंद

|

रामानंद

स्वामी रामानंद का जन्म सन् १२९९ में प्रयाग में एक ब्राह्मण कुल में हुआ।

कहा जाता है। इन्होंने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया और विद्यार्थी अवस्था में ही काशी में संयोगवश इन का साक्षात्कार राघवानंद जी से हुआ और उन के व्यक्तित्व तथा भक्तिवाद से प्रभावित होकर इन्होंने इन का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। पर आगे चल कर किसी बात से गुरु से इन का मतभेद हो गया और इन्होंने अपना अलग संप्रदाय चलाया। जैसा पहले कह चुके हैं, इन्होंने रामानुज की नारायणी उपासना के स्थान पर विष्णु के अवतार राम की उपासना प्रचलित की, तथा शिष्यत्व संबंधी नियमों को बहुत व्यापक कर दिया। जाति, वर्ण तथा ऊँचनीच का भेदभाव बहुत कुछ दूर कर दिया गया तथा सांप्रदायिक कट्टरपन को भी स्वामी रामानंद ने यथासंभव शिथिल कर दिया। स्वामी रामानंद के दरबार में ही सब से पहले यह नियम चला कि ब्राह्मणेतर तथा शूद्रों को भी एक इन का शिष्यत्व ग्रहण कर सकने तथा अपना आध्यात्मिक सुधार करने का समान अधिकार है। उपासना-विधि के संबंध में यद्यपि यह रामानुज की वैष्णवी, साकार-उपासना के अनुयायी थे पर इन्होंने प्रधानता निराकार उपासना को ही दी जैसा कि निम्नलिखित पद से स्पष्ट हो जायगा—

कस जाइये रे घर लायो रंग ।
मेरा चित न चलै मन भयो पंग ॥
एक दिवस मन भई उमंग ।
घसि चोआ चंदन बहु सुगंध ॥
पूजन चली ब्रह्म ठाँय ।
सो ब्रह्म बतायो गुरु मंत्रहि माँहि ॥
जहँ जाइये तहँ जल परवान ।
तू पूर रह्यो है सब समान ॥
वेद पुरान सब देखे जोय ।
उहाँ तो जाइये जो इहाँ न होय ॥
सतगुरु मैं बलिहारी तोर ।
जिन सफल निकल भ्रम काटे मोर ॥
रामानंद स्वामी रमत ब्रह्म ।
गुरु का सबद काटे कोटि करम ॥

यह पद सिखों के ग्रंथसाहब में दिया हुआ है। इस में स्पष्ट रूप से साकार उपासना की व्यर्थता का संकेत है और साथ ही ईश्वर की सर्वव्यापकता पर जोर देते हुये गुरु के मंत्र को प्रधानता दी गई है। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, कुछ संतकवियों ने गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर रक्खा है, सो इस असामान्य गुरुभक्ति का सूत्रपात हम रामानंद के समय से ही देखते हैं।

स्वामी रामानंद के पद कुछ दो ही एक देखने को मिलते हैं, पर इन्हीं से

इतना पता अवश्य चल जाता है कि संतसाहित्य और संतों के आध्यात्मिक विचार इन से प्रभावित अवश्य हुए। संतसाहित्य में नाथ संप्रदायवाले महाकाव्यों द्वारा प्रचारित ज्ञानमार्ग के साथ साथ जो भक्ति का अपूर्व स्रोत मिला हुआ दिखता है उस का श्रेय स्वामी रामानंद तथा उन के कुछ संत शिष्यों को ही देना पड़ेगा। फिर इस के सिवा छोटे बड़े, ऊँच-नीच सब को समान रूप से अपनाना भी स्वामी रामानंद के समय से ही शुरू हुआ जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इस सिल-सिले में स्वामी जी के शिष्यों में सदना और रैदास के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं। सदना जाति के कसाई थे, और रैदास चमार थे। कसाई होते हुए भी ये जीवहत्या नहीं करते थे। केवल कटा हुआ मांस बेचा करते थे। इन की भक्ति अपूर्व थी। इतना विनय भाव कम ही देखने को मिलता है, जैसे—

एक बूँद जल कारनै, चातक दुख पावे ।
 प्राण गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै ॥
 प्राण जो थाके थिर नाहीं, कैसे विरमावो ।
 बूढ़ि मुये नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो ॥
 मैं नाहीं कुछ हौं नाहीं, कछु आहि न मोरा ।
 औसर लज्जा राखि लेहु, सदना जन तोरा ॥

अहंभाव का पूर्ण रूप से तिरोभाव, निपट दीनता, अपने आप को पूर्णतः 'उस के' हाथों सौंप देना; यह सब पराभक्ति के लक्षण हैं। ऊपर वाले पद में हम यह सभी बातें पाते हैं। रैदास की रचना में भी हम यही भाव पाते हैं। भक्ति की यह भावना आगे चल कर प्रायः सभी संतों ने अपनाई और इस का उपदेश दिया। ये दोनों महात्मा कबीर के सम-सामयिक थे।

रामानंद के एक शिष्य पीपा जी का भी प्राथमिक संतों में एक विशेष स्थान है। ये एक राजा थे और कबोर से कुछ पहले के थे। इन का उल्लेख यहां पर इस लिये करना हम आवश्यक समझते हैं कि सब से पहले यथासंभव इन्होंने ही स्पष्ट शब्दों में साकार उपासना का आडंबर और पूजा के लिये देवता, मंदिर तथा अन्य असंख्य बाह्य-उपचारों को व्यर्थ बताया। इन का पद देखिये—

काया देवल काया देवल,
 काया जंगम जाती ।
 काया धूप दीप नैवेदा,
 काया पूजों पाती ॥

काया बहु खंडं खोजने,
 नव निद्धी पाई ।

ना कछु आइबो ना कछु जाइबो,
 राम की दुहाई ॥

जो ब्रह्मंडे सोइ पिंडे ।
जो खोजे सो पावे ।
पीपा प्रनवे परम तत्व ही ,
सतगुरु होय लखावे ॥

इन के अनुसार अपने से बाहर किसी वस्तु को खोजने की आवश्यकता नहीं है। सब कुछ अपने ही अंदर है। ब्रह्म के सारे तत्व इसी 'पिंड' में मौजूद हैं, हाँ खोजने वाला और देखने वाला चाहिये, और यह सतगुरु की कृपा से ही संभव है। यह विचार जो आगे चलकर संतसाहित्य को प्राप्त हुआ, सब से पहले हम पीपा जी की वाणी में ही देखते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर के आविर्भाव काल के कुछ पहले तथा उन के समय में ही नाथपंथी योगियों और रामानंदी भक्तों की सम्मिलित विचार-धारा से एक नये मार्ग का क्षेत्र तैयार हो रहा था। तदनुसार आगे चल कर हम संतसाहित्य में ज्ञान और भक्ति दोनों का अपूर्व सामंजस्य पाते हैं।

पर ज्ञान और भक्ति से अलग संतबानी में हम एक तीसरी बात भी पाते हैं; और वह है 'रहस्यवाद'। यों तो भारत के दर्शन के इतिहास में 'रहस्यवाद' कोई नई चीज नहीं थी। वेदांत-दर्शन तथा शंकराचार्य की विचारधारा में रहस्यवाद प्रचुर परिमाण में है ही। पर कबीर तथा अन्य संतकवियों का रहस्यवाद कुछ दूसरे प्रकार का है। इस में ईरान के सूफी फकीरों के रहस्यवाद की भी झलक मिलती है जिस को जायसी आदि प्रेमगाथा लेखकों ने भली भाँति निवाहा था। संतों के साहित्य में हम भारतीय एकेश्वरवाद तथा सूफियों के प्रेमतत्व दोनों का मधुर समिश्रण देखते हैं। इस रहस्यवाद की कुछ विस्तृत आलोचना हम आगे चल कर करेंगे।

पूर्वोक्त कथा से इतना स्पष्ट होगया होगा कि नामदेव, रामानंद, सद्ना, पीपा तथा रैदास आदि ने किस प्रकार आगामी संतसाहित्य का क्षेत्र तैयार किया और किन किन विचारधाराओं के मेल से यह क्षेत्र तैयार हुआ तथा इन विभिन्न विचारधाराओं का आदि उद्यम क्या था और पहले पहल कौन किस विचारधारा को प्रकाश में लाया।

अब संतसाहित्य में है क्या यह देखना है। हमें शुरू में ही यह जान लेना चाहिये कि वास्तविक काव्यरचना की दृष्टि से इस साहित्य में अधिक आलोच्य विषय कुछ है नहीं। रस, भाषा, अलंकार, छंद तथा रचना सौंदर्य आदि की दृष्टि से संतसाहित्य में हमें कोई विशेष आशा नहीं करनी चाहिये। बल्कि विद्वानों के अनुसार तो संतकाव्य साहित्य कोटि में आता ही नहीं। इस धारणा का कारण यही है कि सुंदरदास आदि दो एक अपवादों को छोड़ कर अधिकांश संतकवि सुशिक्षित नहीं थे। भाषा साहित्य पिंगल आदि का ज्ञान इन को

नाम मात्र का था। संस्कृत का ज्ञान तो शायद ही किसी को रहा हो। 'कवि' होने के लिये जो तीन बातें (शिक्षा, प्रतिभा, अभ्यास,) हमारे यहाँ आवश्यक मानी गई हैं इन में पहले से तो बहुत कम संत कवियों से परिचय रहा होगा बल्कि बहुतेरे तो 'निरक्षर' भी कहे जाते हैं। सब से प्रधान संतकवि स्वयं कबीर ने 'मसि कागद' कभी हाथ से भी नहीं छुआ। पर इन में से बहुत से विलक्षण प्रतिभासंपन्न अवश्य थे। 'अभ्यास' से यदि वास्तविक काव्यकला के अभ्यास से मतलब है, तो वह भी कम ही संत कवियों के रहा होगा। पर सब से मुख्य बात यही है कि इन में से अधिकांश सचमुच तत्वज्ञानी और पहुँचे हुए साधक थे। यदि रस, अलंकार आदि की छटा तथा भाषासौष्ठव का इन की रचना में अभाव है तो इन्होंने जो 'वात अनूठी' कही है उस की भी अवहेलना या तिरस्कार कर दिया जाय यह इन के प्रति महान् अन्याय होगा। अगले पृष्ठों में हमें यही करना है। ये लोग पंडित या विद्वान नहीं थे। कृत्रिम तपस्या, इंद्रियनिग्रह और तीर्थाटन आदि के अभ्यासी भी नहीं थे ये। गुफा में बैठ कर योगसाधन, दुखी लोगों को औषधि देकर तथा अन्य चमत्कारों से लोक को चमकृत करना भी इन की शैली नहीं थी। इन की वाणी, वेशभूषा तथा आचार, व्यवहार आदि में कोई असाधारणता नहीं थी। ये प्रायः सभी अपनी अपनी साँसारिक जीविका के लिये कोई न कोई 'पेशा' करते थे। कबीर ने अपना जोलाहे का काम उम्र भर नहीं छोड़ा। दादू धुनियां थे, या मतांतर से चमड़े के मोट बनाते थे। सदना मांस बेचते थे। रैदास जूते बनाते थे। सब को भरोसा एक मात्र भगवान का था और सब अपने उद्यम से ही अपने और अपने कुटुंब का पालन करते थे। अधिकतर साधु-संतों की भांति जीविका के लिये उद्यम को ईश चिंता में बाधक नहीं मानते थे ये, और न इस का उपदेश ही देते थे। इन का पथ 'सहज' था।

अधिकांश संत-कवियों ने प्रायः एक ही ढंग की बातें कही हैं। इन की वाणियों के शीर्षक भी बहुत कुछ एक से ही हैं। इस लिये इन के विविध अंगों पर विचार करने में सुविधा भी है। मुख्य मुख्य अंगों पर अलग अलग विचार कर लेने पर समष्टि रूप से इन की विचार-धारा स्पष्ट हो जायगी। उदाहरण हम अधिकतर कबीर और दादू से देंगे क्योंकि सब से अधिक प्रसिद्धि इन्हीं को मिल सकी।

हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि संसारिक कर्तव्य पालन करते

सहज पथ हुए ही अपने आध्यात्मिक कल्याण-साधन की शिक्षा संतों ने दी।

भगवान के मिलने के लिये संसार छोड़ कर बन में जाकर हठ-योग की क्रियाओं आदि द्वारा शरीर को सुखाना ये जरूरी नहीं समझते थे। असल चीज है मन को वश में करना। यदि घर में रहते हुए और साँसारिक सारे कर्तव्यों का पालन करते हुए मन पर राज्य न किया तो क्या किया। कबीर दादू आदि के मत से पथ 'सहज' होना चाहिये।

सौर परिवार से एक दृष्टांत लेकर कह सकते हैं कि पृथिवी अपने केंद्र पर चक्राकार घूमती हुई ही सूर्य की परिक्रमा करती है। अपनी धुरी के चारों ओर घूमने रहने वाली उस की दैनिक गति ही उसे सूर्य के चारों ओर उस की वृहत् वार्षिक गति को संभव बनाती है। सूर्य की परिक्रमा के लिये यदि पृथिवी अपनी गति बंद कर दे तो उस की सारी गतिविधि समूल नष्ट न हो जायगी ? इसी प्रकार इन संतों के अनुसार दैनिक जीवन ही मनुष्य को शाश्वत जीवन की ओर 'सहज' रूप से अग्रसर कर सकता है।

दूसरा दृष्टांत नदी और उस के सागर सम्मिलन से दिया जा सकता है। नदी का प्रतिक्षण का उद्देश्य ही है अपने प्रियतम समुद्र में अपने को लीन करना। परंतु नदी अपने दोनों तटों से क्षण भर के लिये भी अलग हो कर सागर की ओर क्या अग्रसर हो सकती है ? नहीं। अपने दोनों किनारों के असंख्य काम करती हुई ही वह अपने चरम उद्देश्य की ओर अग्रसर होती है। उस के प्रतिक्षण का जीवन उस के शाश्वतजीवन से इस अभिन्न और सहज योग से युक्त है। एक को छोड़ने का अर्थ होगा दूसरे का असंभव या व्यर्थ हो जाना ? इसी से कबीर ने कहा है कि संसार और गार्हस्थ्य जीवन से अलग होकर मैं साधना नहीं जानता। साधना में कोई 'एंचातानी' नहीं है। साधना में 'दैनिक' और 'नित्य' के बीच कोई विरोध नहीं है।

इस महान सत्य को कबीर और दादू ने भली भाँति समझा था और इसी से परम साधक होते हुए भी ये गृहस्थ थे। यही सहज पथ ही इन के अनुसार सत्य पथ है। इस आशय को इन संतों ने अनेक वाणियों द्वारा व्यक्त किया है। कबीर जी कहते हैं —

सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
जिन्ह सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोइ ॥
सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
पाँचू राखै परस तो, सहज कहीजे सोइ ॥
सहजै सहजै सब गए, सुत वित कामणि काम ।
एक मेक है मिलि रखा, दासि कबीरा राम ॥
सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलैं, सहज कहीजै सोइ ॥

—कबीर ग्रंथावली' पृष्ठ ४१

इसी आशय को भक्तप्रवर सुंदरदास जी ने और भी सुंदरता से प्रगट किया है। देखिये उन के 'सहज-आनंद' नामक ग्रंथ में—

सहज निरंजन सब में सोई ।
सहजै संत मिलै सब कोई ॥

सहजै शंकर लागै सेवा ।
 सहजै सनकादिक शुकदेवा ॥ १६ ॥
 सोजा पीपा सहजि समाना ।
 सेना धना सहजै रस पाना ॥
 जन रैदास सहज को बंदा ।
 गुरु दादू सहजै आनंदा ॥ २६ ॥

अब यह स्पष्ट है कि इस 'सहज-पथ' के पथिक के लिये जाति-पाँति का साँप्रदायिक भेदभाव कोई अर्थ नहीं रखता । साँप्रदायिक मतमतांतरों के कारण भाँति-भाँति के वेश और बातें बनाकर, अपने 'साधु' होने का विज्ञापन करना दादू आदि के अनुसार मिथ्या ढोंग और आडंबर मात्र था । इस से इन को बड़ी चिढ़ थी । सच्ची साधना 'अहम्' को मिटाने के बाद ही संभव हो सकती है—

सब दिखलावहिं आप को नाना भेष बनाइ ।
 आपा मेंटन हरि भजन तेहि दिसि कोई नहिं जाइ ॥

दादू, भेष को अंग, ११ ॥

जीविका के लिये उद्यम करना ईशचिंतन में बाधक नहीं होता । लोग उद्यम को भगवत्प्रेम का शत्रु इसी लिये समझते हैं कि मनुष्य सांसारिक माया मोह और बंधन की चक्की में इतना लिप्त होजाता है कि वह अपने को एक प्रकार की मशीन सा बना कर जड़वत हो जाता है । पर इस में उद्यम को दोष क्यों दिया जाय । वास्तविक उद्यम तो वही है जिस में आदमी अपनी चेतना को न भूले और अपने बनाने वाले को क्षण भर के लिये भी अपने से अलग न समझे । उद्यम वही है जो अपने स्वामी के साथ रह कर किया जाय—

उद्यम अवगुन को नहीं, जो करि जानइ कोय ।
 उद्यम में आनंद है, साईँ सेती होय ॥

दादू विस्वास को अंग, १० ।

इसी से कुछ भक्तों ने उद्यम को छोड़ कर फक्कीरी करने को एक प्रकार की विलासता मानी है । इस सिलसिले में दादू के शिष्य रज्जब जी ने एक बड़ी जोरदार बात कही है—

एक जोग में भोग है, एक भोग में जोग ।
 एक बुढ़ि बैराग में, इक तरहिं सो गृही लोग ॥

मुक्ति अंग, ४९ ।

अर्थात् योग के अंदर भी एक प्रकार का भोग होता है, और भोग में भी योग संभव हो सकता है और गृहस्थजीवन वाला पार हो जाता है ।

सहज-पथ के संबंध में दादू जी ने एक और ध्यान देने योग्य बात कही है । सहज-पथ का यात्री अपने मन को गुलाम बना अपनी सफर को तय नहीं कर

सकता। जो सचमुच इस मार्ग पर चल पड़ा है वह स्वयं कभी नहीं जान सकता कि वह कितना रास्ता पार कर चुका। परमात्मा के बीच रोता लगाने के बाद फिर उसे अपनी बात याद रखने की फुरसत कहाँ? सहज पथ के पथिक का लक्षण ही है अपने संबंध में अचेत रहना। जो कहता है 'मैं पहुँच चुका हूँ तुम सब मेरे पथ से चलो,' वह 'पथ' के बारे में कुछ नहीं जानता—

मानुष जब उड़ चालते, कहते मारग माहिं ।

दादू पहुँचे पथ चल , कहहिं सो मारग नाहि ॥

उपन् के अंग, १५ ।

दादू को यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि लोग खुद तो आत्मतत्त्व को समझे नहीं और दूसरों को उपदेश भी देने लग जाते हैं। सोता हुआ आदमी दूसरे को कैसे जगा सकता है? वास्तविक 'ज्ञान' तो हुआ नहीं और कुछ थोड़े से शब्द और साखी रच कर लोग समझने लगते हैं कि मैं ज्ञानी हो गया। यह कैसा पाखंड है! दादू के अनुसार ऐसे ही लोग जो अपने को कुछ समझने लगते हैं, पहले डूबते हैं—

सोधी नहीं शरीर को, औरों को उपदेश ।

दादू अचरज देखिया, ये जाँगे किस देश ॥

सोधी नहीं शरीर को, कहहिं अगम की बात ।

जात कहावहिं बापुरे, आवध लीये हाथ ॥

—गुरु को अंग, ११७-१८ ।

दादू दो दो पद किये, साखी भी दो चार ।

हम को अनुभव ऊपजी, हम ज्ञानी संसार ॥

मुनि मुनि परचे ज्ञान के, साखी सबदा होइ ।

तब ही आया उपजई, हम से और न कोइ ॥

यों तो मध्यकालीन भक्ति की सगुण निर्गुण ज्ञानाश्रयी, प्रेमगाथा, नाथपंथी ।

आदि सभी शाखाओं में गुरु सद्गुरु या दीक्षा गुरु की आवश्यक-

सहज, शून्य कता अनिवार्य मानी गई है, पर इसको ज्ञानश्रयी शाखा के इन

और गुरु संतकवियों ने जितना महत्व, जितनी व्यापकता दी उतनी और

किसी ने नहीं। यह हम पहले भी एक बार कह चुके हैं कि इन

महात्माओं के अनुसार गुरु का पद ईश्वर से भी ऊँचा होता है, और यह इस सहज तर्क के अनुसार कि गुरु न मिलता तो ईश्वर से मिलता कौन? 'गुरु कैसा होना चाहिये? उस के लक्षण क्या हैं? इस संबंध में इन्होंने विस्तार से बहुत सी बातें कही हैं। उन लक्षणों पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु ही 'ब्रह्म' है, गुरु ही ईश्वर है—

गुरु गोबिंद तो एक हैं, दूजा यह आकार ।

आपा मेट जोवत मरै, तौ पावै करतार ॥

दादू अल्लह राम का, दोनों पथ से न्यारा' ।

रहिता गुन आकार का, सों गुरु हमारा ॥ ४८ ॥

—दादू, मध्य को अंग ।

इन भक्तों ने प्रायः 'शून्य' के साथ गुरु की तुलना की है। इस जीवन के सहज विकास के लिये शून्य आकाश की भाँति मुक्त अवकाश अपेक्षित है। गुरु भी ठीक ऐसा ही होना चाहिये। इसी से रज्जब जी गुरु के अंग में कहते हैं —

‘सत गुरु शून्य समान है’—

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि चराचर सृष्टि के विकास के लिये शून्य आवश्यक है। साधारण से लेकर बड़े से बड़े अंकुर का स्वाभाविक विकास तभी हो सकता है जब उस के ऊपर मुक्त आकाश हो। ऊपर यदि शून्य आकाश न होकर किसी चीज से ढक दिया जाय तो कोई भी पौदा बढ़ नहीं सकता। इसी प्रकार गुरु अपने व्याक्तत्व से शिष्य को प्रभावित करना चाहे तब तो वह दब ही मरेगा आगे उस का विकास क्या होगा? इसी से गुरु को सहज शून्यवत् होना चाहिये। संतों

की बानियों में ‘सहज’ और ‘सुन्न’ शब्द बारंबार आते हैं पर इन ‘सहजियां संप्रदाय’ शब्दों के वास्तविक मर्म को लेकर आगे चल कर बड़ी छीछा लेदर हुई है। संतों का ‘सहज’ ‘सहजिया’ संप्रदाय वालों के ‘सहज’ से बिलकुल भिन्न है, यह आरंभ में ही भली भाँति समझ लेना चाहिये। शुरु में सहजिया संप्रदायक वालों का जो कुछ भी सिद्धांत रहा हो पर आगे चल कर तो यह बहुत बदनाम हो गया। इसी सिद्धांत के कारण, खास कर बंगाल में ‘सहज’ का यह अर्थ होने लगा कि मन और इंद्रियों को उन के सहज स्वाभाविक गति विधि के मार्ग पर छोड़ देना, अर्थात् जो मन और इंद्रियां मांगें वही करना। इस का परिणाम हुआ घोर नैतिक पतन और विषयपरायणता तथा इंद्रियलोलुपता। पर संतों का ‘सहज’ सिद्धांत, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, इस के बिलकुल विपरीत है। मन को वश में करना इन के ज्ञानतत्व की पहली सीढ़ी है।

रामानंद के बाद संत कवियों ने एक मत से उपदेश के लिये संस्कृत के स्थान पर देशभाषा का आश्रय दिया यह कुछ कम महत्व की बात नहीं संस्कृत के स्थान थी। यदि अधिक से अधिक संख्या में अपने मंतव्य को सफल प्रचार पर भाषा करना है तो देशभाषा ही का आधार लेना होगा इसे स्वामी रामानंद ने भली भाँति समझा था। सब से पहले तो इस सिद्धांत को समझने का श्रेय महात्मा बुद्ध को है जिन्होंने संस्कृत के स्थान पर तत्कालीन देश-भाषा पाली में अपने सिद्धांत प्रकाश करने का निश्चय किया। संस्कृत तो अर्से से पंडितों की भाषा हो रही थी और केवल विद्वान् ब्राह्मण मात्र ही उस से लाभ उठा सकते थे जिन की संख्या क्रमशः घटती ही जा रही थी। पर ग्रंथकारों और विद्वान कवियों को संस्कृत में रचना किये बिना संतोष ही नहीं होता था। उन्हें

सर्वसाधारण के हित की चिंता नहीं थी, उन्हें केवल पंडितमंडली में स्तुत्य होने की अभिलाषा थी। पर रामानंद आदि का दृष्टिकोण ही दूसरा था। इन्हें विद्वत्समाज की स्तुति निंदा से कोई सरोकार नहीं था। ये सर्वसाधारण के कल्याण की अभिलाषा रखते थे। इस के लिये इन्होंने सर्वसाधारण में प्रचलित कथित भाषा का प्रयोग ही ठीक माना, वह साहित्यिकों को भले ही गँवारू या असुंदर जँचे इस की उन्हें परवाह नहीं थी।

यहां पर कह सकते हैं कि रामानंद ने संस्कृत के विद्वान होते हुये भाषा को अपनाया यह उन की अग्रशोचिता का परिचायक तो हो सकता है पर यही बात कबीर आदि के बारे में भी कही जा सकती है या नहीं? क्योंकि इन में से अनेक निरक्षर थे। सिवा बोलचाल की भाषा (परिमाजित नागरिक भाषा भी नहीं) के इन को और गति ही क्या थी? पर नहीं, संतों ने संस्कृत के विपक्ष और भाषा के पक्ष में अपने विचार भी समय समय पर प्रगट किये हैं जिन से इन के दृष्टिकोण पर संदेह करने का कारण नहीं रह जाता। कबीर जी की यह उक्ति प्रसिद्ध है।

संस्कृत कूप जल कबीरा भाषा बहता नीर।

जब चाहौ तब ही डुबौ, सीतल होय शरीर ॥

देश में फैले हुए नानाविध मतमतान्तरों को इन संतों ने शुरू से ही सारे कलह, द्वेष की जड़ मानी है और देश से इस के समूल उच्छेदन में संप्रदाय की इन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी, पर सखेद यह मानना पड़ेगा व्यर्थता कि यह समस्या आज भी ज्यों की त्यों मौजूद है और शायद इस का लोप धर्म और मत के साथ ही होना संभव होगा। पर स्मरण रहे धर्म से यहां हमारा मतलब केवल (Religion) और (Religiosity) से है, (Virtue) और (Spirituality) से नहीं। संप्रदाय और मत एक प्रकार की दलबंदियां हैं। आरंभ में इन का जो कुछ भी उद्देश्य रहा हो, भला या बुरा, पर आगे चल कर इन का उद्देश्य ही हो गया अपने से भिन्न संप्रदाय और मतावलंबियों को सब प्रकार से नीचा दिखाने और उन के अनिष्ट साधन में अपनी सारी शक्ति खर्च कर डालना।

संतों के समय में हिंदूसमाज अनगिनित फिर्कों में बंटा हुआ था और सब के ऊपर शासन करता था सनातनी ब्राह्मण-वर्ग। अब्राह्मणों, और ख़ास कर शूद्रों की बड़ी शोचनीय अवस्था थी। हिंदू समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानना तो दूर की बात रही, हमारे पुरोहित श्रेणी के पंडित लोग इन्हें अस्पृश्य! जानवरों से भी गया बीता समझते थे। मंदिर में अगर कोई कुत्ता चला जाय तो उतना हर्ज नहीं है पर अगर कोई चमार दर्शनार्थ घुस पड़े तो उस की मौत ही समझिये! इन्हीं अत्याचारों का दंड तो अब भोगना पड़ रहा है हिंदुओं को।

जो हो, पर हमारे अग्रशोचि संतों ने बहुत पहले हिंदूसमाज की यह भयंकर भूल समझी। उन्होंने इस के फलस्वरूप हिंदूसमाज का सर्वनाश ही

देखा । यद्यपि सनातनी विद्वान् पंडितों के बद्धमूल प्रभाव के कारण इन की चली नहीं पर यथाशक्ति उद्योग ये करते ही रहे, और कुछ शताब्दियों के लिये तो इन्होंने हिंदुओं को सर्वशेषी गृहयुद्ध और श्रेणीयुद्ध से बँचा ही लिया ।

इन संतों का उद्देश्य केवल हिंदू मात्र को ही एक करने का नहीं था । इन का दृष्टिकोण बहुत व्यापक था । क्या हिंदू क्या मुसलमान, मनुष्यमात्र को ये एकता के समानसूत्र में लाने की चेष्टा कर रहे थे । दादू जी एक एक स्थान पर कहते हैं, “हिंदू अपने मंदिर को लेकर व्यस्त है और मुसलमान मस्जिद को लेकर । मैं एक अलख में लग रहा हूँ और वहीं है निरंतर प्रीति—

दादू हिंदू लागै देहरै, मुसलमान मसीति ।
हम लागे एक अलख सों, सदा निरंतर प्रीति ॥
न तहाँ हिंदू देहरा, न तहाँ तुरक मसीत ।
दादू आये आप है, नहीं तहाँ रह रीति ॥

मधि अंग, ५२, ५३ ।

अब इसी आशय पर कबीर की उक्ति देखिये—

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ में कहे न जाइ ॥
काबा फिर काशी भया, राम भया रहीम ।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥
कबीर दुविधा दूरि करि एक अंग है लागि ।
यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥

मधिको अंग, ७, १० २ ।

इसी सिलसिले में मतवाद, शास्त्र, तीर्थ, व्रत पूजा नमाज आदि की व्यर्थता पर भी बहुत कुछ कहा है इन महात्माओं ने । धर्म के इन वाह्य उपचारों की व्यर्थता बहुत बड़ी बाधा समझी । इन से होता यह है कि लोग यहीं तक रह जाते हैं और धर्म का वास्तविक उद्देश्य ही आँख से ओझल हो जाता है । इन का कहना है कि जो वास्तविक सत्य की खोज में है उस को विविध मतवादों के पीछे पड़ने से कोई लाभ न होगा । दादू जी कहते हैं—

मैं पंथि एक अपार के, मन और न भावै ।
सोई पंथ पावै पीरका, जिसे आप लखावै ॥
को पंथि हिंदू तुरुक के, को काहूँ राता ।

को पंथि सूफी सेवड़े, को सन्यासी माता ॥
को पंथि जोगी जंगमा, को सकति पंथि धारै ।
को पंथि कमंडे कापड़ी, को बहुत मनावै ॥
को पंथि काहूँ के चलै, मैं और न जानौँ ।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही को मानौँ ॥

—दादू रामकली, पद, १६८ ।

श्रुति स्मृति, पुराण तथा शास्त्रों आदि के पचड़े में पड़ने के संबंध में दादू जी कहते हैं कि जिस ने मूलाधार का आश्रय लिया वह तो शास्त्र वास्तविक आनंद को प्राप्त हो गया पर जो वेद, पुराण आदि के पीछे पड़ा वह डाल, पत्तों में ही भटकता रह गया अर्थात् असल चीज उसे नहीं मिल सकी—

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचे कोइ ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़े, प्रेम बिना क्या होइ ॥

साँच को अंग १० ।

कबीर कागद काढ़िया, तब लेखै वार न पार ।
जब लग साँस समीर में, तब लग राम सँभार ॥ ४ ॥

—कबीर साँच को अंग

इसी प्रकार मूर्तिपूजा को व्यर्थ बताते हुए कबीर जी कहते हैं—

पाहन कुं क्या पूजिये, जे जनम न देई जाब ।
आँधा नर आसा मुखी, पौँही खोवै आब ॥ ३ ॥
हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोभ ।
सतगुरु की कृपा भई, डारव्या सिर थैं बोभ ॥ ४ ॥
जेती देखौँ आतमा, तेता सालिगराम ।
साधू प्रतपि देव हैं, नहिं पाथर सूँ काम ॥ ५ ॥

—भ्रम विधौसण को अंग ।

फिर मूर्ति पूजा के साथ ही इसी अंग में तीर्थों की कटु आलोचना करते हुए कबीर जी कहते हैं—

तीरथ तो सब बेलड़ी, सच जग मेल्या छाइ ।
कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाइ ॥ ६ ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि ।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछाणि ॥ १० ॥
कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ ॥
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौँ ल्यौ लाइ ॥ ११ ॥

इसी प्रकार तीर्थ, रोजा, नमाज तथा मिथ्याचारों की तीव्र आलोचना से
 तीर्थादिक की व्यर्थता भी संत साहित्य भरा पड़ा है। दो एक बनियां इन प्रसंगों पर भी
 उदाहरण के तौर पर यहाँ दी जा रही हैं—दादू जी कहते हैं—
 कोई दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाहि।
 कोई मथुरा को चले, साहिब घट ही माँहि ॥

कस्तूरिया मृग अंग ८।

जिस के लिये इधर उधर भटकते फिरते हो वह तो तुम्हारे अंदर ही है, फिर
 क्यों सब जगह कस्तूरी मृग की भाँति मारे मारे फिरना। इसी अंग में कबीर जी
 की बानी देखिये—

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग बूढ़े बन माँहि।

ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनियां देखै नाँहि ॥ १ ॥

कस्तूरी उस मृग को कहते हैं जिस की नाभि में कस्तूरी होती है। उस की
 सुगंध से मतवाला होकर वह सब जगह उसे खोजता फिरता है पर उसे पता नहीं
 होता कि वह उसी के अंदर है।

इसी प्रकार पूजा, नमाज आदि की निस्सारता के संबंध में दादू जी कहते हैं—
 परचा के अंग में:—

आप अलेख इलाही आगे, तहँ सिजदा करें सलाम। २२६

साधक का ईश्वर उस के घट में ही विराजमान है, उस की सलाम बंदगी
 वहीं होनी चाहिये।

हाथ में माला तस्वीह लेकर राम, रहीम जपने से क्या होता है ? जप तो
 ऐसा होना चाहिये कि सारा शरीर और मनही तुम्हारी माला हो—

सब तन तसवी कहैं करीम, ऐसा करले जाप। २३०

दिन में प्रातःसायं की संध्या पूजा या पांचों वक्त की नमाज से काम नहीं
 चलने का। इबादत तो वह है जो अनवरत रूप से आठों पहर चलती रहे और
 अंतिम घड़ी तक यही हाल रहे—

आठो पहर इबादती, जीवन मरन निबाहि। २३२

कबीर जी का मंदिर नींव-रहित है और उन के देवता के कोई शरीर
 नहीं है—

नींव विहूणा देहुरा, देह विहूणा देव।

कबीर तहां विलंबियो, करे अलष की सेव ॥ ४१ ॥

अंत में दादू जी ने २१६ शब्दों में एक साथ ही मंदिर, मूर्तिपूजा आदि को
 'भूठा' कर दिया—

भूठे देवा भूठी सेवा, भूठी करै पसारा।

भूठी पूजा भूठी पाती, भूठा पूजन हारा ॥

—राग रामकली, १६७।

पाहन की पूजा करै करि आतम घाता ।

—राग रामकली, १६६ ।

संतों ने 'धर्म' को बड़ी व्यापक दृष्टि से देखा था । यह हिंदू धर्म है, यह इस्लाम है, यह, मसीह' का धर्म है तथा ऐसी ही अन्य बातों धार्मिक ऐक्य से इन को चिढ़ थी । धर्म तो एक है । इसे जाति या संप्रदाय-पर जोर विशेषों के अनुसार खंडशः नहीं किया जा सकता और जो खंडशः किया जा सकता है वह धर्म नहीं, तथाकथित धर्म के नाम पर लड़ने का बहाना मात्र है । जो 'धर्म' है वह सब के लिये धर्म है वना वह धर्म नहीं है । हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई ये नहीं जानते थे । ये जानते थे केवल मनुष्य और मनुष्य मात्र का साधारण धर्म, दूसरे शब्दों में जिस को, विश्व धर्म' या Cosmopolitan Religion कहते हैं इस के वास्तविक सिद्धांत वीजारोपण सब से पहले इन्हीं महात्माओं ने किया था । दादू जी कहते हैं—

हिंदू तुरक न जानौं दोई ।

साई सबनि का साई है रे, और न दूजा देखौं कोई ॥

—राग मैरौ, ३६६ ।

+ + +
हिंदू तुरक न होइब, साहिब से ती काम ।
षट्दर्शन के संग न जाइब, निर्पख कहिबा राम ॥

—मधि अंग, ४

+ + +
सब हम देख्या सोधि करि दूजा नाही आन ।
सब घट एकै आतमा, क्या हिंदू मुसलमान ॥

—दया निर्वैरता अंग ५ ॥

+ + +
अल्लह राम छूटा भ्रम मोरा ।
हिंदू तुरक भेद कुछ नाही, देखौं दर्शन तोरा

—राग तोड़ी, ६५ ।

संतों के धार्मिक विचारों की आलोचना करते समय यह प्रश्न उठ सकता है कि 'अवतारवाद' के संबंध में इन का क्या मत था । यह तो अवतार सहज ही अनुमेय है कि जो साकार उपासना को व्यर्थ समझता है, मंदिर मस्जिद जिस के लिये ढोंग है वह ईश्वर के अवतार में भी आस्था न कर सकेगा । ईश्वर तो अनादि, अनंत है फिर उस का जन्म, मरण या पुनर्जन्म या अवतार कैसा । अवतार रूप में ईश्वर कल्पना करना इन के अनुसार संकीर्णता थी । दादू जी कहते हैं—पीब पिछाण अंग में —

मरै न जीवै जगत गुरु, सब उपजि खपै उस मांहि । १६ ।

+ + +

पूरण निहचल एकरस, जगति न नाचै आइ

इसी संबंध में कबीर जी कहते हैं—

जाके मुहु माया नहीं , नहीं रूपक रूप ।

पुहुप वास थैं पतला , ऐसा तत अनूप ॥

तो फिर संतों के अनुसार वास्तविक धर्म है क्या ? पूजा, जप, तप, मंदिरमस्जिद, काशी, काबा, मूर्ति, अवतार रोज़ा, नमाज़ यह मुख्य धर्म सेवा सभी तो 'भूठा' है। फिर सच्चा क्या है ? ये कहते हैं 'सत्य की खोज कैसी ? वह तो स्वयं प्रकाशमान है, हाँ जो उसे देखने की सत्य क्या है सचमुच परवाह करता हो। सत्य तो इतना स्पष्ट है कि इस का छिपाया जाना या उस का न दिखाई पड़ना ही असंभव है। अपने चारों ओर जो कुछ हम देखते हैं वह सभी तो सत्य है। वेदांतियों की भाँति इन संतों की फिलासफी में 'यह सब 'मिथ्या' अथवा 'स्वप्न' नहीं है। 'जगत्' को मिथ्या नहीं माना इन्होंने। यदि 'ब्रह्म सत्य है तो जगत् मिथ्या कैसे ?' जगत् भी तो ब्रह्म का ही एक प्रदर्शन विशेष है। जगत् को 'मिथ्या', 'माया', 'भ्रम', या 'स्वप्न' मानते हुए हम ब्रह्म को कैसे सत्य कहते हैं। हमारे सामने सब से पहले जगत् ही आता है और उसी को यदि मिथ्या मान लिया जाय तब तो सब ही कुछ मिथ्या हो जायगा। जो हो, यह बड़ा जटिल प्रश्न है और अनादि काल से तत्त्वचिंतकगण इस पर विचार-विवाद करते आ रहे हैं, और शायद महाप्रलय तक करते रहेंगे। पर निश्चित रूप से कोई बात कम से कम अभी तक तो तय नहीं पाई, आगे की परमात्मा जाने। यहां पर हमारा काम था इस प्रश्न पर संतकवियों के सिद्धांत का प्रतिपादन कर देना, सो हम ऊपर कर चुके। दादू जी कहते हैं - 'सुमिरन' अंग में- कि रसातल के अंत से लेकर आकाश के ध्रुवतारा तक जो कुछ हम देखते हैं सभी सत्य है। मन के जिस अंतस्तल में तुम खुशी को छिपा कर रखते हो वहां तुम सत्य को थोड़े ही छिपा कर रख सकते हो। चाहे तुम कोटि जतन करो पर उस सत्य को नहीं छिपा सकते—

भावै तहाँ छिपाइये, सांच न छाना होइ ।

सेस रसातल गगन धू परगट कहिये सोई ॥' ११० ॥

+ + +

अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन ।

दादू छाना क्यों रहै, जिस घट राम रतन ॥ ११५- ॥

इस लिये मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है प्राणीमात्र की यथाशक्ति सेवा और सब प्रकार के हिंसा-द्वेष का त्याग । प्राणीमात्र पर सदय तो रहना हिंसा का त्याग ही चाहिये, पर इन संतों के अनुसार पेड़ पल्लव में भी जान होती है और 'साहिब' का वास चराचर सब के अंदर है अतः किसी को दुख न देना चाहिये: —

दादू सूखा सहजै कीजिये, नीला भानै नाहिं ।

काहे कौं दुख दीजिये, साहिब है सब माहि ॥

—दया निर्वैस्ता, २२

हम प्रायः देखते हैं कि संत मलूकदास की एक वाणी को लेकर कर्म का उपदेश कुछ लोग प्रायः समूचे संतसाहित्य का मखौल उड़ाया करते हैं । वह वाणी यों है—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।

दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम ॥

इस में स्पष्ट रूप से सारे सांसारिक कर्मों से निरत होकर 'राम आसरे' अपने को छोड़ देने का उपदेश है । पर इसे हम एक अपवाद मात्र कह सकते हैं और एक अपवाद से सिद्धांत की पुष्टि ही होती है । यद्यपि इस दोहे का वास्तविक अर्थ कुछ विद्वानों के अनुसार यह नहीं है कि निश्चेष्ट होकर बराबर पड़े ही रहना और कुछ करना ही नहीं । इस का मर्म केवल यही है कि जो पूर्ण रूप से अपने को ईश्वर में समर्पित कर देता है उस को रोटी को चिंता से विचलित न होना चाहिये, जीविका के लिये भटकते न रहना चाहिये । इस का यह अर्थ नहीं कि जिस के पास जो जीविका हो उस को भी छोड़ कर बैठ जाना और राम राम जपने लगना चाहिये । पर यह यदि न माने तो भी क्या इस दोहे के कारण कबीर, दादू आदि सभी को इसी मत का पोषक मानना पड़ेगा ?

तथ्य तो यह है कि गीता के 'कर्म' की फिलासफी और कर्मयोग का पूरा उपदेश हम संतों की वाणियों में पाते हैं । हम पहले उदाहरण दिखला चुके हैं, कि मनुष्य के लौकिक धर्म पर कितना जोर दिया है इन महात्माओं ने । गीता के प्रसिद्ध श्लोक—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन” का अन्तराशः पालन ये करते थे, और इसी का उपदेश देते थे । फलकामना की व्यर्थता के संबंध में 'निहकरमी-पतिव्रता' के अंग में दादू जी साफ कहते हैं —

फल कारन सेवा करइ, जाँचइ त्रिभुवन राव ।

दादू सो सेवक नहीं, खेलइ अपना दाव ॥ ६२

तन मन सब लागा रहइ, दाता सिरजन हार ।

दादू कुछ मोंगइ नहीं, ते विरला संसार ॥ १४

फिर 'कर्म' की महत्ता के संबंध में कहते हैं —

करम करम काटइ नहीं, करमइ करम न जाय ॥

करम करम छूटइ नहीं, करमइ करम बँधाइ ॥ १७

कर्म से छुटकारा नहीं है। योग, जप, तप, चाहे जो करो, सांसारिक कर्म से बरी कभी नहीं हो सकते।

संत काव्य की भाषा और वाणी-विभाग

संत काव्य की विचारधारा के संबंध में समष्टि रूप से कुछ थोड़ी सी गवेषणा ऊपर की पंक्तियों में की गई। यह केवल इतनी ही है जिससे साधारण पाठक को संतसाहित्य की रूपरेखा से कुछ सामान्य परिचय हो जाय और उद्देश्य यह है कि वास्तविक संतकाव्य के अध्ययन और मनन का शौक पैदा हो, बस।

अब यहां पर संतसाहित्य में कविता का कौन सा 'फार्म' या बाह्यप्रकार काम में लाया गया है, यह भी संकेत कर देना अनुचित न होगा। 'फार्म' के अंदर मुख्य दो बातें हैं—भाषा और छंद।

भाषा के संबंध में हम पहले संकेत कर चुके हैं कि इन्होंने भाषा या कविता के बाह्य को तो बिलकुल ही व्यर्थ की बात समझी। इस ओर इन का ध्यान ही न था और न ये अधिकांश में पढ़े लिखे ही थे। ये थे पहुँचे हुए विचारक और साधक। ये सोधी बात सीधे तरीके से कहने के क्रायल थे। और वसूलन ये कथित, या सर्वसाधारण के रोज़मर्रा की बोलचाल की भाषा में ही अपना संदेश रखने के पक्षपाती थे। पर प्रांतीयता के प्रभाव से ये नहीं बच सके। जो संत जिस प्रांत के रहने वाले थे वहाँ का रंग उन की भाषा पर खूब ही चढ़ा। उदाहरण के लिये नानक की वाणियों में पंजाबीपना और कबीर में बनारसीपने की भरमार की ओर इशारा कर देना काफी होगा।

अब छंद के बारे में। केशव आदि पिंगल-पारदर्शियों की भाँति छंद की जादूगरी से इन भोले संत लोगों का क्या वास्ता? इन के यहां तो बस एक दोहा है, और या तो फिर रागों में कहे हुए पद। पर विशेष भाग दोहा ही है, संत साहित्य समुद्र को पार करने के लिये पोत के समान। इन के पदों में सूर और मीरा आदि के पदों का इतना संगीत तो नहीं है पर कुछ है अवश्य। सूर और मीरा का जीवन ही संगीतमय था, पर यही बात हम कबीर और दादू के बारे में नहीं कह सकते। कुछ पद कबीर के भी गाने लायक बन पड़े हैं पर चिमटा खंजड़ी वाले साधू गवैयाँ ने उन्हें ज्यादा अपनाया बनिस्पत मार्गीय संगीतज्ञों के। इन के लिये तो सूर और मीरा के पद ही सब कुछ हैं। इस का कारण यही है कि संत कवि

ज्ञान और साधना के ज्यादा कायल थे और ये प्रेम और साकार भक्ति के । फलतः इन के पद साधारण व्यक्ति को ज्यादा मधुर जँचेंगे ही ।

पर संत-साहित्य के बाह्य में सब से मार्के की चीज है इन का वाणी-विभाग, उपयुक्त शीर्षकों द्वारा । दूसरे शब्दों में इसे हम वाणी का 'अंगन्यास' कह सकते हैं । प्रत्येक संत की साखियों और 'शब्द' कुछ अंगों में विभाजित हैं और ये अधिकांश संतों में साधारण हैं, जैसे 'गुरु को अंग' 'सुमिरन को अंग' इत्यादि । ये अंग संख्या में लगभग चालीस के हैं:—

१—गुरु	को	अंग
२—सुमिरन	”	”
३—विरह	”	”
४—परचा	”	”
५—जरणा	”	”
६—हैरान	”	”
७—चेतावनी	”	”
८—निहकरमी पतिव्रता	”	”
९—लय	”	”
१०—माया	”	”
११—सूक्ष्म जनम	”	”
१२—मन	”	”
१३—साँच	”	”
१४—साधु	”	”
१५—भेख	”	”
१६—सत्य	”	”
१७—मध्य	”	”
१८—पीव पिछाण	”	”
१९—विचार	”	”
२०—विश्वास	”	”
२१—सारग्रही	”	”
२२—समरथ	”	”
२३—जीवितमृतक	”	”
२४—उपज	”	”
२५—दयानिर्वेरता	”	”
२६—सूरमा	”	”
२७—बेली	”	”
८—कस्तूरिया मृग	”	”

२९—उपज	को	अंग
३०—परख	"	"
३१—सजीवन	"	"
३२—काल	"	"
३३—सूरातन	"	"
३४—सबद	"	"
३५—बिनती	"	"
३६—निंदा	"	"
३७—निरगुन	"	"
३८—सुंदरी	"	"
३९—अबिहड़	"	"
४०—सम्रथाई	"	"

इत्यादि

यों तो इन शीर्षकों का प्रयोग अधिकतर इन के साधारण अर्थों में ही हुआ है। पर कहीं कहीं कुछ विचित्रता भी है, सो उस का मर्म वास्तविक अध्ययन और मनन से ही समझ में आ सकता है। इन के ऊपर सम्यक् विचार करने के लिये एक पृथक् ग्रंथ अपेक्षित है। खेद है कि किसी आलोचक ने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया।

अब रह गया अगले पृष्ठों में दिए संग्रह के बारे में। हिंदी का संतकाव्य एक अगम समुद्र की भाँति है और इस में से अनमोल रत्नों को खोज लेना आसान काम नहीं है। बीस हजार छंद से नीचे तो किसी संत की रचना कही ही नहीं जाती। बहुतों की लाख सवालालाख के ऊपर संख्या भक्तों ने कही है, और ये संत स्वयं भी बहुत से हैं। इस छोटे से संग्रह में कबीर, दादू, नानक आदि कुछ प्रसिद्ध संतों की रचना का ही समावेश हो सका है।

अंत में पाठ के संबंध में हमें केवल यही कहना है कि इस संबंध में हम निरुपाय हैं। संत-साहित्य के जो प्रकाशित ग्रंथ बाजार में लभ्य हैं उन्हीं पर हमें भरोसा करना पड़ा है। कबीर का तो एक संपादित विश्वसनीय संस्करण नागरीप्रचारिणि सभा से निकल चुका है। इसी प्रकार कुछ और सुसंपादित संतों की रचनाएं भी लभ्य हैं, पर अधिकांश में हमें वेलवेडियर प्रेस की 'संतबानी संग्रह' नाम की सीरीज पर ही निर्भर करना पड़ा है। इन पाठों में बड़ी गड़बड़ी है। इस का मुख्य कारण यही है कि अधिकांश संत कवि स्वयं अपनी रचना लिपिबद्ध नहीं कर गये हैं। इन के भक्तों ने इन्हें याद किया, और फिर लिखा, और बहुधा अपनी ओर से यथेष्ट संशोधन और परिमार्जन कर के। भक्तों में भी दो किस्म के लोग थे। एक 'मगजिया,' और दूसरे 'कगदिया,'। बहुत से भक्त भी ऐसे थे जो अपने गुरु देवों की भाँति लिखना पढ़ना नहीं जानते थे और वेदों की भाँति

पुस्तहापुस्त बानियों को कंठस्थ रखते चले आ रहे थे और अपनी रचनाएं भी अपने गुरु का नाम देकर जोड़ते चले जा रहे थे ! इस प्रकार गुरु की वास्तविक रचना का आकार और प्रकार दोनों ही में असाधारण वृद्धि और परिवर्तन होना अनिवार्य था । और हुआ भी ऐसा ही । ये कंठस्थ रखने वाले भक्त ही 'मगजिया' कहलाते थे । ये अब भी मिलते हैं खास कर जयपुर और बनारस में । बानियों को तुरंत लिख डालने वाले भक्त 'कगजिया' कहलाते थे । इन के संस्करणों में मौलिक पाठ में रदोबदल कम ही हुआ, पर किस कवि की रचना हम को मगजियों से मिली है और किस की कगदियों से, यह निर्णय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है ।

अगली जिल्द में जायसी आदि प्रेमगाथा-काव्य के लेखकों के संग्रह होंगे ।

विजया दशमी

सन् १९३८

गणेशप्रसाद द्विवेदी

कबीर

संस्कृत और हिंदी दोनों ही इस लिये प्रसिद्ध हैं कि इनके शायद ही किसी प्राचीन या मध्यकालीन कवि की जन्म या मरण तिथि निर्विवाद रूप से ज्ञात हो, और खेद से कहना पड़ता है कि कबीर भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। भिन्न-भिन्न अन्वेषकों ने भिन्न-भिन्न रूप से कबीर-संबंधी तिथियाँ स्थिर की हैं पर प्रश्न अभी ज्यों का त्यों है। सब के मतों का मिलान करने पर हम केवल इतना ही निश्चय पूर्वक समझ सकते हैं कि इनका आविर्भाव और रचनाकाल चादहवीं से लेकर पंद्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी के बीच में रहा होगा। यहाँ संक्षेप से इनके तिथिसंबंधी विभिन्न मतों पर एक दृष्टि डालने से यह कथन स्पष्ट हो जायगा।

कुछ कबीरपंथियों के अनुसार कबीर ३०० वर्ष जीवित रहे। इनके अनुसार उनका जन्म सं० १२०५ और मृत्यु सं० १५०५ में हुई। कबीर का समय परंतु इस कथन पर तो हम अधिक ध्यान दिए बिना ही कबीर को परमात्मा समझने वाले उनके अनुयायियों की कोरी कल्पना मात्र कह कर एक किनारे रख सकते हैं। डा० हंटर ने इनका जन्म सं० १४३७ में और विल्सन साहब ने इनकी मृत्यु सं० १५७५ में मानी है। रेवरेंड वेस्टकाट इनका जन्म सं० १४९७ और मृत्यु सं० १५७५ में स्थिर करते हैं। इन तिथियों के अतिरिक्त कबीर के जन्म के संबंध में नोचे दिया हुआ एक पद्य बहुत प्रसिद्ध है जो कि इनके प्रधान शिष्य और इनको गद्दी के प्रथम उत्तराधिकारी धर्मदास का रचा हुआ कहा जाता है—

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाठ ठए।

जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए ॥

घन गरजे दामिनि दमके बूँदें बरषें भर लाग गए।

लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए ॥^१

इसके अनुसार कबीर का जन्म सं० १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के सोमवार को मानना चाहिए, परंतु अन्वेषकों को गणना से ज्ञात हुआ है कि सं० १४५५ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा सोमवार को नहीं पड़ती। परंतु सं० १४५६ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा सोमवार को पड़ती है, और उक्त पद्य की “चौदह सौ पचपन साल गए” वाली पंक्ति के आशय पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रचयिता का तात्पर्य सं० १४५५ वाले साल के बीत जाने के बाद आने वाले नए साल अर्थात् सं०

१४५६ से ही रहा होगा, अन्यथा उक्त पंक्ति में आए हुए “गए” शब्द का कोई अर्थ नहीं हो सकता ।

इसी प्रकार इनके स्वर्गवास की तिथि के संबंध में भी निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुत प्रचलित हैं—

(१) संवत् पंद्रह सौ औ पाँच मौँ, मगहर कियो गमन ।

अगहन सुदी एकादसी, मिले पवन में पवन ॥

(२) संवत् पंद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन ।

माघ सुदी एकादसी, रलो पवन में पवन ॥

इन में से प्रथम के अनुसार कबीर की मृत्यु सं० १५०५ में और दूसरे के अनुसार सं० १५७५ में सिद्ध होती है, पर बार न दिए होने के कारण गणना से दोनों तिथियों की जाँच करना असंभव है और फिर दोनों में अंतर भी ७० वर्ष का है। परंतु अब तक के प्राप्त प्रमाणों से ऐसा जान पड़ता है कि कबीर साहब सं० १५७५ तक जीवित रहे होंगे। कम से कम इतना तो हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि सं० १५०५ के बहुत दिनों बाद तक कबीर अवश्य जीवित रहे होंगे। इस धारणा का सब से मुख्य कारण यह है — यह बात लोकप्रसिद्ध है कि कबीर बादशाह सिकंदर लोदी के समकालीन थे और उसी के अत्याचार से तंग आकर उन्हें काशी छोड़कर मगहर चला जाना पड़ा था। परंतु सिकंदर लोदी का राजत्वकाल सं० १५७४ से १५८३ ई० (१५१७-२६) तक था। ऐसी अवस्था में कबीर की मृत्यु सं० १५०५ में मानना असंभव है, और साथ ही सं० १५७५ तक कबीर का जीवित रहना मानना भी असंगत नहीं जान पड़ता। फिर रेवरेंड वेस्टकाट का कहना है कि गुरु नानक जब २७ वर्ष के थे तब उनकी कबीर से मुलाकात हुई थी, और नानक की कविताओं पर कबीर की इतनी गहरी और स्पष्ट छाप देखते हुए इस कथन पर विश्वास करने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। नानक का जन्म सं० १५२६ में हुआ था। सो इस प्रकार भी कबीर का कम से कम सं० १५५३ तक जीवित रहना तो निश्चय ही समझना चाहिए। ‘भक्ति सुधाविंदु स्वाद’ के लेखक सीतारामशरण भगवानप्रसाद ने कबीर का जन्म सं० १४५१ और मृत्यु सं० १५५२ में मानी है।^१ परन्तु इसके अनुसार कबीर की मृत्यु नानक से भेंट होने के एक साल पहले ही सिद्ध होती है। इनके मृत्यु संबंधी सब प्रमाणों की परीक्षा करने पर सं० १५७५ को ही इनकी निधनतिथि मानना ठीक जान पड़ता है। इस तिथि के संबंध में ऊपर जो दोहा उद्धृत किया गया है उसकी पुष्टि ‘कबीर कसौटी’ से भी होती है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि ‘माघ सुदी एकादशी,

दिन बुधवार, सं० १५७५ को काशी को तजकर मगहर को चले।^१ वेस्टकाट साहब भी इसी मरण तिथि को ठीक समझते हैं।^२ डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा अंडरहिल साहब भी इसी को प्रामाणिक तिथि समझते हैं।^३

अंत में अब तक मिले हुए सब प्रमाणों की परीक्षा करने पर कबीर का जन्म सं० १४५६ और मृत्यु सं० १५७५ के लगभग मानना ही युक्तिसंगत सिद्ध होता है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि इन तिथियों में से कोई भी निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं है, पर इतना कहने में हम को कोई आपत्ति नहीं है कि कबीर की जीवन मरण संबंधी निकटतम तिथियाँ यही जान पड़ती हैं। पर इन तिथियों पर विश्वास करने में एक कठिनाई यह पड़ती है कि इनके अनुसार कबीर की आयु प्रायः १२० साल की ठहरती है और साधारणतया इतना दीर्घजीवी कोई बिरला ही हुआ करता है। इसका समाधान लोग इस प्रकार करते हैं कि कबीर के जीवनयात्रा के नियम तथा उनके रहन सहन के ढंग कुछ ऐसे थे कि उनका इतनी बड़ी आयु पाना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। इस समय भी सरल जीवन बिताने वाले ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जिनकी आयु सवा सौ वर्ष से भी ऊपर हो चुकी है। फिर यह बात लोकप्रसिद्ध है कि कबीर एक पहुँचे हुए फकीर और योगी थे। हठ और राजयोग के प्रभाव से जरा और व्याधि के ऊपर विजय प्राप्त कर सकना अब एक वैज्ञानिक सत्य माना जाता है। पुराकाल के ऋषि मुनि तो योगाभ्यास के बल से मृत्यु को भी बश में रखते थे, और ऐसी अवस्था में कबीर का साधु और संयत जीवन बिताने के परिणाम स्वरूप १२० वर्ष जोना कोई अनहोनी बात न मानी जानी चाहिए।

कबीर का जन्म संबंधी कई कथाएँ और किंवदंतियाँ प्रचलित हैं पर सब का उल्लेख यहां असंभव है। यद्यपि यह सभी कथाएँ रोचक कबीर का आविर्भाव हैं पर इन में से किस को हम प्रमाण मान सकते हैं यह निश्चय करना बहुत कठिन है।^४ इनमें से एक का, जो सब से अधिक प्रचलित और जिस का प्रायः सभी जगह उल्लेख पाया जाता है, वर्णन किया जाता है—काशी में स्वामी रामानंद के शिष्य एक ब्राह्मण रहते थे। वे एक बार अपनी विधवा कन्या को लेकर स्वामी जी के पास दर्शनार्थ गए और

^१ 'कबीर कसौटी' पृ० २४

^२ 'कबीर ऐंड दि कबीर पंथ'—रेवरेंड वेस्टकाट (क्राइस्ट चर्च मिशन प्रेस)

^३ (बनहड्डेड पोपस आक्र कबीर)—मैकमिलन कंपनी भूमिका, पृ० १०६

^४ बनारस गज़टियर के अनुसार कबीर का जन्म आजमगढ़ ज़िले के बैलहटा नाम के गाँव में सं० १४५५ में (ई० १३९८) और मृत्यु सं० १५७५ में हुई थी। रेवरेंड वेस्टकाट साहब इस मृत्यु तिथि को ठीक समझते हैं।

प्रणाम करने पर उन्होंने उस लड़की को आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम्हें एक बड़ा प्रतापी पुत्र होगा। परंतु उसके पिता ने चौंक कर स्वामी जी से लड़की का वैधव्य बताया पर यह सुनकर भी स्वामी जी ने थोड़ी देर तक ध्यानमग्न रहकर कुछ खेद प्रगट करते हुए कहा कि यह आशीर्वाद अन्यथा नहीं हो सकेगा। अंत में उसे एक लड़का हुआ और अपनी लज्जा छिपाने के लिये वह उस नवजान शिशु को लहर तारा नाम के एक तालाब में डाल आई। पर सुयोग से थोड़ी ही देर बाद नीरू नाम का एक जुलाहा नीमा नाम की अपनी स्त्री के साथ उधर आ निकला। ये दोनों बिचारे संतान सुख के बिना लालायित रहा करते थे और इस अवसर पर ऐसी अवस्था में सुंदर मुखश्रीयुक्त उस होनहार शिशु को देखकर वे उसे अपना पोष्य पुत्र बनाने का निश्चय कर बड़े प्रेम से उसे उठा ले गए और उसका लालन-पालन करने लगे। यहां पर यह कह देना उचित जान पड़ता है कि उस विधवा ब्राह्मण कन्या के पुत्र होने की बात कोई असंभव घटना नहीं है। ऐसी घटनाएं प्रायः हुआ करती हैं, पर इस संबंध में रामानंद के आशीर्वाद वाली कथा शायद उस लड़की की लज्जा रखने और कबीर का उत्पत्ति को एक निराला रूप देने के लिये ही जोड़ी गई है। ऐसी कथाएँ प्रायः महापुरुषों की उत्पत्ति के संबंध में जोड़ी हुई मिलती हैं। मुसलमान घराने में लालित पालित होते हुए भी कबीर का हिंदू विचारों के साथ इतनी स्वाभाविक सहानुभूति रखना बलात् यह धारणा प्रबल करता है कि हो न हो इनकी उत्पत्ति किसी हिंदू कुल में ही हुई होगी। यद्यपि इन की रचनाओं से इन के जुलाहा होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं, पर साथ ही ऐसे पद्य भी मिलते हैं जिन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हें अपने जुलाहा होने और किसी ब्राह्मण के कुल में न उत्पन्न होने पर कभी कभी बड़ा दुख होता था। दो एक पद्य नीचे दिए जाते हैं—

जाति जुलाहा मति को धीर ।
हरषि हरषि गुन रमै कबीर ॥
मेरे राम की अभैपद नगरी ,
कहै कबीर जुलाहा ।
तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा ।

उक्त पद्य में यह अपने को स्पष्ट रूप से जुलाहा कहते हैं और साथ ही नीचे दिए हुए पद्य में वह इसी विषय पर खेद प्रगट करते हुए दिखाई पड़ते हैं—

पूरब जनम हम ब्राह्मन होते ओछे करम तप हीना ।
राम देव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कोना ॥

यह इस पद्य में पूर्व जन्म में अपने को ब्राह्मण होना तथा इसी जन्म में किए हुए नीच कर्मों के प्रभाव से स्रष्टा द्वारा जुलाहा के घर में उत्पन्न किए जाने की बात कहते हैं। उनका विश्वास था कि उस जन्म में हरि सेवा नहीं बन पड़ी

और इसी पाप से उद्धार पाने के लिये ही शायद उन्होंने निरंतर ईश गुण गान में मग्न रह कर अपनी पूर्वजन्म की भूल सुधारने की चेष्टा की थी।

उक्त कथन से कबीर का जन्म काशी में सिद्ध होता है पर कुछ समालोचक ग्रंथ साहब में दिए हुए कबीर के एक पद के आधार पर इनका जन्मस्थान मगहर मानते हैं। उस पद की एक पंक्ति यों है—“पहिले दरसन मगहर पायो पुनि काशी बसे आई।” इस पंक्ति के आधार पर कबीर का उस विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से काशी में प्रगट होने की बात निराधार सिद्ध होती है, और शायद इसी के आधार पर कुछ विद्वान् इन्हें नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानना ही ठीक समझते हैं। परंतु ग्रंथ साहब वाले उक्त पद के कबीर की रचना होने में कुछ लोग संदेह करते हैं, और संदेह होने का उचित कारण भी है। ग्रंथ साहब एक ऐसा संग्रह ग्रंथ है जिस में अनेक संतों की बानियों का संकलन है। इस का वर्तमान रूप कबीर के मरने के सैकड़ों वर्ष बाद हुआ है। और संकलनकर्त्ता गण, जैसा कि स्वाभाविक है, संतों की महिमा बढ़ाने के लिये जो कोई भी पद जिस के नाम से मिला, मिलाते चले गए हैं। तात्पर्य यह है कि इस में कबीर के बहुत से ऐसे पदों का होना जिन्हें उन्होंने स्वयं कभी नहीं बनाया और जिन्हें उनके अनुयायी किसी खास पक्ष को दृढ़ करने या और ही किसी मतलब से रचा होगा, असंभव नहीं है। और इसी कारण से हम ग्रंथ साहब की उक्त पंक्ति को कोई विशेष महत्व देने में असमर्थ हैं, और सो भी खास कर ऐसी अवस्था में जब कि बीजक आदि कबीर के अधिक प्रमाणित ग्रंथों में उनके काशी में जन्म लेने और अंतकाल में मगहर जाने के पक्ष में कई उक्तियाँ मिलती हैं। ग्रंथ साहब की उक्त पंक्ति पर विचार करते हुए बाबू श्यामसुंदर दास कहते हैं कि ‘कदाचित् उनका बालकपन मगहर में बीता हो और वे पीछे से आकर काशी में बसे हों, जहाँ से अंतकाल के कुछ पूर्व उन्हें पुनः मगहर जाना पड़ा हो।’ सभी बातों पर विचार करते हुए बाबू साहब भी इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि ‘कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार में लालित पालित हुए थे।’^२

कबीर के नाम के संबंध में भी दो एक कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि तालाब में पाए हुए उस बच्चे के नामकरण के लिये नीरू और नीमा उसे काजी के पास ले गए। कुरानशरीफ खोलते ही पहले उसकी निगाह ‘कबीर’ शब्द पर पड़ी पर उसे एक जुलाहे के लड़के का नाम ‘कबीर’ रखते हुए कुछ हिचक मालूम हुई। यह देखकर उसने

^१ कबीरग्रंथावली—बाबू श्यामसुंदर दास, काशी नागरीप्रचारिणीसभा पृ० २४

^२ वही, पृ० २४।

और कई काजियों से कुरानशरीफ खुलवाया पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ जबकि सभी ने वही पृष्ठ खोले और सभी की निगाह पहले 'कबीर' वाले शब्द पर ही पड़ी। यह देख काजी का माथा ठनका और उसने यह कहते हुए उस लड़के का नाम 'कबीर' रखवा कि हो न हो यह लड़का कोई बड़ा प्रतापी मनुष्य होगा। अरबी में कबीर शब्द के अर्थ होते हैं 'सबसे महान्'। 'अकबर' शब्द की उत्पत्ति भी उसी धातु से है। 'कबीर' और 'अकबर' यह दोनों ही शब्द ईश्वर के विशेषण हैं।

कबीर के जीवन का सुसंबद्ध कोई वृत्तांत नहीं मिलता। जो कुछ अब तक जाना जा सका है वह किंवदंतियों के आधार पर इनके जीवन से गुरु संबंध रखने वाली कुछ मुख्य घटनाएँ हैं। इनमें से कुछ इनके विवाह, इनकी संतान, गुरु, मृत्यु तथा इनके द्वारा किए गए माने जाने वाले कुछ अलौकिक कृत्यों से संबंध रखती हैं।

इस प्रकार की कुछ कथाओं की पुष्टि तत्कालीन इतिहास से भी होती है और इस लिए इनमें से कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन यहाँ आवश्यक है। इनके गुरु कौन थे, इस विषय को लेकर काफी मतभेद चला आ रहा है। कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर ने कभी किसी को अपना गुरु न बनाया होगा। उनके इस कथन का आधार यह है, जैसा कि कबीर की रचनाओं से भी स्पष्ट है, कि कबीर ने यदि अपने जीवन में कुछ किया तो वह 'गुरुडम' आदि बुद्धिस्वातंत्र्य तथा विचारस्वातंत्र्य आदि में बाधा डालने वाली पुरानी प्रथाओं का विरोध तथा अंधविश्वास पर कुठाराघात ही है। ऐसा मनुष्य किसी को अपना गुरु बनावे यह ज़रा कुछ अस्वाभाविक जान पड़ता है। यह तर्क बहुत ठीक है पर इसमें जिस प्रकार के 'गुरु' या 'गुरुडम' की ओर संकेत किया गया है उसके अतिरिक्त और प्रकार के भी गुरु हो सकते हैं। आधुनिक समय में भी संसार के बड़े से बड़े स्वतंत्र विचार वाले भी किसी न किसी को अपना मानसिक गुरु या पथप्रदर्शक मानते हैं, पर इस का मतलब यह न होना चाहिये कि जिसको पथप्रदर्शक माना वह जो कुछ भी कहता हो या कह गया हो वही आँख मूंद कर करते चलना। प्रत्येक प्रकार के कार्यक्षेत्र में कुछ महापुरुष ऐसे हो गए हैं जिनके कार्यकलाप को मनन करने, उनके कथनों पर विचार करने या उनके स्मरण मात्र से हमें अपने कर्तव्यपालन में एक लोकोत्तर उत्तेजना तथा उत्साह सा मिल जाता है, कठिन समस्याओं के सुलझाने की तरकीब मालूम हो जाती है और हम आगे बढ़ चलते हैं। इसी को अंग्रेजी में 'इन्सपिरेशन' पाना कहते हैं। पर यह 'गुरुडम' से बिल्कुल भिन्न है। कबीर ने अपनी रचनाओं में जहाँ एक ओर अंधविश्वास और 'गुरुडम' के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई है वहीं दूसरी ओर उन्होंने बिना गुरु के 'चेताए'

ईश्वर का मिलना भी कठिन बताया है, दोनों ही प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। 'सद्गुरु' की आवश्यकता उसके 'लक्षण' तथा परम पद की प्राप्ति के संबंध में एक उपयुक्त गुरु की अनिवार्यता पर एक स्वर से सभी संत कवियों ने बड़ा जोर दिया है। पर खेद है कि कबीर जिस अर्थ में एक सद्गुरु होने की आवश्यकता का अनुभव करते थे, उसका महत्व इनके अनुयायी क्रमशः भूलने लगे और आगे चल कर वह सचमुच 'गुरुडम' में ही परिणत हो गया। इस विषय पर आगे यथा-स्थान प्रकाश डाला जायगा। जो हो, सब बातों पर समष्टि रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर भक्त के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए एक विशेष सीमा तक गुरु का होना आवश्यक समझते थे और उन्होंने अपना गुरु स्वयं स्वामी रामानंद को बनाया था। इसके संबंध में एक विचित्र कथा प्रचलित है। कहते हैं कि लड़कपन में ही कबीर को लोगों को उपदेश देते फिरने की लत पड़ गई थी। मगर उस समय उपदेश देने का अधिकारी वही समझा जाता था जिसने स्वयं किसी योग्य गुरु से दीक्षा ली हो, पर कबीर ने किसी को गुरु नहीं बनाया था और इस लिये इन्हें 'निगुरा' कह कर लोग इनका मखौल उड़ाया करते थे। स्वतंत्र विचार के पक्षपाती कबीर को जनता के सम्मुख अपने विचार प्रगट करने के लिए गुरु की छाप लगा कर अपने को पेटेंट बनाने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ था। आगे चल कर इन्होंने स्वामी रामानंद के गुणों और विचारों पर मुग्ध होकर अथवा उपदेश देने का अधिकारी बनने भर के लिये इन्होंने स्वामी जी को जैसे हो अपना गुरु बनाने का निश्चय कर लिया। इसके सिवा कबीर स्वभाव से ही हिंदुओं में प्रचलित प्रथाओं के प्रेमी थे। जुलाहे के घर में लालित पालित होते हुए भी रामनाम जपने और धार्मिक उपदेश देने का इनको व्यसन तो हो ही गया था, कभी कभी ये गले में जनेऊ भी डाल लिया करते थे। इससे कट्टर और सनातनी हिंदू, विशेष कर हिंदुओं के धर्मयाजक पंडित और पुरोहित लोग इनसे बहुत चिढ़ गए और अनधिकारी कह कर इन्हें बहुत तंग करने लगे। स्वामी रामानंद को उस समय सभी बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। कबीर को निश्चय था कि यदि वे मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लेंगे तो सभी की जवान बंद हो जायगी। पर साथ ही साथ यह सोच कर कि एक जुलाहे को भला वे कब दीक्षा देने लगे, इन्होंने एक विचित्र रीति से अपना गुरु बनाया। स्वामी रामानंद नित्य प्रातःकाल चार बजे गंगास्नान करने जाते थे; कबीर को यह बात मालूम थी। एक दिन उनके आने के समय से कुछ पहले जिन सीढ़ियों से उतर कर वह गंगा जी तक पहुँचते थे उनमें से किसी एक पर चुपचाप लेट रहे। स्वामी रामानंद बेखटके सीढ़ियाँ तय करते जा रहे थे कि यकायक उनका खड़ाऊँ कबीर के सर से टकराया और वह रोने लगे। स्वामी जी को यह देख कर बड़ा दुख हुआ और वह उस रोते हुए लड़के के सर पर हाथ फेरते हुए उससे 'राम' 'राम' कहने का उपदेश देने लगे। कबीर ने रोना बंद कर कहा, "गुरु जी, क्या मैं 'राम'

‘राम’ कह सकता हूँ ?” स्वामी जी ने कहा. “हाँ, ‘राम’ ‘राम’ कह ।” कबीर ने उसी समय ‘राम’ ‘राम’ कहना आरंभ किया। दूसरे ही दिन उन्होंने अपने को रामानंद का शिष्य घोषित कर दिया। हिंदू लोग इस पर बहुत बिगड़े और अंत में अपना संदेह दूर करने के लिये रामानंद के पास यह पूछने पहुँचे कि क्या आपने सचमुच एक मुसलमान बालक को अपना शिष्य बनाया है ? पर उन्होंने तुरत इस बात को झूठ बताया। इस पर कबीर ने वहाँ पहुँच कर उस रात की सारी बातें उन्हें बताईं और पूछा कहा कि क्या आपने ‘राम’ ‘राम’ कहने की अनुमति नहीं दी थी ?” स्वामी जी इस पर निरुत्तर हो गये और उसी क्षण से उन्होंने प्रगट रूप से कबीर को अपना शिष्य स्वीकार किया। एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि कबीर रामानंद के शिष्य के रूप में उनके साथ बहुत दिन तक रहे भी थे और उनके सब शिष्यों में अग्रगण्य थे। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने बहुत से चमत्कार भी रामानंद को दिखाए थे और उन्हें कभी कभी उपदेश भी देते थे। एक अवसर पर रामानंद ने अपने स्वर्गीय गुरु का श्राद्ध करते समय अपने शिष्यों को दूध लाने के लिए भेजा। इनके और शिष्य तो दूध के लिये ग्वालों के पास गए पर कबीर वहाँ पहुँचे जहाँ मरी हुई गैयों की हड्डियाँ पड़ी रहती थीं। वहाँ उन्होंने उन हड्डियों को इकट्ठा कर उनसे दूध माँगा। जब उनके गुरु जी ने इस अनोखे काम की कैफ़ियत माँगी तो उन्होंने कहा कि मरे हुए गुरु के लिए मरी गैयों का दूध ही उपयुक्त होगा।

परंतु इतिहास की कसौटी पर कसी जाने पर रामानंद और कबीर संबंधी उपर्युक्त किंवदंतियाँ बहुत कुछ निराधार सी जँचने लगती हैं। कबीर का जन्म सं० १४५६ माना गया है ; और इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि रामानंद की मृत्यु सं० १४५२ या ५३ में ही हो गई थी। अधिक से अधिक सं० १४६७ के बाद कोई भी स्वामी रामानंद का जीवित रहना नहीं मानेगा। यदि रामानंद वास्तव में सं० १४५२ में ही मर गए थे तब तो कबीर से उनका साक्षात्कार भी असंभव माना जायगा, पर यदि सं० १४६७ में उनकी मृत्यु मानी जाय तो यह कहना पड़ेगा कि उस समय उनकी (कबीर की) अवस्था अधिक से अधिक ११ वर्ष की रही होगी। इस बात को स्मरण रखते हुए भी कि बहुत कम उमर में ही कबीर को उपदेश देने की आदत पड़ गई थी और इसके लिये उन्हें गुरु की आवश्यकता का अनुभव हुआ था, यह विश्वास करना ज़रा कठिन जान पड़ता है कि नौ या दस बरस की उमर में ही कबीर इतने मार्के के उपदेशक हो गये थे कि बड़े बड़े पंडितों का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हुए और फलतः किसी योग्य गुरु के अभाव में कबीर को जिन्होंने इस उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य के लिये अनधिकारी करार देना जरूरी समझा। इस शंका का समाधान एक ही तर्क द्वारा कुछ अंशों तक हो सकता है। कबीर के जीवन-संबंधी प्रायः सभी बातों में थोड़ी बहुत अलौकिकता है। विलक्षण प्रतिभासम्पन्न तो ये थे ही, और ऐसी अवस्था में हो सकता है कि आरंभ से ही रामानंद के वाता-

वरण में रहने के कारण बचपन से ही उपदेशक या सुधारक बनने की उच्चाशा से प्रेरित हो यह उपदेशक बनने के प्रयत्न में प्रवृत्त हो गए हों।

कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर ने लोई नाम की एक स्त्री को पत्नी रूप से ग्रहण किया था। इस धारणा का आधार यह कथा है—एक कबीर का गार्हस्थ्य बार कबीर देशाटन करते हुए किसी तपोवन में एक साधु की जीवन कुटिया के पास पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत बीस वर्ष की एक युवती कन्या ने किया। कबीर की उमर उस समय लगभग तीस बरस के थी। उस युवती ने इनसे उनका नाम पूछा तो उन्होंने अपना नाम 'कबीर' बताया। क्रमशः उसने इनकी जाति, वर्ण, वंश और संप्रदाय आदि के बारे में भी पूछा, पर सभी के उत्तर में उन्होंने सिर्फ, 'कबीर' कहा। इस पर उस कन्या ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि मैंने बहुत से साधु संतों के दर्शन किए हैं पर किसी ने मुझे ऐसा उत्तर नहीं दिया। कबीर ने कहा ठीक है, अन्य साधुओं के जाँति पाँति और संप्रदाय आदि हुआ करते हैं पर मेरे यह सब कुछ नहीं हैं। इसी बीच में वहाँ छै अभ्यागत साधु आ पहुँचे। उस कन्या ने सत्कार केलिये सभी के सामने एक एक प्याला दूध रक्खा। और सब तो अपना अपना हिस्सा पी गए पर कबीर ने अपना प्याला एक ओर अलग रख दिया और पूँछने पर बताया कि यह मैंने एक और साधु के लिये रख छोड़ा है जो कि यहाँ आ रहे हैं और गंगा उस पार तक पहुँच गए हैं। थोड़ी ही देर में यह बात ठीक उतरी और सचमुच वह साधु वहाँ आ पहुँचे। उस कन्या की उत्पत्ति संबंध में यह कथा प्रचलित है—उसी कुटी में जिसमें कबीर और लोई की मुलाकात हुई थी, पहले एक साधु रहा करते थे। उन्होंने गंगा जी में स्नान करते समय एक दिन देखा कि बीच दरिया में ऊनी कपड़ों में लपेटी हुई कोई चीज किनारे की ओर बहती चली आ रही है। पास आने पर उन्होंने उसे उठा लिया और खोलने पर उन्हें उसमें एक सद्यः प्रसूता कन्या मिली। वे इसे ईश्वरीय दान समझ बड़े प्रेम से कुटी में ले जाकर दूध से उसका पालन-पोषण करने लगे। क्रमशः वह कन्या बड़ी हुई और उन्होंने उसका नाम भी लोई इसलिए रक्खा था कि वह कपड़ों में लपेटी हुई मिली थी। मरते समय वह लोई से कह गए थे कि किसी दिन उसे एक संत के दर्शन होंगे जो कि भविष्य में उसके पथप्रदर्शक होंगे। अंत में यह हुआ कि लोई उसी दिन कबीर की शिष्या हो गई और उनके साथ काशी चली गई। मुसलमानी किंवदंतियों में लोई कबीर की पत्नी मानी गई है, पर हिंदुओं में प्रचलित किंवदंतियों के आधार पर अधिक से अधिक यह कबीर की शिष्या मात्र सिद्ध होती है। बहुत से वृत्तांतों में तो इसका नामोल्लेख भी नहीं किया गया है। सिखों में लोई और कबीर के संबंध की कई कथाएँ प्रचलित हैं। मि० मेकालिक द्वारा संगृहीत सिखों की किंवदंतियों में कहा जाता है कि काशी आकर लोई ने भी जुलाहे का काम सीखा और घर में नीरू और नीमा की सहायता करने लगी। कबीर को साधु और अभ्यागतों के सत्कार का व्यसन था। जो आ जाता

था सब काम छोड़ उसी की सेवा में तत्पर हो जाते थे और सब के लिये भोजन आदि लोई को ही बनाना पड़ता था। वह प्रायः कार्यभार से अधीर भी हो जाया करती थी, यहाँ तक कि एक बार उसने एक अतिथि साधु के लिये भोजन बनाने से इनकार भी कर दिया था और इस पर कबीर ने उसे अच्छी डाँट भी बताई थी। अंत में लोई ने इस अवज्ञा के लिये माफी माँगी और भविष्य में कभी ऐसी धृष्टता न करने की प्रतिज्ञा की।

कहा जाता है कबीर के 'कमाल' नामक एक पुत्र और 'कमाली' नामक पुत्री थी। कुछ लोग इन्हें कबीर की औरस संतान मानते हैं और कुछ कबीर की संतति लोगों के अनुसार यह केवल पोष्य पुत्र और कन्या थे। अधिकतर प्रमाण इनके पोष्य संतान होने के पक्ष में ही मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में भी विचित्र कथाएँ प्रचलित हैं। एक बार जब कबीर गंगा तट पर शेख तकी के साथ टहल रहे थे, किसी बच्चे की लाश पानी में बहती हुई दिखाई पड़ी। शेख तकी ने कबीर को उसे ज़िंदा कर देने को ललकारा। कबीर ने उसे जिला दिया और घर ले जाकर उसे अपना पोष्य पुत्र बनाया। कबीर के प्रताप से जब वह बच्चा जी उठा था तो तकी साहब ने कबीर की आध्यात्मिक शक्ति की तारीफ़ करते हुए कहा था कि आपको 'कमाल' हासिल है। इसी बात पर उस लड़के का नाम 'कमाल' रख दिया गया था। कमाली की उत्पत्ति के संबंध में भी कुछ इसी ढंग की एक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि यह एक पड़ोसी की कन्या थी जिसे मर जाने के बाद कबीर ने ज़िंदा किया था। कुछ किंवदंतियों के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि यह और कोई नहीं शेख तकी की ही मृत कन्या थी जिसे आठ दिन क़ब्र में रहने के बाद कबीर ने ज़िंदा किया था।

कमाल और कमाली के संबंध में कोई और परिचय नहीं मिलता। कमाल के बारे में कहा जाता है कि वह कबीर के सिद्धांतों का विरोधी था और उनके खंडन में कविताएँ लिखा करता था। एक किंवदंती में यह भी कहा गया है कि वह कबीर का पुत्र नहीं बल्कि उनके प्रधान शिष्यों में से एक था जो कि आगे दादू का गुरु हुआ जिन्होंने 'दादूपंथी' नाम से एक नया पंथ चलाया। कुछ दंतकथाओं में यह भी कहा जाता है कि कमाल का शेख तकी से विशेष संबंध था और उन्होंने ही भूँसी से दस मील दूर जलालपुर नामक शहर में अपनी गद्दी स्थापित करने का आदेश किया था। जो हो सभी किंवदंतियों में इस बात का कुछ परिचय मिलता है कि कबीर और कमाल में मतभेद अवश्य था। इसी विषय को लेकर निम्नलिखित दोहा बहुत प्रचलित है—

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।

हरि का सुमिरन छाड़ि के, घर ले आया माल ॥

हिंदू घराने में अब भी बहुधा लोग अपने लड़कों की भर्त्सना करते समय यह दोहा प्रायः पढ़ा करते हैं।

कमाली के संबंध में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण कहानी प्रसिद्ध है। एक बार वह किसी कुएँ पर पानी भर रही थी कि एक प्यासा ब्राह्मण उधर से आ निकला और उसने इस से पानी माँगा और इसने पानी पिला भी दिया। पर पीने पर जब उसे मालूम हुआ कि उसने तुर्किन के हाथ का पानी पिया तो वह बिल्कुल घबड़ा गया और कहने लगा कि तूने मुझे जातिच्युत कर दिया। वह मर्माहत होकर कबीर के पास पहुँचा और उनसे अपने जातिभ्रष्ट होने की करुण कहानी कहते हुए कोई उपाय सुझाने को कहा। इस पर कबीर ने यह कहा—

“ पाँड़े बूझि पियहु तुम पानी।

जिहि मटिया के घर मह बैठे, ता मह सिष्टि समानी।
छुपन कोटि-जादव जहं भीजे, मुनिजन सहस-अठासी।
पैग पैग पैगंबर गाडे, सो सभ सरि भौ मांटी।
तेहि मटिया के भांड़े पांड़े, बूझि पियहु तुम पानी।
मच्छ कच्छ घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवे, पसु मानुष सभ सरिया।
हाड़ भरी भरि गूद गरीगरि, दूध कहां ते आया।
सो लै पांड़े जेवन बैठे, मटियहि छूति लगाया।
बेद कितेव छांड़ि देहु पांड़े, ई सभ मत के भरमा।
कहहि कबीर सुनहु हो पांड़े, ई सभ तुमरे करमा।^१

इस पद्य के विचारों पर ध्यान देने पर आश्चर्य होता है। कबीर ने इसमें छुवाछूत के प्रश्न को कितनी सरल और साथ ही अकाट्य युक्ति से हल कर दिया है। वेद और कुरान दोनों को एक साथ ही इसमें केवल मन का भ्रम मात्र बतलाया गया है। एक पंद्रहवीं शताब्दी के कवि के लिये इतने दूर की सूझ, अपने समय से इतना आगे सोचना अवश्य एक बहुत बड़ी बात है। जो हो, कहा जाता है कबीर की इस युक्ति को सुनकर उस ब्राह्मण के, जो कमाली के हाथ का पानी पीने से अपने धर्मभ्रष्ट और जातिभ्रष्ट समझकर शोकसागर में निमग्न हो गया था, सारे संदेह मिट गए और उसने कबीर के पैरों पर गिर पड़ा और अपना शिष्य स्वीकार करने की भिन्ना मांगने लगा।

कबीर का अधिकांश समय साधुओं के सत्संग, उनकी सेवा तथा ज्ञान की खोज में कभी कभी विभिन्न प्रदेशों में घूमने में ही व्यतीत होता कबीर का यह जीवन था। साधुओं के अतिरिक्त यह यथाशक्ति मनुष्य मात्र की सेवा में तत्पर रहा करते थे। इन कामों के अतिरिक्त ये अपने घर के काम—कपड़ा बुनने और कातने के लिये भी समय निकाल लेते थे, पर हरि भजन और संत सेवा में ये इतने निमग्न रहा करते थे कि इनके घर के लोगों को

अक्सर यह शिकायत रहा करती थी कि यह अपने काम में मन नहीं लगाते । इनकी माता नीमा प्रायः इनके अलहड़पने पर इन्हें कोसा करती थी । इनकी स्त्री या शिष्या लोई भी कभी कभी इन के अत्यधिक साधुप्रेम से घबरा जाती थी जैसा कि पहले कहा जा चुका है । पर यह सब होते हुए भी ये अपना जुलाहे का काम सदा कुछ न कुछ कर ही लेते थे । कभी कभी इस विषय पर साधुओं से इनका वादाविवाद भी हो जाता था । एक बार एक साधु ने कहा तुम यह नीच कर्म छोड़ क्यों नहीं देते ? इस का उन्होंने जो मुहत्तोड़ जवाब दिया था वह ध्यान देने योग्य है—

जोलहा बीनहु हो हरिनामा, जाके सुर नर मुनि धरें ध्याना ॥
 ताना तनै को अहुँठा लीन्हौ, चरखी चारिहुँ बेदा ॥
 सर खूँटी एक राम नराएन, पूरन प्रगटे कामा ॥
 भवसागर एक कठवत कीन्हौ, तामहँ माँड़ी साना ॥
 माँड़ी के तन मांड़ि रहा है, मांड़ी बिरले नाना ॥
 चाँद सूरज दुइ गोड़ा कीन्हौ, मांझ-दीप कियो मांझा ॥
 त्रिभुवन नाथ जो माँजन लागे, स्याम मुररिया दीन्हा ॥
 पाई करि जब भरना लीन्हौ, वै बाँधे को रामा ॥
 वै भरा तिहुँ लोकहि बाँधे, कोइ न रहत उबाना ॥
 तोनि लोक एक करिगह कीन्हौ, दिगभग कीन्हौ ताना ॥
 आदि पुरुष बैठावन बैठे, कविरा जाति समाना ॥^१

इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि कबीर नीरू और नीमा के साथ रहते और जुलाहे का काम किया करते थे पर वे अपना अधिकांश समय साधु संतों के सत्संग में ही बिताते थे । इनके साधु मित्रों में से बहुतों ने इनसे यह पेशा छोड़ने का आग्रह किया पर उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि अपना सांसारिक सब काम छोड़ कर केवल राम नाम रटना ही मनुष्य का एक मात्र कर्त्तव्य नहीं है । सच्चाई और ईमानदारी से अपना लौकिक कर्त्तव्य पालन करते हुए जीवन बिताना ही ईश्वर और सत्य को प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है ।^२ दांगी और पाखंडी, या बने हुए साधुओं की यह बड़ी तीव्र आलोचना किया करते थे और सदा उन्हें अपने मुख्य कर्त्तव्य की याद दिलाया करते थे । पर उधर उनके घर के लोगों को, खास कर इनकी माता नीमा को हमेशा यह शिकायत रहा करती थी कि यह अपने घर के काम में मन नहीं लगाते और अपना सब समय साधुओं की सेवा में ही लगा देते थे । इनकी स्त्री या शिष्या कोई भी प्रायः इनके अत्यधिक साधु सेवा से घबरा उठती थी । इनकी माता तो इतनी घबरा उठती थी

कि वह अक्सर यह कह कर रोया करती थी कि इस कंठीधारी लड़के ने हमारा सब कारोबार ही चौपट कर दिया, यह मर क्यों नहीं गया, इत्यादि। पर जो हो इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कबीर कपड़े बुनने और उन्हें बाज़ार में बेचने का काम करते थे। एक दफ़े की बात है कि कबीर अपना बनाया हुआ कोई कपड़ा बाज़ार में बेचने के लिये बैठे हुए थे। ये उसका दाम पाँच टका बता रहे थे पर कोई तीन टके से ज्यादा देने पर तैयार नहीं होता था। आखीरकार एक दलाल इनकी मदद करने को पहुँचा और उसने उस कपड़े का दाम जब बारह टके लगाया तो सात टके पर उसे खरीदने वाले ग्राहक मिल गए और आखीरकार उस दलाल ने सात टके पर वह कपड़ा बेच भी दिया जिस में से दो तो उसने दलाली के तौर पर खुद रख लिए और पाँच टके कबीर को दे दिए। जो हो इन दो रंगी कथाओं से सारांश यही निकलता है कि वह साधु संतों के प्रेमी और सेवक तो स्वभाव से ही थे और हिंदुओं में प्रचलित आचार विचार को भी अधिकतर अपनाते थे, पर साथ ही इस के जुलाहे का काम भी कर्त्तव्य समझ कर किया करते थे जो कि उनकी नैसर्गिक प्रतिभा के योग्य नहीं था। शायद वह जनता के सम्मुख यह आदर्श उपस्थित करना चाहते हों कि हर हालत में मनुष्य को अपने पुश्तैनी पेशे से सहानुभूति रखना और यथाशक्ति उसे कायम रखना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।

किंवदंतियों के अनुसार कबीर ने देशाटन भी बहुत किया था। संत-समागम और हानि लाभ के लिये ये बलख और बुखारा कबीर का देशाटन आदि दूरस्थित विदेशों में भी घूमे थे। इस के साथ ही इस बात के भी यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं कि इनके जीवन का अधिक भाग बनारस में ही बीता। बनारस के बाहर मगहर और प्रयाग के पास भूँसी नामक स्थान में ये प्रायः जाया करते थे। भूँसी और मगहर में इनके शिष्यों की गहियाँ अब तक चल रही हैं। इनकी यात्रा संबन्धी अधिकतर किंवदंतियों में बहुत सी ऐसी क्रियाएँ वर्णित हैं जिनमें इनके कोई न कोई अमानुषिक कार्य करने की बात कही गई है। स्पष्टतः ऐसा इनके शिष्यों द्वारा इनका महत्त्व बढ़ाने के विचार से ही किया गया है। इस प्रकार की घटनाओं में ऐतिहासिक तत्त्व नहीं के बराबर है। कहा जाता है कि एक बार यह भूँसी के प्रसिद्ध फकीर शेख तकी के यहाँ गए थे और वहाँ किसी द्वेष भाव से शेखतकी ने उन्हें ऐसा खाना खिलाया जिससे इनको दस्त आने लगे, यहां तक कि छै महीने तक कबीर को दस्त आए। पुरानी भूँसी के नालों में से एक अभी तक कबीर का नाला कहलाता है। कुछ मुसलमान अनुयायी शेख तकी को ही कबीर का गुरु मानते हैं, पर यह धारणा अमूलक है। अधिकतर किंवदंतियों के आधार पर यही विश्वसनीय जान पड़ता है कि शेख तकी कबीर के पीर नहीं बल्कि ईर्ष्यावश उनके द्वेषी थे। कबीर के अनुयायियों और शिष्यों की संख्या इतनी बढ़ी कि तकी को जलन पैदा हो गई

और वे सदा ऐसे अवसर की ताक में रहने लगे कि कबीर को नीचा दिखाया जा सके, पर साधारण मनुष्यों से लेकर तत्कालीन दिल्ली सम्राट् सिकंदर लोदी के दरबार तक जब जब इन दोनों फकीरों का मुकाबला हुआ, तकी को ही नीचा देखना पड़ा। धार्मिक विषयों पर कबीर से तकी तथा बहुत से अन्य पीरों के साथ शास्त्रार्थ तथा वादविवाद भी प्रायः हो जाया करते थे। पर इस प्रकार के विचार के समय कबीर ग्रंथों और शास्त्रों की दुहाई न देकर विवेक, बुद्धि और कौशल से ही काम लिया करते थे और ऐसी युक्ति से प्रतिपक्षी को निरुत्तर कर देते थे कि उसे अपना सा मुँह लिए लौटते ही बनता था, और इसका प्रभाव दर्शकों और श्रोताओं पर भी बहुत गहरा पड़ता था। यहाँ उदाहरणार्थ एक किंवदन्ती उद्धृत करना असंगत न होगा। इनका बड़ा नाम सुन कर जहान् गश्त नामक एक प्रसिद्ध फकीर इनके आध्यात्मिक ज्ञान की परीक्षा करने के इरादे से मिलने आ रहे थे। कबीर ने उनके आने की खबर सुन उनके पहुँचने से कुछ पहले ही एक सुअर का बच्चा अपने दरवाजे पर बँधवा दिया था। जब उन्होंने दरवाजे पर पहुँच कर वहाँ सुअर बँधा देखा तो अत्यंत घृणा और क्रोध के वशीभूत होकर वह कबीर से बिना मिले ही लौटने लगे। यह देख कर कबीर ने उन्हें बुलवाया और पास आने पर कहा—‘मैंने नापाक को अपने दरवाजे पर बाँधा है पर तुमने नापाक को अपने हृदय से बाँधा है। क्रोध, अहंकार, लोभ आदि नापाक हैं। और यह सब तुम्हारे हृदय के अंदर हैं। जिसे तुम नापाक समझते हो नापाक नहीं है, पर क्रोध नापाक है।’ इसका उस फकीर पर इतना असर हुआ कि वह अपना सारा ज्ञान भूल गया और उसकी आँख खुली और वहीं वह कबीर का शिष्य हो गया।

कहा जाता है कि शिख संप्रदाय के निर्माता गुरु नानक का कबीर के साथ कुछ दिन तक सत्संग हुआ था। कुछ लोग इन्हें कबीर के प्रधान कबीर और नानक शिष्यों में से एक मानते हैं। इनके और कबीर के प्रथम साक्षात्कार के संबंध में भी एक ऐसी कथा प्रचलित है जिसका उद्देश्य शायद कबीर की अलौकिकता पर जोर देना ही रहा होगा। कहा जाता है नानक जब कबीर के पास पहुँचे तो उन्हें दूध पीने की इच्छा हुई। उस समय कोई दुधार गाय न थी केवल एक पाँच बरस की बछिया बँधी थी। कबीर ने उसी को दुह कर नानक को दूध पिला कर और सभी उपस्थित संतों को चकित कर दिया।

इस प्रकार के आमामुषिक और अलौकिक कृत्यों से ज्यों ज्यों कबीर की ख्याति बढ़ने लगी त्यों त्यों दूर दूर से बहुत लोग इनके दर्शन करने आने लगे और इसका फल यह हुआ कि इनके हरि भजन में बहुत विघ्न पड़ने लगा। अब कबीर को किसी ऐसे उपाय की आवश्यकता पड़ी जिससे लोगों की श्रद्धा उन पर कम हो जाय। इस लिये वे अब अक्सर शाम को किसी वेश्या के गले में हाथ डाले मत-वालों की तरह बनारस को सड़कों पर भ्रमते हुये नज़र आने लगे। इसका फल

वही हुआ जो कबीर चाहते थे। लोगों में इनकी बदनामी फैल गई और फलतः दर्शनार्थ बहुत से लोगों का नित्य का जमघट कम हो गया।

मध्य प्रांत में बांधोगढ़ के रहने वाले धर्मदास नाम के एक वैश्य (बनियाँ) कबीर के सर्वप्रधान शिष्य हुए, और इनके मरने के बाद यही धर्मदास इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी भी हुए थे। इनसे भी कबीर की पहली मुलाकात देश देशांतरों में घूमते समय ही हुई थी। कहा जाता है पहले वह मथुरा में कबीर से मिले थे। उस समय धर्मदास जी मूर्तिपूजा के बड़े कायल थे। न जाने कैसे कबीर का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ और मूर्तिपूजा में इनकी भ्रष्टी तन्मयता देख कबीर ने सोचा कि इतना धुन का पक्का आदमी अगर धर्म और भक्ति के वास्तविक मर्म को समझ जाय तो इससे लोक का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। यह सोच कर उन्होंने धर्मदास के सामने भाँति भाँति की युक्तियों और दलीलों से मूर्तिपूजा का खंडन किया और यद्यपि घंटों बहस करने पर भी धर्मदास को संतोष न हुआ पर कबीर के व्यक्तित्व का इन पर अवश्य बड़ा प्रभाव पड़ा होगा क्योंकि आप किवदंतियों के अनुसार कबीर के सिद्धांतों को सुनने समझने की चेष्टा करने के लिये बनारस गए। वहाँ फिर मूर्तिपूजा के संबंध में ही वाद विवाद छिड़ा और अंत में जिस मूर्ति को पूजने के लिये धर्मदास सदा अपने पास रखते थे उसे कबीर ने उठा कर नदी में फेंक दिया।^१ पर इससे भी धर्मदास विचलित न हो कर कबीर के सिद्धांत को समझने की चेष्टा करते ही रहे। अंत में कहा जाता है कबीर स्वयं बांधवगढ़ इनके मकान पर पहुँचे और कुछ बात चीत के बाद उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्ति को पूजते हो जिसके तुम्हारे तौलने के बाट हैं। इसी एक बात का धर्मदास के हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनका सारा विचार बदल गया और वह कबीर के शिष्य हो गए।^२ कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीर पंथ की शाखा चलाई और काशी की 'सुरत गोपाल' नाम की इस पंथ की प्रधान शाखा के उत्तराधिकारी भी हुए।

^१ एक किवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि कबीर ने इनके सामने कुछ अलौकिक चमत्कार दिखाए थे और इन्हीं कृत्यों का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये कबीर के शिष्य हो गए।

^२ एक किवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि एक बार इनकी ओर धर्मदास की मुलाकात वृंदावन में हुई थी और वहीं पर इन्होंने इनके इष्टदेव की मूर्ति यमुना में डाल दी थी।

कबीर के शिष्यों के संबंध में प्रसिद्ध है कि इनके शिष्य अधिकतर निम्न श्रेणी के लोग ही होते थे। यह कथन बहुत कुछ सत्य भी है। इसका राजा वीरसिंह कारण यही है कि ब्राह्मण आदि उच्च श्रेणी के लोग तो इन्हें पाखंडी और अपने धर्म का द्रोही मानते थे। इन लोगों की सदा यही चेष्टा रहती थी कि कबीर को किसी तरह नोचा दिखाया जाय और जहाँ तक हो सके उनकी बदनामी फैलाई जाय, और इसके लिये वे कोई बात उठा नहीं रखते थे। पर कबीर का कुछ ऐसा सिक्का जम गया था कि इनकी सब चालें उल्टी पड़ती थीं और कबीर की कीर्ति दिन पर दिन फैलती ही जाती थी। अधिकतर निम्न श्रेणी के लोगों का कबीर पथियों में शामिल होने का एक कारण यह भी था कि उच्चवर्ण के लोगों द्वारा यह बहुत दलित और अपमानित होते थे। ब्राह्मण पुरोहितों और धर्म-याजकों के गुरुडम की छाया तले इन्हें अपने किसी भी प्रकार के उत्थान की आशा नहीं थी। कबीर के समदर्शी पंथ से इन्हें बहुत कुछ संतोष हुआ और ये बड़ी संख्या में इनके भूडे के नीचे आते लगे। यही कारण था जिससे ब्राह्मण लोग कबीर से इतने असंतुष्ट हो रहे थे। पर यह तो हुई निम्न श्रेणी के लोगों की बात। कबीर के व्यक्तित्व और उनके सिद्धान्तों का बहुत से विद्वान् पंडितों, राजा महाराजों तथा नवाब रईसों आदि पर भी बड़ा प्रभाव था। स्वतंत्र विचार के सभी लोगों को इनके सिद्धान्त और विचार युक्तिसंगत प्रतीत होते थे। ऐसे ही लोगों में जौनपुर के तत्कालीन राजा वीरसिंह भी थे। इनके और कबीर के साक्षात्कार के संबंध में भी एक कथा प्रचलित है। इन्होंने जौनपुर में एक बड़ा रम्य प्रासाद बनवाया था और एक फक्कीर को छाड़ जितने लोग इसे देखने आए सभी ने इसकी बड़ी प्रशंसा की। उस फक्कीर से जब पूछा गया कि इसमें क्या कमी है तो उसने कहा कि इसमें दो त्रुटियाँ हैं, एक तो यह कि प्रासाद चिरस्थायी नहीं है, और दूसरे यह कि इसका निर्माता इसके भो पहले संसार से विदा हो जायगा। यह सुनकर राजा साहब पहले तो असंतुष्ट हुए पर जब उन्होंने जाना कि वह फक्कीर और कोई नहीं स्वयं महात्मा कबीर हैं, तो वह उनके पैरों पर गिर पड़े और उनको अपना गुरु मान लिया।

एक बार गुजरात के एक सोलंकी राजा ने अपनी रानी के साथ इनके पास जाकर पुत्र का आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। कबीर ने उस राजा को पुत्र का आशीर्वाद दिया भी और कहा कि उसका वंश बयालीस पीढ़ी तक राज्य करेगा। कहा जाता है कि कबीर ने स्वयं बाँधवगढ़ में इस राजवंश को स्थापित किया और रीवाँ के वर्तमान महाराज उसी वंश के एक वंशधर हैं। यही बाँधवगढ़ किसी समय उस प्रांत की राजधानी था जो कि अब रीवाँ राज्य कहलाता है और इसे सम्राट् अकबर ने ध्वंस किया था।

यह प्रसिद्ध है कि कबीर की मृत्यु मगहर में हुई थी। यहाँ का शासक नवाब

विजली खाँ भी कबीर का शिष्य था। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे। कबीर के अंतिम संस्कार के संबंध में इनमें और राजा बीरसिंह में मुठभेड़ होते होते बच गई थी।

कबीर संबंधी सभी किंवदंतियों में तत्कालीन भारतसम्राट् सिकंदर लोदी द्वारा उन पर किए गए अत्याचारों की विस्तृत कथा मिलती है। सिकंदर लोदी इन में से एक के अनुसार कबीर के द्रोही हिंदू और मुसलमान दोनों ही एक बार दिन दोपहर को जलती हुई मशालें लेकर बादशाह के दरबार में फिरियाद लेकर पहुँचे। उनकी शिकायत यह थी कि कबीर मुसलमान होकर भी जनेऊ पहन और तिलक लगाकर 'राम' 'राम' कहता फिरता है और उसकी माया से सारे देश में अंधकार छा गया है, इत्यादि। शेख तकी ने जो कि बादशाह के पीर थे, इन उपालंभों का पूरा समर्थन किया। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, कबीर की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई कीर्ति से यह बहुत जलते थे और हृदय से उनका अनिष्ट साधन करना चाहते थे। जो हो, यह सब सुनकर बादशाह ने कबीर को बुलवाया, पर वह दिन भर अपना काम कर शाम को वहाँ पहुँचे और पहुँच कर बादशाह को सलाम तक न किया। इस वेअदबी का कारण पूछे जाने पर कहा कि मैंने ईश्वर को छोड़ और के सामने सिर झुकाना नहीं सीखा है। फिर पूछा गया कि शाही हुक्म के तामील करने में इतना देर क्यों हुई। इस पर उन्होंने कहा कि मैं एक तमाशा देखने में लगा हुआ था। जब पूछा गया कि वह तमाशा क्या था तो उन्होंने कहा कि मैंने एक ऐसा सूरख देखा जो कि है तो सुई से भी छोटा पर उसी में से मैंने हजारों ऊँट और हाथी निकलते हुए देखे। बादशाह ने कहा कि तुम इसका मतलब समझाओ नहीं तो मैं तुम्हें भूठा समझूँगा। कबीर ने शायद बादशाह को चकित करने के लिये एक उल्टबांसी कहा जिसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है—

‘कबीर कभी भूठ नहीं बोलता।

कोई नहीं जानता एक क्षण के चतुर्थांश में क्या होगा। एक बूंद पानी का समुद्र में समा जाना सब समझते हैं पर समुद्र का बूंद में समाना कोई बिरला ही समझ सकता है। जिसके चर्मचक्षु तथा मानसिक चक्षु सभी नष्ट हो चुके हैं उसमें किसी को क्या मिल सकता है।’

इसे सुन बादशाह और भी भ्रम में पड़ गया और कबीर को अपना आशय स्पष्ट कर देने को कहा और इसके उत्तर में कबीर ने जो कहा उसका सारांश यह है—

‘तुम देखते हो पृथ्वी और आकाश, चंद्र और सूर्य एक दूसरे से कितने दूर दूर हैं। इनके बीच के महान् क्षेत्र में कितने ऊँट और हाथी तथा कितने और अनगिनित जीव विचरते हैं। पर यह सभी आँख के तारे में दिखलाई पड़ते हैं। क्या आँख का तारा सुई के सूराख से बड़ा है ?

यह उत्तर सुनकर बादशाह ने संतुष्ट होकर कबीर को साफ छोड़ दिया। पर इससे कबीर के द्रोहियों को बहुत असंतोष हुआ और वे हर तरह से कबीर के बारे में बादशाह के कान भरने लगे। यहाँ तक कि कबीर को देश की शांति के लिये खतरा बतलाया गया। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि यह शराबी वेश्यागामी और जादूगर है, और नीचों की सोहबत में रहता है। इस पर बादशाह ने कबीर को दरबार में बुलाया और वहाँ नियमानुसार उनपर उक्त दोष लगाकर उनसे जवाब तलब किया। इसके जवाब में कबीर ने कहा कि यदि मैं बुरा आचरण करता हूँ तो इससे मैं ही पतित होता हूँ दूसरों को इससे क्या। पर इस उत्तर से किसी को संतोष नहीं हुआ और क्राजियों ने कहा कि कबीर का सच्चे मुसलमान की तरह जीवन बिताने पर वाध्य करना चाहिए। पर इस पर कबीर ने क्राजी और पुरोहित दोनों को ही खूब खरी खोटी सुनाई। उन्होंने इन दोनों श्रेणी के लोगों को ही घोर पाखंडी, वास्तविक धर्म के द्रोही और नरकगामी तक कहा। इस पर सभी लोग इनसे बिगड़ खड़े हुए और बादशाह को इन्हें मृत्युदंड देने पर विवश किया। अंत में एक नाव में पत्थर भर उसके साथ कबीर को लोहे की जंजीरों से जकड़ कर उन्हें दरिया में ठेल दिया। थोड़ी ही देर में उस नाव के साथ कबीर डूब गए जिससे उनके शत्रुओं को अपार हर्ष हुआ। पर क्षण भर बाद ही वह एक मृगझले पर बैठे हुए नदी के स्रोत के विरुद्ध बहते हुए दिखाई पड़े। इस पर उनके शत्रुओं के आग्रह से बादशाह ने उन्हें पकड़कर आग में भोंकवा दिया। सारी आग जल कर ठंडी भी हो गई पर कबीर का बाल तक बाँका नहीं हुआ। इस पर लोग बड़े चकराए और चिल्ला चिल्ला कर नास्तिक, जादूगर आदि शब्दों से उनकी भर्त्सना करने लगे। अंत में बादशाह को यह सलाह दी गई कि कबीर हाथी के पैरों तले कुचलवा दिए जायें, और बादशाह ने इसका आयाजन भी किया। हाथ पाँव बांध कर कबीर जमीन में डाल दिए गए और एक मतवाला हाथी उनके ऊपर छोड़ दिया गया, पर कबीर के पास आकर वह हाथी रुक जाता था और बहुत डरकर इधर उधर भागने लगता था। पूछने पर महावत ने कहा कि कबीर के सामने जाते ही एक भयानक सिंह हाथी का रास्ता रोक कर खड़ा हो जाता है जिसके डर से हाथी भाग खड़ा होता है। इस पर बादशाह ने भल्ला कर खुद उस हाथी पर चढ़ उसे आगे बढ़ाया, मगर कबीर के पास जाते ही उन्होंने भी उस भयानक सिंह को हाथी की ओर लपकते देखा और हाथी फिर चिघ्वाड़ कर भाग खड़ा हुआ। अब बादशाह से न रहा गया। वह हाथी से कूद कर कबीर के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा जो आप चाहें वह दंड मुझे दें। इसके उत्तर में कबीर का कहा हुआ निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

जो तोकूं कांटा बुए, ताहि बोय तू फूल,
तोके फूल के फूल हैं, वाके हैं तिरसूल।

कुत्र किवदंतियों में कबीर और सिकंदर लोदी संबंधी और भी विस्तृत वृत्तांत मिलता है। एक में इसी सिलसिले में स्वामी रामानंद भी घसीटे गए हैं और कबीर के द्रोहियों ने इन पर भी वही दोष लगाए जो कबीर पर लगाए गए थे। कहा जाता है कि बादशाह ने इनको मरवा डाला पर बाद में कबीर ने इन्हें अपनी अलौकिक शक्ति से जीवित किया था। इसके सिवा कबीर ने और भी कई अलौकिक चमत्कार बादशाह के सामने दिखाए जिससे अंत में उसने इन्हें सचमुच एक महापुरुष समझ कर इनसे माफी मांगी और इनके द्रोहियों को हताश होना पड़ा।

किंवदंतियों के प्रमाण के अनुसार कबीर ११९ वर्ष, ५ महीने, और २७ दिन जिए थे और उनका स्वर्गवास बस्ती जिले के अंतर्गत मृत्यु संबंधी किवदंतियां मगहर नामक स्थान में सं० १६७५ में हुआ था। कहा जाता है कबीर को जब अपना महाप्रस्थान काल समीप जान पड़ा तो उन्होंने मगहर जाकर शरीर छोड़ने की इच्छा प्रगट की और वहां के लिये रवाना भी हो गए। इनके भक्तों और प्रेमियों को इससे यह सोच कर और भी बड़ा चोभ होने लगा कि लोक में प्रसिद्ध है कि मगहर में मरने वाला अगले जन्म में गंधा होता है और काशी में मरने वाले की मुक्ति होती है। और सिर्फ मरने ही के लिये काशी ऐसे पवित्र स्थान को छोड़ कबीर का मगहर जाना देख सारा नगर शोक सागर में निमग्न हुआ। परंतु सब को सात्वना देते हुए कबीर का कहा हुआ यह पद्य प्रसिद्ध है—

लोगा तुमहीं मति के मोरा।

जौ पानी पानी महं मिलि गौ, त्यों धुरि मिलै कबीरा।

जो मैं थीको सांचा व्यास, तोर मरन हो मगहर पास।

मगहर मरै सो गदहा होय, भल परतीति राम सों खेय।

मगहर मरे मरन नहि पावे, अनते मरे तो राम लजावे।

का कासी का मगहर ऊसर, हृदय राम बस मोरा।

जो कासी तन तजइ कबीरा, रामहिं कवन निहोरा।^१

अंत में, कबीर, सब लोगों के समझाने बुझाने पर भी मगहर चले गए और उनके साथ साथ प्रायः दस सहस्र शिष्य और भक्त भी साथ गए। जौनपुर के राजा बीरसिंह यह हाल सुन कर अपने दल बल के साथ मगहर पहुँचे और वहाँ यह घोषित किया कि मैं कबीर के शव का अंतिम संस्कार काशी ले जाकर करूँगा। पर मगहर का नवाब बिजली खाँ पठान भी कबीर का शिष्य था। उसने कहा कि मैं यह कभी नहीं होने दूँगा और कबीर की लाश मुसलमानी क्रिया के

अनुसार यहीं दफनाई जायगी। कबीर मगहर पहुँच कर एक साधु की कुटिया में विश्राम कर रहे थे। उन्होंने कुछ कमल के फूल और दो चादरें मँगवाईं। उस समय उन्होंने सुना कि उनके अंतिम संस्कार को लेकर वीरसिंह और बिजली खाँ की सेनाओं में रक्तपात होने वाला है। यह सुन कर उन्होंने दोनों को बुलाकर समझा बुझा कर शांत किया और इसके बाद दोनों चादरें तान कर लेट रहे और सब को बाहर से द्वार भेड़ कर बाहर चले जाने को कहा। सब किसी के बाहर चले जाने के थोड़ी देर बाद भीतर से एक शब्द हुआ और तब लोग द्वार खोल कर भीतर गए पर वहाँ कबीर के शरीर का कहीं पता नहीं था। केवल कमल के फूलों से भरी हुई वही दोनों चादरें थीं। सब को बड़ा आश्चर्य हुआ और अंत में फूलों से भरी हुई एक चादर राजा वीरसिंह काशी ले गए और वहीं हिंदू धर्मशास्त्र की विधि से इसका दाह कर्म हुआ और भस्मावशेष वहीं के कबीर चौरा नामक स्थान में सुरक्षित किया गया। इधर बिजली खाँ ने भी फूलों से भरी दूसरी चादर को मगहर में दफनाया और वहाँ कबीर की एक समाधि भी बनवाई जो अब तक विद्यमान है।

कबीर संबंधी ऐतिहासिक तथ्य

कबीर के जीवन संबंधी ज्ञातव्य बातों का ऐतिहासिक तथ्यातथ्य निर्णय करने के लिये हमारे पास केवल दो साधन हैं—किंवदंती और कबीर की रचनाएँ। यह सत्य है कि प्रमाण के लिये किंवदंतियों या दंतकथाओं को ज्यों की त्यों मान लेना बड़ी भूल है। यहाँ तक कि विद्वान् सगलोचक और जीवनी लेखक इन पर एक क्षण भी विचार करना व्यर्थ समझते हैं। पर सभी किंवदंतियाँ एक सी नहीं होतीं। जिन किंवदंतियों का एक ही रूप में या कुछ साधारण भिन्नता के साथ कई स्थानों पर उल्लेख मिलता हो उनके मूल में अवश्य ऐतिहासिक तथ्य रहता है और कोई भी समालोचक उनकी पूर्ण रूप से अवहेलना नहीं कर सकता। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, तथा साहित्यिक परिस्थितियों को बराबर ध्यान में रखते हुए और अनावश्यक विस्तार की काट छाँट करते हुए इन किंवदंतियों का मूलस्थित सत्य निर्धारित करना पड़ता है। कबीर के संबंध में जितनी किंवदंतियाँ प्रचलित हैं उतनी शायद हिंदी के किसी भी कवि के संबंध में नहीं। इनकी चर्चा पहले हो चुकी है, अब केवल यह देखना है कि इनमें ग्राह्य तथ्य कितना है। इसकी जाँच तत्कालीन इतिहास और कबीर की रचनाओं के प्रमाण के आधार पर हो सकती है। पर इतिहास से जो सहायता मिलती है वह नहीं के ही बराबर है।

इस संबंध में हमें अधिक सहायता कबीर की रचनाओं से मिल सकती है। इनसे स्थान स्थान पर प्रायः इनके जीवन की कुछ मुख्य मुख्य घटनाओं पर कुछ प्रकाश पड़ता है। परंतु इन पर भी पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि कबीर के नाम से प्रचलित काव्य में उनके भक्तों या शिष्यों के रचे

हुए बहुत से पद जोड़ दिए गए हैं जो कि बाद में उनके महत्व को बढ़ाने के लिये मिलाए गए हैं। यही बात हिंदी और संस्कृत के कई महाकवियों के संबंध में कही जा सकती है, पर कबीर की रचना के साथ जितनी मिलावट हुई उतनी शायद और किसी के साथ नहीं। इसके भी कई कारण हैं। एक तो यह कि कबीर शायद पढ़े लिखे बिल्कुल नहीं थे। कुछ लोग तो उन्हें कोरा निरक्षर मानते हैं। जो हो, पर इतना निश्चय है कि कबीर यदि बिल्कुल निरक्षर नहीं तो अधिक पढ़े लिखे भी नहीं थे। इनका सारा ज्ञान सत्संग और अपनी निजी प्रतिभा, कल्पना और अनुभूति का प्रसार था। देशाटन और देशकाल के अध्ययन से भी इनका बहुत कुछ मानसिक विकास हुआ था। इस प्रकार प्राप्त अपने अनुभव और विचारों को ये प्रायः कविता के रूप में जिज्ञासुओं को सुना दिया करते थे और वे उन्हें, प्रायः अपना नमक मर्च लगाकर ज़िपिबद्ध कर दिया करते थे। दूसरे यह कि ये एक मतप्रचारक भी थे। जितने मत या पंथ चलाने वाले आज तक हो गए हैं, सभी की रचना के साथ समय समय पर अनुयायियों की इच्छानुसार मिलावट होती रही है। इनके किसी भी पद के बारे में हम निर्भांत रूप से नहीं कह सकते कि यह उन्हीं का है। और फिर, इन बातों के सिवाय कबीर की रचना को किसी भी प्रकार के कालक्रम के अनुसार सिलसिलेवार करके जाँचना भी संभव नहीं है। यदि यह संभव होता तो कम से कम कबीर के स्तिष्क का विकास और उनकी सत्य की खोज के अध्ययन में बहुत कुछ सुविधा हो सकती थी। कबीर के पदों, शब्दों तथा उल्टवासियों आदि के अर्थ बहुधा दूरूढ़ तथा एक से अधिक अर्थ रखने वाले होते हैं। इससे और उलझन पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में बहुधा इनका वास्तविक मंतव्य जानना कठिन हो जाता है।

इनकी जन्म और मरण तिथि के संबंध में तो पढ़ले ही पर्याप्त विचार किया जा चुका है। हिंदू विधवा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति के संबंध में जितनी किंवदंतियाँ हैं उनका एक मात्र उद्देश्य यही जान पड़ता है कि किसी प्रकार कबीर हिंदू भक्तों के लिये अधिक से अधिक ग्राह्य बनाए जा सकें! इस बात को तो सभी कबीरपंथी और समालोचक सत्य मानते हैं कि कबीर मुसलमान परिवार में पलित हुए थे, और उनका नाम भी मुसलमानी था। ऐसी अवस्था में ब्राह्मणी से उनकी उत्पत्ति सो भी स्वाभाविक परिस्थिति में नहीं, केवल गोसाईं अष्टानंद के आशीर्वाद मात्र से और वह भी माता के गर्भ से नहीं बल्कि उसकी हथेली से बताने का प्रयास, देखते ही कल्पित जान पड़ता है। और इसी कल्पना को थोड़ा और आगे बढ़ाकर कुछ हिंदू भक्तों ने उनके नाम 'कबीर' को भी इसी प्रसिद्धि के अनुसार 'कबीर' ('कर' अर्थात् हाथ से पैदा होने वाला 'बीर') का अपभ्रंश कहना प्रारंभ किया। परंतु उनके इस प्रकार की कल्पनाओं के ढंग से ही इन किंवदंतियों की निस्सारता स्पष्ट है। कबीर ने स्वयं बार बार अपने को जुलाहा कहा

है। ऐसी अवस्था में कबीर को नीमा का औरस पुत्र मानना ही अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। कबीर के हिंदू संतान होने का सब से बड़ा कारण बताया जाता है। उनका आरंभ से ही हिंदू धर्म के संस्कारों और भावों से व्याप्त रहना। शैशव काल में ही कबीर प्रायः जनेऊ पहन कर राम नाम का उपदेश देते फिरते थे। ऐसा वह करते तो अवश्य रहे होंगे, पर यह हिंदू कुल में उत्पन्न होने के कारण नहीं। यह बात सभी जानते हैं कि जुलाहे या इस वर्ग के अन्य उद्योग धंधों की जीविका करने वाले अपने बच्चों की धार्मिक शिक्षा आदि का कोई प्रबंध नहीं करते। उन्हें आरंभ से ही हर तरह से अपने खांदानी पेशे की ही शिक्षा मिलती है, वे ऐसे वातावरण में ही रक्खे जाते हैं। पर कबीर एक असाधारण प्रतिभासंपन्न बालक तो था ही, साथ ही आरंभ से ही इसका रिक्तान धर्म संबंधी विषयों की ओर था। फिर काशी ऐसी धर्मप्राणा नगरी में इन्हें रहने का अवसर प्राप्त था। यहाँ आज भी तुमुल ध्वनि से धर्म के कम से कम बाह्य रूप का अपूर्व दिग्दर्शन होता रहता है। चारों ओर गली गली में राम नाम के उद्देशक घूमते फिरते थे और इनमें सब से प्रधान स्वामी रामानंद जी थे। कबीर के भावुक हृदय पर इन सब बातों का प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता था। यह प्रायः रामानंद के उपदेशों को सुनता और उनके भक्तों को उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करते देखता रहा होगा। धीरे धीरे इन बातों ने कबीर के हृदय पर पूरा अधिकार जमा लिया और आगे चलकर इनके हिंदू अनुयायियों को यह कहने का अवसर दिया कि हो न हो हिंदू उत्पत्ति के कारण ही कबीर हिंदू भावों से ओतप्रोत थे। परंतु दोष इसमें हिंदू उत्पत्ति का नहीं बल्कि कबीर के सारग्राही हृदय और तत्कालीन काशिस्थ धर्मप्रचार के प्राधान्य का है।

कबीर के रामानंद के शिष्य होने में किसी प्रकार का संदेह न होना चाहिए। एक तो इसके संबंध की जनश्रुतियाँ बहुत प्रबल और गुरु बहुसंख्यक हैं, दूसरे स्वयं कबीर की रचनाओं में एक से अधिक बार इसकी ओर स्पष्ट संकेत है।

यह तो सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि स्वामी रामानंद के एक मुसलमान लड़के को शिष्य रूप से ग्रहण करने पर खासी हलचल परिवार मच गई होगी। कबीर की रचनाओं में ही अनेक स्थलों पर ऐसी उक्तियाँ प्रायः मिलती हैं जिन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक विषयों और संत सेवा की ओर अधिक तत्परता दिखाने के कारण कबीर के घर के लोग उनसे बहुधा असंतुष्ट रहते थे। आदि ग्रंथ में कई पद ऐसे^१ मिलते हैं जिनमें इनकी माता ने इन्हें अपने पेशे की ओर ध्यान न देने और साधु संतों की

^१ आदि ग्रंथ, गूजरी

गोष्ठी में समय नष्ट करने के कारण भला बुरा कहा है, और कबीर ने उनका उत्तर भी दिया है। इन पदों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि कबीर के क्या कबीर माता पिता और लोई नाम की स्त्री भी थी। कबीर ने एक पद विवाहित थे ? में अपनी माता की मृत्यु का उल्लेख भी किया है। लोई को कुछ लोग, विशेषतः इनके हिन्दू भक्त, इनकी स्त्री नहीं केवल शिष्या मानते हैं, और इस मत को दृढ़ करने के लिये उन्हें कबीर के पुत्र कमाल और पुत्री कमाली के संबंध में कुछ अनोखी किंवदंतियाँ गढ़नी पड़ी हैं। मुसलमान सूफी फकीर गृहस्थ हुआ करते हैं, और इसलिये मुसलमान अनुयायियों को सखीक कबीर में कोई अनौचित्य नहीं देख पड़ता पर हिन्दुओं का आदर्श गुरु वही होता है जो बालब्रह्मचारी हो, और कबीर में यही बालब्रह्मचर्य दिखलाने के लिये ही लोई, कमाल, तथा कमाली के संबंध में पूर्वोक्त विचित्र किंवदंतियाँ प्रचलित की गई जान पड़ती हैं। इस मत की पुष्टि उन्हीं किंवदंतियों से ही हो जाती है। लोई के विषय में एक पद है जिसमें लिखा है कि उसने कबीर की साधु सेवा से तग आकर एक बार कबीर के कहने पर भी एक अभ्यागत के लिये भोजन बनाने से इनकार कर दिया था। फिर अन्यत्र ^१ यह भी वर्णन मिलते हैं कि लोई भी कबीर की अत्यधिक धर्मचर्चा और सत्संग की प्रायः तीव्र आलोचना किया करता थी। पर किंवदंतियों ही के अनुसार लोई ने कबीर का शिष्यत्व ग्रहण उनके असाधारण साधुपरायणता पर ही रीझ कर किया था। यदि सचमुच वह इस प्रकार की केवल शिष्या मात्र होती तो इस प्रकार उसके कबीर की साधु सेवा से स्वीकृत और उन्हें इससे विरत कर अपने घर के काम में मन लगाने की चेष्टा करने का प्रयास उसके शिष्यत्व की सीमा के बाहर का काम था। यह काम स्त्री, माता, या ऐसे ही किसी अन्य आत्मीय का ही हो सकता है। एक पद ^२ में तो कबीर के द्वितीय विवाह का संकेत मिलता है। यदि इसे केवल अन्योक्ति ही मान लें तो भी काम नहीं चलता। एक पद में ^३ कबीर की माँ इस बात पर रुष्ट हो रही है कि ये घुटे सर वाले कबीर के साथी मेरी पतोहू 'धनियाँ' को 'रामजनियाँ' क्यों कहते हैं। इससे इतना क्रोध उसे इस लिये आता था कि 'रामजनियाँ' नाम उन देवदासियों का भी होता था जो कि मंदिरों में सेवा के लिये समर्पित कर दी जाती थीं। अब प्रश्न यह है कि यह 'धनियाँ' या रामजनियाँ। लोई के ही नामांतर थे या यह उनकी दूसरी स्त्री के नाम थे। जो हो इतना तो स्पष्ट है कि कबीर का विवाह अवश्य हुआ होगा और कमाल तथा कमाली उनकी

^१ आदि ग्रंथ, गौड़ ६

^२ वही, आसा ३५

^३ वही, आसा ३३

संतान थे। कबीर के पिता के संबंध की बहुत कम चर्चा इनके पदों में मिलती है। एक पद जो मिलता है उसमें उन्होंने पितृशोक व्यक्त किया है। कबीर द्वारा किए गए पिता या माता के बियोग वर्णन को लोग अधिकतर अन्योक्ति रूप में लेते हैं। पर इस प्रकार की पारिवारिक दुर्घटना को लेकर ही अन्योक्ति कहने का क्या तात्पर्य? अन्योक्तियों का आधार सदा कोई न कोई लौकिक घटना हुआ करती है।

कबीर की पारिवारिक स्थिति उनकी आभ्यंतरिक प्रवृत्ति के लिये नितांत असुविधाजनक थी। अनेक पदों में उन्होंने इस प्रतिकूल कौटुंबिक वातावरण से बड़ा करुण असंतोष प्रकट किया है।

जहाँ तक पता चला है कबीर के शिक्षित होने के कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलते। उन्होंने अपने पदों में इस विषय को निम्नांत क्या कबीर अशिक्षित थे? रूप से स्पष्ट कर दिया है। बीजक में वह यों कहते हैं—

“मसि कागद छूयो नहीं, कलम नहीं गही हात।

चारिहु जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात ॥”

आदि ग्रंथ में भी एक जगह^१ उन्होंने साफ़ कह दिया है कि मैं पोथी को विद्या नहीं जानता और न मैं मतभेद ही समझता हूँ। इसके अतिरिक्त कबीर की पारिवारिक स्थिति तथा जुलाहे के घर में उनके पालन-पोषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें लिखने पढ़ने की प्रारंभिक शिक्षा नहीं मिल सकी थी। उन्होंने जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया वह सत्संग और अपनी प्रतिभा से। अपनी भाषा के बारे में भी वह एक जगह साफ़ कह देते हैं कि मेरी बोली ठेठ पूर्वी है और धुर पूरब का रहने वाला ही उसे समझ सकता है —

“बोली हमरी पुरब की, हमैं लखै नहिं कोय।

हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय।”

कबीर की रचनाओं में विचार स्वतंत्र की मात्रा बहुत है। यह बात दूसरी है कि उनके विचारों को अर्थशून्य अथवा चिमटा खँजड़ी के कबीर की उड़ड़ता सुर में ज्ञान गूदड़ी गाने वाले बैरागड़ों की बहक कह कर टाल दिया जाय, पर यदि उनकी रचनाओं में कुछ भी विचार है और उनसे यदि कबीर की किसी प्रकार की मनोवृत्ति का पता चलता है, तो वह यही कि वह हिंदू मुसलमानों में प्रचलित परंपरागत अंध विश्वासों तथा अर्थशून्य रूढ़ियों के तीव्र विरोधी थे और अपने स्वतंत्र विचार से जिस निष्कर्ष पर वह पहुँचते थे उसका बड़ी निर्भीकता और प्रायः बड़ी उड़ड़ता से

^१ बीजक, साखी, १८७

^२ आदि ग्रंथ, बिलावल, २

^३ बीजक, साखी, ११४

प्रतिपादन करते थे। इसी संबंध में वह हिंदू और मुसलमान दोनों ही के धर्म शास्त्रों की भी कटु आलोचना कर डालते थे। यही कारण था कि सनातनी रूढ़ियों के संरक्षक समझे जाने वाले ब्राह्मण और मुस्लिम दोनों ही कबीर के कट्टर विराधी हो गए। महाकवि तुलसीदास जी को भी कबीर की यह उद्दंडता खटकती थी। कबीर के निम्नलिखित पद से ही ज्ञुब्ध होकर शायद तुलसीदास जी ने वेद और पुराण की बेसमझे बूझे निंदा करने वाले अशिक्षित कबीर या कबीर पंथियों के प्रति कुछ तीव्र आक्षेप किए हैं—

रसैनी^१—

पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा, आपु अपन पौ जानु न भेदा ।
संभा तरपन औ खटकरमा, ई बहु रूप करहि अस धरमा ।
गाहत्री जुग चारि पढ़ाई, पुछहु जाय मुकुति किन पाई ।
अवर के छिए लेत हौ सोंचा, तुम ते कहहु कवन है नीचा ।
ई गुन गरब करौ अधिकाई, अधिक गरब न होय भलाई ।
जासु नाम है गरब-प्रहारी, सो कस गरबहि सकै सहारी ।

साखी—

कुल-मरजादा खोय के, खोजिनि पद निरवान ।
अंकुर बीज नसाय के, भए विदेही थान ॥

इसी प्रकार तीव्र आलोचना प्रायः इनकी रचनाओं में मिलती है और इन्हें देखते हुए इस में संदेह करने का कोई स्थान नहीं रह जाता कि उन्होंने अवश्य अपने को तत्कालीन अधिकांश सनातनी पंडित समाज में नितांत अप्रिय बना लिया होगा। यही बात मौलवियों और इस्लाम के कट्टर अनुयायियों के बारे में भी सत्य है। वह इस्लाम की भी समय समय पर बुरी तरह से खिल्ली उड़ाते थे। एक उदाहरण देखिए, इसमें पंडित और मुस्लिम दोनों की एक साथ खबर ली गई है—

संतो राह दुनो हम डीठा ।

हिंदू तुरक हटा नहि मानैं, स्वाद सभन्हि को मीठा ।
हिंदू बरत एकादसि साधैं, दूध सिंघारा सेती ।
अन को त्यागैं मन को न हटकैं, पारन करैं सगोती ।
तुरक रोजा नोमाज गुजारैं, बिसमिल बाँग पुकारैं ।
इनकी भिस्त कहाँते होइ है, साँझै मुरगी मारैं ।

हिंदु की दया मेहर तुरुकन की, दोनौं घटसों त्यागी ।
 वे हलाल वै भटके मारै, आगि दुनौं घर लागी ।
 हिंदू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई ।
 कहहि कबीर सुनहु हो संतो, राम न कहेउ खुदाई ।^१

बात यहीं तक नहीं थी । कबीर ने अपने समय के प्रायः सभी संप्रदाय वालों में प्रचलित कुरीतियों और अंध विश्वासों का उपहास 'नाथ' संप्रदाय वालों तथा कहीं कहीं निंदा भी की है । इन के समय में नाथ का उपहास संप्रदाय वालों की संख्या काफ़ी बढ़ चुकी थी । किंवदंतियों में तो गोरखनाथ और कबीर का साक्षात्कार होना भी प्रसिद्ध है परंतु वास्तव में यह अभी तक संभव सिद्ध नहीं हो सका है । अभी थोड़े दिनों तक तो गुरु गोरखनाथ के ऐतिहासिक पुरुष होने में भी सदेह था, पर अभी हाल में इनके कुछ ग्रंथ मिले हैं और इनका रचना काल कबीर से लगभग एक शताब्दी पहले था । कबीर ने अपने कुछ पदों को किसी गोरखनाथ को संबोधन करते हुए कहा है । इनको मछंदरनाथ का शिष्य और 'कनफटे' योगियों के नाथसंप्रदाय का प्रवर्त्तक गोरखनाथ मानने में स्पष्ट बाधाएँ हैं । हो सकता है कि कबीर ने जिनका उल्लेख किया है वह कोई दूसरे गोरखनाथ रहे होंगे । पर उन पदों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह दूसरे गोरखनाथ भी किसी मार्ग के प्रवर्त्तक या इसके तत्कालीन कर्णधार रहे होंगे और वह संप्रदाय कबीर पंथ का बड़ा विरोधी था । हठ योगियों के संप्रदाय में बहुत सी ऐसी प्रथाएँ प्रचलित थीं जिनको कोई भी विचारवान् मनुष्य बिना प्रतिवाद किए न रहेगा । इन्हीं अविचार पूर्ण रस्मों के प्रतिवाद स्वरूप कबीर की एक रमैनी देखिए—

ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए गफिलाई ।
 महादेव को पंथ चलावे, ऐसो बड़ा महंत कहावै ।
 ठाट बजारे लावैं तारी, कच्चे सिद्धन माया प्यारी ।
 कब दत्ते माबासी तोरी, कब सुखदेव तोपची जेरी ।
 नारद कब बंदूक चलाया, व्यासदेव कब बंध बजाया ।
 कहिं लराई मति के मंदा, ई अनीत की तरकस बंदा ।
 भए विरक्त लोभ मन ठाना, सेना पहिरि लजावैं बाना ।
 घेरा घेरी कीन्ह बटेरा, गांव पाय जस चलैं करोरा ।

साखी— (तिय) सुंदरि का सोहई, सनकादिक के साथ ।

कबहुँक दाग लगावई, कारी हांड़ी हाथ ॥^२

^१ बीजक, शब्द १०

^२ बीजक, रमैनी, ६६

एक स्थान पर वह गोरखनाथ से यों कहते हैं—

काटे आम न मोरसी, फाटे जुटे न कान ।

गोरख पारस परस बिनु, कवने को नुकसान ॥^२

इसी प्रकार उस समय प्रचलित प्रायः सभी मतों और संप्रदायों में जो कुछ बुराइयां इन्हें देख पड़ीं उनको इन्होंने निशंक होकर, पर यथेष्ट उद्दंडता पूर्वक तीव्र समालोचना की है । सब से अधिक तो शायद इन्होंने इस्लाम मत के मर्म को उल्टा पल्टा समझाने वाले मुल्लाओं की ही खबर ली है । इस संबंध का एक उदाहरण और ध्यान देने योग्य है—

× × ×

बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ै कितेव कुराना ।

कै मुरीद ततबीर बतावैं, उनिमहं उहै जो शाना ॥

× × ×

हिंदु कहै मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना ।

आपुस महं दोउ लरिलरि मूए, मरम काहु नहिं जाना ॥^१

कबीर की रचनाओं में कई ऐसे पद मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि शेख तकी नामक एक फकीर से इनका कुछ सत्संग हुआ था । परंतु इतिहास से इसी नाम के दो फकीरों का पता चलता है—एक कड़ेमानिकपुर वाले जो कबीर और चिश्ती संप्रदाय के सूफ़ी फकीर थे और बादशाह सिकंदर लोधी शेख तकी के पीर माने जाते हैं । दूसरे भूँसी के शेख तकी जो कि सुहरवर्दी संप्रदाय के थे । किंवदंतियों से यह स्पष्ट नहीं होता कि कौन से तकी से कबीर का संपर्क था । पर जहाँ तक जान पड़ता है कड़ेमानिकपुर वाले तकी से ही कबीर का साक्षात्कार हुआ होगा, क्योंकि भूँसी वाले तकी की मृत्यु सं० १४८६ में और कड़े वाले की सं० १६०२ में मानी गई है । 'ख़जोनतुल आस-फ़िया के अनुसार तकी की मृत्यु सं० १६४१ में कही गई है । यह कड़ेमानिकपुर वाले तकी ही हो सकते हैं । इस में यह भी लिखा है कि पीर शेख तकी की मृत्यु के बाद इनकी गद्दी का उत्तराधिकारी शेख कबीर जुलाहा हुआ । भूँसी वाले तकी से कबीर का साक्षात्कार मानने से तिथियाँ ठोक नहीं बैठतीं । भूँसी में यह तकी के किसी शिष्य से ही मिले होंगे । अब रही तकी के कबीर के पीर या गुरु होने की बात । इस विषय पर परस्पर विरुद्ध किंवदंतियाँ प्रचलित हैं । कबीर ने अपनी रचनाओं में जहाँ जहाँ तकी का उल्लेख किया है उससे कहीं भी यह व्यक्त नहीं

^२ वही, साखी, २६

^१ बीजक, शब्द, ४

होता कि तकी उनके गुरु रहे होंगे। प्रतिद्वंद्विता का भाव अवश्य झलकता है। सब बातों के मिलान करने पर यही युक्तिसंगत जान पड़ता है कि कबीर ने आदि में स्वामी रामानंद को तो अवश्य ही गुरु स्वीकार किया था और हो सकता है कि बादशाह के पीर तकी का बड़ा नाम सुनकर उसके ज्ञान से लाभ उठाने की अभिलाषा से उसके समीप गए हों और वहां से निराश होकर लौटे हों। क्योंकि बहुत सी किंवदंतियों से यह स्पष्ट है कि तकी कबीर का जानी दुश्मन हो गया था और बादशाह से उन के बंध तक कराने का दुराग्रह किया था। राजगुरु तकी के इतने रोष का सिवाय इसके और कोई कारण नहीं हो सकता कि उन्होंने इनकी (तकी की) शिष्यता स्वीकार नहीं की।

हो न हो जीवन के अंतिम दिनों कबीर को काशी छोड़ कर मगहर जाने पर बाध्य होना तकी की कुचेष्टा का ही परिणाम रहा हो। यह तो हम समझ सकते हैं कि कबीर स्वेच्छा से ही अपना चिरप्रिय काशिस्थ वासस्थान मगहर प्रस्थान छोड़ यकायक मगहर के प्रेम में पड़कर वहाँ चले गए हों। 'जो कबिरा-काशी मरै तो रामहिं कवन निहोरा' वाले बचन में कुछ भी तत्त्व नहीं है। अब दो ही बातें ऐसी रह जाती हैं जिनकी वजह से विवश हो कर कबीर को काशी छोड़ कर चला जाना पड़ा हो। एक तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि तकी आदि उनके द्वेषियों के कुचक्र और कुमंत्रणा से बादशाह ने इन्हें काशी छोड़ कर चले जाने की आज्ञा दे दी हो। दूसरा कारण यह हो सकता है कि काशी के पंडितों और मुल्लाओं आदि ने ही इनको इतना तंग करना शुरू कर दिया हो कि इन्होंने विवश होकर अन्यत्र चले जाने का ही निश्चय किया हो। यह एक तथ्य है कि कबीर के अंतिम दिन मगहर में ही बीते और इसके उपर्युक्त दोनों ही कारण या उनमें से कोई एक हो सकता है।

कबीर का साहित्य

यह तो कबीर स्वयं कह चुके हैं कि मैंने 'मसि' और 'कागद' कभी हाथ से भी नहीं छुआ था और 'चारो जुग का महातम' मैंने मुँह से कह के ही जनाया है। इस से यह तो स्पष्ट ही है कि इन्होंने स्वयं अपनी कोई भी रचना लिपिवद्ध नहीं की थी। तो भी इनके नाम से प्रसिद्ध रचना परिमाण में बहुत अधिक मिलती है। 'हस्त लिखित हिंदी पुस्तकों का संचिप्त विवरण' (प्रथम भाग) नामक काशी-नागरी-प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में इनके रचित ग्रंथों की सूची में साठ से ऊपर ग्रंथ गिनाए गए हैं। मिश्रबन्धुओं की 'हिंदी नवरत्न' नामक पुस्तक में इनके ग्रंथों की एक सूची दी गई है और इसमें इनके ग्रंथों की संख्या सत्तर से भी ऊपर पहुँच गई है। ऐसी अवस्था में यह तो स्पष्ट ही है कि इनके मुख से निकले हुए पदों को इनके शिष्य भरसक कंठस्थ कर लेते थे। बाद में ये पद 'बीजक' और सिखों के

छठवें गुरु अर्जुन द्वारा संपादित 'आदिग्रंथ' में संगृहीत किए गए। परंतु ऐसी अवस्था में पाठों में अत्यधिक भ्रष्टता, हेर फेर तथा रद्द बदल होना स्वाभाविक ही है। यह तो निश्चय है ही कि इनके शिष्यों ने संग्रह को लिपिवद्ध या संपादित करते समय भूले हुए पद्यां या पद्यांशों को अपनी निजी सूक्त बूक्त के अनुसार जोड़ दिया होगा, साथ ही यह भी निश्चय है कि ये काफी बड़ी संख्या में कबीर के विचार और शैली के ढंग पर बहुत से स्वरचित पद भी उनकी रचना के साथ यत्र तत्र मिलाते चले गए। कबीर के नाम से जितनी रचना इस समय उपलब्ध है उसका एक काफी बड़ा भाग इनके शिष्यों की रचना है और समूची रचना में से कबीर के पदों को छुँट कर अलग करना असंभव है।

कबीर के उपलब्ध संग्रहों में सबसे अधिक प्रसिद्ध 'बीजक' है। कहा जाता है कि बनारस के आस पास के कुछ लोगों में धन सुरक्षित रखने की एक अनोखी प्रथा है। ये लोग धन को किसी गुप्त स्थान में छिपा देते हैं और 'बीजक' याददाश्त के लिये एक संकेतपत्र या नक्शा या बीजक बनाते हैं जिसको समझने वाला ही उस स्थान का पता लगा सकता है। इसी शब्द के अनुसार कबीर के संग्रहकर्त्ताओं ने इनके संग्रह का नाम 'बीजक' रखवा होगा। आशय यह है कि इसको ठीक ठीक समझने वाला ही कबीर के ज्ञानकोश से परिचित हो सकता है।

इस समय बीजक के कई संस्करण उपलब्ध हैं पर इनमें कई बातों में एक दूसरे से बड़ा अंतर है। पाठ, पदसंख्या, विषयक्रम तथा साधारण व्यवस्था आदि सब ही भिन्न भिन्न प्रकार से हैं। निम्नलिखित संस्करण हमारे सामने हैं—

(१) बुढ़ानपुर निवासी श्री पूरनदास की टीकायुक्त, सन् १८०५ में प्रयाग में मुद्रित संस्करण।

(२) कानपुर के रेवरेंड अहमदशाह का सन् १९११ का संस्करण। इसका संपादन रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा संकलित 'बीजक' के अनुसार ही किया हुआ कहा जाता है। विश्वनाथ सिंह जी ने बीजक की टीका भी की है और इनका संस्करण सन् १८६८ में काशी में छपा था, पर अभाग्यवश संप्रति अप्राप्य होने के कारण यह हमारे देखने में नहीं आया।

(३) अभी हाल में (सन् १९२८) में प्रयाग के लाला रामनारायन लाल ने श्री विचारदास की टीका का एक सुलभ संस्करण प्रकाशित किया है।

सन् १८९० में कलकत्ते में रेवरेंड प्रेमचंद नामक मुंगेर के एक मिशनरी सज्जन ने भी बीजक का एक संस्करण निकाला था, पर यह भी अब बाजार में अलभ्य हो गया है।

बीजक की रचनाएँ साधारणतः इन्हीं शीर्षकों में विभाजित हैं—

रमैनी	पद संख्या	८४
शब्द	”	११५
ज्ञान चौंतीसा	”	१
विप्रमतीसी	”	१
कहरा	”	१२
बसत	”	१२
चाँचर	”	२
बेली	”	२
बिरहुली	”	१
हिंडोला	”	३
साखी	”	३५३

कबीर की कविताओं का दूसरा बड़ा संग्रह ‘आदिग्रंथ’ में हुआ है। इस बृहत् धर्मग्रंथ का संकलन सिखों के छठवें गुरु अर्जुन ने सं० १६६१ में कराया था।

इसमें प्रथम गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुन तक छहों गुरुओं की आदिग्रंथ रचनाएँ संगृहीत हैं। बाद में गुरु तेग बहादुर और अंतिम गुरु गोविंद सिंह की रचनाएँ भी इसमें जोड़ दी गई हैं। इन गुरुओं के अतिरिक्त इसमें नामदेव तथा कबीर आदि कुछ प्रमुख भक्तों की बानियाँ भी संगृहीत हैं। इस महद्ग्रंथ में मि० पिनकाट की गणना के अनुसार कबीर के १,१४६ पद्य हैं, जिनमें २४४ तो साखियाँ हैं और शेष विभिन्न राग रागिनियों में गेय पदों के रूप में हैं। अधिकांश समालोचकों की राय में ग्रंथ के अधिकतर पद कबीर के रचे हुए नहीं हैं पर उनमें विचार उन्हीं के हैं। कबीरपंथी इनका पाठ कभी नहीं करते। और फिर बहुत थोड़े पद ऐसे हैं जो बीजक और इसमें दोनों में समान हों, और जो समान हैं भी उनमें पाठांतर बहुत हैं।

अभी थोड़े दिन हुए काशी नागरीप्रचारिणी सभा से बाबू श्यामसुंदरदास जी ने ‘कबीर ग्रंथावली’ नाम से कबीर की रचनाओं का एक अति सुचारु रीति से संपादित एक संस्करण निकाला है। सभा को हस्तलिखित पुस्तकों की खोज में कबीर के ग्रंथों की दो प्रतियाँ मिली थीं, एक सं० १५६१, अर्थात् कबीर के जीवन काल की ही लिखी हुई, और दूसरी सं० १८८१ की। कहा जाता है कि पहली प्रति बाबा मल्लूदास जी की लिखी हुई है। दोनों प्रतियों तथा आदिग्रंथ को मिला कर बाबू साहब ने इस संग्रह का संपादन किया है। जो दोहे और पद मूल अंश में नहीं आए उन्हें आपने अलग कर परिशिष्ट में डाल दिया है। सर्वसम्मति से यह इस समय कबीर का सबसे प्रामाणिक संग्रह माना जाता है। प्रस्तुत संग्रह के अधिकांश पद इसी ग्रंथावली से लिए गए हैं।

कबीर की कविता

कवि के लिये हमारे प्राचीन आचार्यों ने जो तीन बातें आवश्यक मानी हैं उन में दो—‘शिक्षा’ और ‘अभ्यास’—से तो कबीर साहब शून्य थे। रह गई ‘प्रतिभा’, सो अब कुछ विद्वानों को कबीर के प्रतिभान्वित होने में भी संदेह होने लगा है। यह एक तथ्य अवश्य है कि साधू संतों, और वैरागियों को एक ऐसी शाखा बाबा गोरखनाथ के समय से ही चली आ रही है जिस के अनुयायियों को ज्ञानोपदेश और वेद, पुराण, वर्णाश्रम धर्म आदि की उद्दंड समालोचना का रोग सा होता है। दलित जातियों तथा अशिक्षितों की सहानुभूति पाने की लालसा से द्विजातियों के धर्म तथा कर्मकांड आदि की तीव्र निंदा करते हुए एक विचित्र रूप से एकेश्वरवाद का मंत्र देते फिरते हैं। इनके ज्ञानभंडार में कुछ चलते हुए दार्शनिक शब्दों तथा वाक्यों के सिवा और कुछ नहीं होता। धूनी लकड़ सुलगा कर गाँजे और चरस की दम तैयार हुई नहीं कि मूर्खमंडली एकत्रित हो कर इन के ज्ञान और चिलम दोनों से लाभ उठाने लगती है। फिर खँजड़ी के ताल और चिमटे के सुर में ज्ञान स्रोतस्विनी में ये भक्त गाते लगाने लग जाते हैं। इन्हीं परिस्थितियों में कहे हुए शब्द आगे चल कर ‘बानी’ नाम से अभिहित होकर मायावाद और रहस्यवाद आदि बड़े शब्दों से अलंकृत होते हैं। इस प्रकार कहे हुए बहुत से पद अर्थशून्य वागजाल मात्र हैं, पर इन के रहस्यपूर्ण या उल्टवाँसी आदि शब्दों से पुरस्कृत होने का एक मात्र कारण है इन की अर्थशून्यता। इस कथन से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि कबीर के सब पद भी ऐसे ही हैं। पर इतना कहने में कुछ हानि नहीं प्रतीत होती कि लाख कोशिश करने पर भी विद्वानों की समझ में न आने वाले बहुत से पद कोई खास मानी नहीं रखते। उन्हें किसी आध्यात्मिक तत्त्व से पूर्ण मानना भ्रम है। हम यह भी कहने का साहस कर सकते हैं कि हो न हो ऐसे पद विशेष कर कबीर के अनुयायियों के रचे हुए होंगे जो कालांतर में कबीर की रचना में मिला दिए गए। इस अनुमान का आधार यही है कि कबीर ऐसा स्पष्टवादी कभी ऐसी उक्ति कहने का पक्षपातो न रहा होगा जिस का आशय जन साधारण की समझ में न आवे। और एक बात यह भी है कि कबीर के ही बहुत से पद और दोहे बहुत मनोरम और सहल सुंदर भी बन पड़े हैं। इन में काव्याडंबर तो कुछ भी नहीं है पर भाव बड़े सुंदर और ऊँचे हैं। क्या यह संभव है कि एक ही कवि एक साथ ही नितांत दुरूह और अति स्पष्ट हो ? कबीर का हिंदी साहित्य में जो स्थान है वह इन्हीं स्पष्ट और बोधगम्य पदों के प्रभाव से, उन के ईश्वर संबंधी तथ्य कथन अधिकतर स्पष्ट रूप से ही हुए हैं। जहाँ जहाँ उन्होंने ने हिंदू मुसलमान दोनों ही के धार्मिक ढोंग, पाखंड, तथा समाज संबंधी परंपरागत दुर्बल विश्वास, स्वतंत्रविचार के अभाव आदि की आलोचना की वहाँ उन के पदों से व्यंग्य तथा कहीं कहीं क्रूर परिहास की मात्रा अवश्य आ गई

है पर वे भी अधिकांश में भलीभाँति बोधगम्य हैं। अबोधगम्य अधिकतर वही हैं जिन में माया, ब्रह्म, अज्ञान आदि संबंधी तात्त्विक सिद्धांतों का समावेश सा प्रतीत होता है। ऐसे पदों में सूफी फकीरों तथा अद्वैतवाद के सिद्धांतों का एक निराला सम्मिश्रण सा जान पड़ता है। मेरे विचार से इस प्रकार के पदों की आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। पर ऐसा कहते समय कबीर के तात्त्विक सिद्धांतों के प्रतिपादन करने वाले तथा आचार और समान नीति से संबंध रखने वाले पदों के पार्थक्य को भलीभाँति मन में रखना होगा। तात्त्विक सिद्धांतों से संबंध रखने वाले कबीर के जितने पद मिलते हैं उन पर समष्टि रूप से विचार करने के बाद कोई सुनिश्चित अपना स्पष्ट दार्शनिक सिद्धांत स्थापित नहीं होता। यहाँ पर उनके तात्त्विक सिद्धांतों के विश्लेषण का अवसर नहीं है, संक्षेप से केवल यही कहा जा सकता है कि इन के पदों में कहीं निर्गुण ब्रह्म की महिमा गाई है तो कहीं इस्लामी एकेश्वरवाद की। कहीं इन्होंने जीवात्मा, परमात्मा, तथा जड़ जगत् की अलग अलग सत्ता स्वीकार की है तो कहीं एक ही परमात्मा (नूर) से सब की सृष्टि और उसी में सब का लय दिखलाया है। कोई भी एक मत स्थिर नहीं हो पाता। आध्यात्मिक सिद्धांतों के निरूपण के लिये शब्दों के प्रयोग में जो स्पष्टता तथा सावधानी तथा एकरूपता की आवश्यकता है वह कबीर से कोसों दूर है। ईश्वर या ब्रह्म के लिये जो शब्द इन्हें सूझा उसी का इन्होंने प्रयोग किया। राम, रहीम, अल्ला, हरि, गोविंद, आप, साहिब, नाम, शब्द, सत्य आदि अनेक शब्दों से इन्होंने काम लिया है। फिर सभी की महिमा भिन्न भिन्न रूपों से गाई गई है। इस का परिणाम यह हुआ है कि इन के पदों को पढ़ने पर पाठक कुछ अव्यवस्थित सा हो जाता है और कोई भी समालोचक इन की रचना के दार्शनिक पहलू पर कोई सम्मति नहीं स्थिर कर सकता। इन का अच्छा से अच्छा समर्थक केवल यही कह कर सतोष कर लेता है कि तत्त्वज्ञान का विषय जिस प्रकार गहन और जटिल है कबीर की कविताएँ भी वैसी ही हैं। उनका कहना है कि कबीर का काव्य केवल अनुभव की वस्तु है, वह गूँगे का गुड़ है। अध्यात्मज्ञान की भाँति उस का केवल अनुभव संभव है, शब्दों द्वारा उस को व्याख्या नहीं। कबीर पहुँचे हुए फकीर थे, उन्होंने अपनी अनुभूति को शब्दों में व्यक्त करने की चेष्टा की है। पर जब वह विषय, जिसे व्यक्त करना उन्हें अभीष्ट था, अतींद्रिय है तो उन की रचना कैसे इंद्रियग्राह्य हो सकती है। अतएव इस प्रकार की रचना का मर्म वही समझ सकता है जो स्वयं कबीर की भाँति पहुँचा हुआ हो, अतींद्रियज्ञाननिधि हो चुका हो। यही एक तर्क कबीर के दुरूह पदों के समर्थन में पेश किया जा सकता है। पर इसका प्रत्युत्तर या प्रतिवाद करने की चेष्टा व्यर्थ है।

जो हो, इन कठिनाइयों के होते हुए भी कबीर को हिंदी साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न मानना पड़ेगा। उन की अनूठी उक्तियाँ, चाहे वह कभी कभी समझ

में न भी आवें, हिंदी साहित्य में अनुपम हैं, और चाहे कुछ हो या न हो उन में भक्ति और शांति का एक ऐसा नीरव संगीत प्रवाहित है जो हिंदी क्या संसार के साहित्य के किसी भी साहित्य में शायद ही प्राप्य हो। इन के पदों, शब्दों और वाक्यों में न कलाकार की खराद है, न छंदों, पंक्तियों या मात्राओं आदि पर ही कोई विशेष ध्यान रक्खा गया है। ये उनके 'हृदयोद्गार' मात्र हैं, जो कि परिवर्ती कविता में इतने दुर्लभ हो गए, और इसी से इन का इतना मूल्य है।

दुलहनी गावहु मंगलचार,

हम घरि आए हो राजाराम भरतार ॥टेक॥

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती ।
रामदेव मोरै पाहुनै आये, मैं जोवन मैमाती ॥
सरीर-सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार ।
रामदेव संग भांवरि लैहूँ, धनि धनि भाग हमार ॥
सुर तेंतीसु कैतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी ।
कहै कबीर हम व्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी ॥

अब मैं पाइबौ रे पाइबौ ब्रह्मगियान

सहज समाधे' सुख मैं रहिबौ, कोटि कलप विश्राम ॥टेक॥

गुर कृपाल कृपा जब कीन्हौ, हिरदै केवल बिगासा ।
भागा भ्रम दसौं दिसि सूझ्या' परम जोति प्रकासा ॥
मृतक उठ्या धनक कर लीयै, काल अहेड़ी भागा ।
उदया सूर निस किया पयाना, सोवत थैं जब जागा ॥
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहता कह्या न जाई ।
सैन करै मनहीं मन रहसै, गूँगै जानि मिठाई ॥
पहुप बिना एक तरवर फलियाँ, बिन कर तूर बजाया ।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ॥
देखत कांच भया तन कंचन, बिन बानी मन माना ।
उठ्या विहंगम खोज न पाया, ज्युं जल जलहि समाना ॥
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौ, न्हाये उदिक न नाउँ ।
भागा भ्रम ये कही कहंता, आये बहुरि न आऊं ॥
आपै मैं तब आपा निरण्या, अपन पै आपा सूझ्या ।
आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन पै आपा बूझ्या ॥
अपनै परचै लागी तारी, अपन पै आप समाना ।
कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया आवन जाना ॥

इहि यत राम जपहु रे प्रानी, बूझौ अकथ कहाणी ।
हरि कर भाव होइ जा ऊपरि, जागति रैन विहानी टेक ॥
डाइन डारै सुन हां डोरै, स्यंथ रहै बन घेरै ।
पंच कुटुम्ब मिलि भूभन लागे, बाजत सबद सघेरै ॥
रोहै मृग ससा बन घेरै, पारधी बाण न मेलै ।
सायर जलै सकल बन दाभै, मंछ अहेरा खेलै ॥
सोई पंडित सो तत गयाता, जो इहि पदहि बिचारै ।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहिं तारै ॥

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई ॥टेक॥
पहलै पूत पोछै भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ ॥
जल की मछरी तरवर व्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई ।
बैलहि डारि गूनि घरि आई, कुत्ता कुंलै गई बिलाई ॥
तलि करि साखा ऊपरि कर मूल, बहुत भांति जड़ लागे फूल ।
कहै कबीर या तप कौ बूझै, ताकू तीन्धू त्रिभुवन सूझै ॥

संतौ भाई आई ग्यान की आंधी रे ।
भ्रम की टाटी सवै उडाणीं, माया रहै न बांधी ॥टेक॥
हित चत की द्वै थूनी गिरांनी, मोह बलींडा तूटा ।
त्रिस्नां छानि परी धर ऊपरि, कुबधि का भांडा फूटा ॥
जोग जुगति करि संतौ बांधी, निरचू चुवै न पाणी ।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जय जांणी ॥
आंधी पीछै जो जल बूढा, प्रेम हरी जन भीना ।
कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तम घीना ॥

हिडोला तहां भूलै आतम राम ।
प्रेम भगति हिडोलना, सब संतन कौ विश्राम ॥टेक॥
चंद सूर दोइ खभवा, बंक नालि की डोरि ।
भूलै पंच पियारियां, तहां भूलै जीय मोर ॥
द्वादस गन के अंतरा, तहां अमृत कौ ग्रास ।
जिनि यहु अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास ॥
सहज सुनि को नेह्रौ, गगन मंझल सिरि मोर ।
दोऊ कुल हम आगरी, जौ हम झूलै हिंडोल ॥
अरध उरध की गंगा जमुनां, मूल कवल कौ घाट ।
षट् चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाढ़ ॥

नाद व्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार ।

कहे कबीर गुंण गाइ ले, गुर गंमि उतरौ पार ॥

मैं बुनि करि सिराना हो राम, नाल करम नहिं ऊबरे ॥ टेक ॥
दखिन कूट जब सुनहां भूँका, तब हम सगुन विचारा ।
लरके परके सब जागत हैं, हम धरि चोर पसारा हो राम ॥
ताना लीन्हा बाना लीन्हा, लीन्हें गोड के पऊबा ।
इत उत चितवत कठवन लीन्हा मांड चलवना डऊवा हो राम ॥
एक पग दोइ पग त्रेपग, संधे सधि मिलाई ।
करि परपंच मोट बधि आयो, किल किल सबै मिटाई हो राम ॥
ताना तपन करि बाना बुनि करि, छाक परी मोहि ध्यान ।
कहे कबीर मैं बुनि सिराना, जानत है भगवाना हो राम ॥

मन रे जागत रहिये भाई ।

गाफिल होइ बसत मुति खोवै, चोर मुसै घर जाई ॥ टेक ॥
षट चक्र की कनक कोठरी, बस्त भाव है सोई ।
ताला कुँची कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई ॥
पंच पहरवा सोइ गए हैं, बसतैं जागण लागी ।
जुरा मरण व्यापै कुछ नाहीं, गगन मंडल लै लागी ॥
करत विचार मन ही मन उपजी, ना कहीं गया न आयो ।
कहे कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया ॥

चलन चलन सब को कहत हैं, ना जानौ बैकुंठ कहां है ॥ टेक ॥
जोजन एक प्रमिति नहीं जानें, बातनि हीं बैकुंठ बखानै ।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लगि नहिं हरि चरन निवासा ॥
कहैं सुनें कैसे पतिअइए, जब लग तहां आप नहीं जइये ।
कहे कबीर यहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि ॥

अपनै मैं रँगि आप तपौ जानूँ, जिहि रँगि जानि ताही कूं मानूँ ॥ टेक ॥
अभि अंतरि मन रंग समाना, लोग कहैं कबीर बौराना ।
रंग न चीन्हैं मूरिख लोई, जिहि रँगि रँग रखा सब कोई ॥
जे रंग कवहूँ न आवै न जाई, कहे कबीर तिहि रखा समाई ।

भगवा एक नबेरो राम, जे तुम्ह अपनै जन सँ काम ॥ टेक ॥
ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रु उपाया बेद बड़ा कि जहां यैं आया ।
यहु मन बड़ा कि जहां मन मानैं, राम बड़ा कि रामहि जानैं ॥
कहे कबीर हूं खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास ।

दास रामहिं जानि है रे, और न जानै कोइ ॥ टेक ॥
 काजल देइ सबै कोइ, चपि चाहन माहि बिनान ।
 जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवान ॥
 बहुत भगति भौ सागरा, नाना विधि नाना भाव ।
 जिहि हिरदै श्री हरि भेटिया, सो भेद कहूँ कहूँ ठाउं ॥
 दरसन सीमा का कीजिए, जौ गुन नहीं होत समान ।
 सोधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिलै पखान ॥

मैं डोरै डोरै जाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥ टेक ॥
 सूत बहुत कछु थोरा, ताथैं लाइ लै कथा डोरा ।
 कथा डोरा लागा, तब जुरा मरण भौ भागा ॥
 जहां सूत कपास न पूनी, तहां बसै इक मूर्नी ।
 उस मूर्नी सूँ चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
 मेर डंड इक छाजा, तहां बसै इक राजा ।
 तिस राजा सूँ चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
 जहां बहु हीरा घन मोती तहां तत लाइ लै जोती ।
 तिस जोतिहि जोति मिलाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
 जहां ऊगै सूर न चंदा, तहां देष्या एक अनंदा ।
 उस अनंद सूँ चित लाऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
 मूल बंधु इक पावा तहां सिद्ध गणेश्वर रावा ।
 तिस मूलहिं मूल मिलाऊंगा तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
 कबीर तालिब तौरा तहां गोपत हरी गुर मोरा ।
 तहां हेत हरी चित लाऊंगा तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥

भाई रे बिरले दोस्त कबीर के यहु तत बार बार कासों कहिए ।
 भानण घड़ण संवारण सम्रथ ज्यूं राषै त्यूं रहिए ॥ टेक ॥
 आलम दूनी सबै फिरि खोजी हरि बिन सकल अयाना ।
 छह दरसन छथानवैं पाषंड आकुल किनहूँ न जाना ॥
 जप तप संजम पूजा अरचा जोतिग जग बौराना ।
 कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मनहीं मन न समाना ॥
 कहै कबीर जोगी अरु जंगम ए सब भूठी आसा ।
 गुरु प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूं निहैचै भगति निवासा ॥

कितेक सिव संकर गए ऊठि,
 राम समाधि अजहूँ नहीं छूटि ॥ टेक ॥
 प्रलै काल कहूँ कितेक भाष गये इंद्र से अगणित लाष ।
 ब्रह्मा खोजि परबौ गहि नाल कहै कबीर वै राम निराल ॥

सो कछू बिचारहु पंडित लोई,
 जाके रूप न रेख बरण नहीं कोई ॥ टेक ॥
 उपलै प्यंड प्रान कहां थैं आवै मृवा जीव जाइ कहां समावै ।
 इंद्रि कहां करहि विश्रामा सो कत गया जो कहता रामा ॥
 पंचतत तहां सबद न स्वादं अलष निरंजन विद्या न बादं ।
 कहै कबीर मन मनहि समाना तब आगम निगम भूठ करि जाना ॥

पंडित बात बंदते भूठा,
 राम कहां दुनियां गति पावै पांड कहां मुख मीठा ॥ टेक ॥
 पावक कहां पाव न दाभै जल कहि त्रिपा बुझाई ।
 भोजन कहां भूख जे भाजै तौ सब कोइ तिरि जाई ॥
 नरकै साथि सूत्र हरि बोलै हरि परताप न जानै ।
 जो कबहूँ उड़ जाइ जंगल में बहुरि न सुरतैं आनै ॥
 साची प्रीति विषै माया सूं हरि भगतनि सूं हांसी ।
 कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ बांध्यौ जमपुरि जासी ॥

जौ पै करता बरण बिचारै,
 तौ जनमत तिनि डांडि किन सारै ॥ टेक ॥
 उतपति ब्यंद कहां थै आया,
 जेति धरी अरु लागी माया ॥
 नहीं को ऊंचा नहीं को नीचा,
 जाका प्यंड ताही का सीचा ॥
 जे तूं बाभन बभनी जाया,
 तौ आन बाट है काहे न आया ॥
 जे तूं तुरक तुरकनी जाया,
 तौ भीतरि खतना क्यूं न कराया ॥
 कहै कबीर मधिम नहीं कोई,
 सो मधिम जा मुखि राम न होई ॥

कथता बक्ता सुरता सोई आप बिचारै ग्यानी होई ॥ टेक ॥
 जैसैं अगिन पवन का मेला चंचल चपल बुधि का खेला ।
 नव दरवाजे दसूं दुवार बूझि रे ग्यानी ग्यान बिचार ॥

देही माटी बोलै पवना बूझि रे भ्यानी मूवा स कौना ।
मुई सुरति बाद अहंकार, वह न मूवा जो बेलनहार ॥
जिस कारनि तटि तीरथि जाही, रतन पदारथ घटही माही ।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बखानौ, भीतरि हूती बसत न जायै ॥
हूं न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रखा समाइ ।
कहै कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया ॥

हम न मरै मरिहैं संसारा, हम कूं मिल्या जियावनहारा ॥ टेक ॥
अब न मरौ मरनै मन माना, तेई मुए जिनि राम न जाना ।
साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै ॥
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं ।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भए सुख सागर पावा ॥

कौन मरै कौन जनमै आई, सरगा नरक कौनै गति पाई ॥ टेक ॥
पंचतत अविगत थैं उतपनां, एकै किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाना, रेख रही नहीं आसा ॥
जल मै कुंभ कुंभ मै जल है, बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथौ गियानी ॥
आदै गगनां अतै गमनां, मधे गगनां भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै, भूठी संक उपाई ॥

कौन मरै कहु पंडित जना, सो समझाइ कहौ हम सना ॥ टेक ॥
माटी माटी रही समाई, पवनै पवन लिया सँगि लाई ।
कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनी ॥

जे को मरै मरन है मीठा,
गुरु प्रसाद जिनहीं मरि दीठा ॥ टेक ॥
मूवा करता मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी ॥
मूवा आपा मूवा मान, परपंच लेइ मूवा अभिमान ।
राम रमे रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हूवा ॥

जस तूं तस तोहि कोई न जान ।

लोग कहैं सब आनहि आन ॥ टेक ॥

चार बेद चहुँ मत का विचार, इहि भ्रमि भूलि परबौ संसार
सुरति सुमृति दोइ कौ बिसवास, बाझि परबौ सब आसा पास ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरौ धूं का मैं का कर ।
जिहि तुम्ह तारौ सोई पै तिरई, कहै कबीर नांतर बांध्यौ मरई ॥

लोका तुम्ह ज कहत हौ नंद कौ नंदन नंद कहौ घूं काकौ रे ।
 धरनि अकास दोऊ नहिं हेते तब यहु नंद कहां थौ रे ॥ टेक ॥
 जांमैं मरै न संकुटि आवै नांव निरंजन जाकौ रे ।
 अविनासी उपजै नहिं बिनसै संत सुजस कहैं ताकौ रे ॥
 लख चौरासी जीव जंत मैं भ्रमत भ्रमत नंद याकौ रे ।
 दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो भगति करै हरि ताकौ रे ॥

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई ।
 अबिगति की गति लखी न जाई ॥ टेक ॥
 चारि बेद जाकै सुमृत पुराना नौ व्याकरना मरम न जाना ।
 सेरु नाग जाकै गरड़ समाना चरन कवल कवला नहिं जाना ॥
 कहै कबीर जाकै भेदै नाहीं निज जन बैठे हरि की छाहीं ॥

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूँ सब ।
 मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
 कोई कहौ कबीर कोई कहौ राम राई हो ॥ टेक ॥
 ना हम बार बूढ़ नाहीं हम ना हमरै चिलकाई हो ।
 पठए न जाऊं अरवा नहीं आऊं सहजि रहु हरि आई हो ॥
 वोढन हमरै एक पछेवरा लोक बोलैं इकताई हो ।
 जुलहै तनि बुनि पान न पावल फारि बुनी दस ठाँई हो ॥
 त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल तब हमारौ नाउ राम राई हो ।
 जग मै देखौं जग न देखै मोहि इहि कबीर कछु पाई हो ॥

लोका जानि न भूलौ भाई ।
 खालिक खलक खलक मै खलिक सब घट रह्यौ समाई ॥ टेक ॥
 अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा ।
 ता नूर थैं सब जग कीया कौन भला कौन मंदा ॥
 ता अला की गति नहीं जानीं गुरि गुड़ दीया मीठा ।
 कहै कबीर मै पूरा पाया सब घटि साहिव दीठा ॥

राम मोहि तारि कहां लै जैहो ।
 सो बैकुंठ कहौ धूँ कैसा करि पसाव मोहि दैहो ॥ टेक ॥
 जे मेरे जीव दोइ जानत हौ तौ मोहि मुक्ति बताओ ।
 एक मेक रमि रह्या सबनि मै तौ काहे भरमावौ ॥
 तारण तिरण जबै लग कहिए तब लग तत न जाना ।
 एक राम देख्या सबहिन मै कहै कबीर मन माना ॥

सोहं हंसा एक समान, काया के गुण आनहिं आन ॥ टेक ॥
माटी एक सकल संसारा, बहु बिधि भांडे घड़ै कुँभारा ॥
पंच वरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतियाइ ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभुवन नाथ रक्षा भरपूर ॥

प्यारे राम मन ही मना ।

कासूँ कहूँ कहन कौं नाही, दूसर और जनां ॥ टेक ॥
ज्यूँ दरपन प्रतिब्यंब देखिए, आप दवासूँ सोई ।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रबल जब होई ॥
जौ रिभजुं तौ महा कठिन है, विन रिभयै थैं सब खोटी ।
कहै कबीर तरक दोइ साथै ताकी, मति है मोटी ।

काजी कौन कतेब बषानैं ।

पढ़त पढ़त केतें दिन बीते, गति एकै नहीं जानैं ॥ टेक ॥
सकति से नेह पकरि करि सुनति, यहु नवदूँ रे भाई ।
जौर खुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई ॥
हौं तौ तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये ।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ॥
छाडि कतेब राम कहि काजी, खून करत हौ भारी ।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे भूपमारी ॥

पढ़ि ले काजी बंग निवाजा ।

एक मसीति दसौं दरवाजा ॥ टेक ॥
मन करि मका कविला करि देही, बोलनहार जगत गुरु ये ही ।
उहां न दोजग भिस्त मुकांमां, इहां ही राम इहां रहिमांमां ॥
बिसमल तामस भरंम क दूरी, पचूं भपि ज्यूं होइ सबूरी ।
कहै कबीर मैं भया दिवाना, मनवां मुसि मुसि सहजि समाना ॥

मुलां करि ल्यौ न्याव खुदाई ।

इहि बिधि जीव का भरम न जाई ॥ टेक ॥
सरजी आनैं देह विनासै, माटी बिसमल कीता ।
जाति सरूपी हाथि न आया; कहौ हलाल क्या कीता ॥
बेद कतेब कहौ क्यूं भूठा, भूठा जोनि बिचारै ।
सब घटि एक एक जानैं, भी दूजा करि मारै ॥
कुकड़ी मारै बकरी मारै, हक हक करि बोलै ।
सबै जीव साईं के प्यारे, उग्रहुगे किस बोलै ॥

दिल नहीं पाक पाक नहीं चीन्हां, उसदा खोज न जानां ।
कहै कबीर भिसति छिटकाई दो जग ही मन माना ॥

या करीम बलि हिकमत तेरी,
खाक एक सूरति बहु तेरी ॥ टेक ॥
अर्ध गगन मैं नोर जमाया, बहुत भांति करि नूरनि पाया ॥
अबलि आदम पीर मुलानां तेरी, सिफति करि भए दिवाना ॥
कहै कबीर यहु हेतु बिचारा, या रब या रब यार हमारा ॥

काहे री नलिनी तू कुमिलानी,
तेरी ही नालि सरोवर पानी ॥ टेक ॥
जल मैं उतपति जल मैं बास, जल मैं नलनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मूए हमारे जान ॥

इब तूं हसि प्रभू मैं कछु नाहीं,
पंडित पढ़ि अभिमान नसाहीं ॥ टेक ॥
मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हां तब लग मैं करता नहीं चीन्हां ॥
कहै कबीर सुनहु नर नाहा ना हम जीवत न मूंवाले माहा ॥

अब का डरौं डर डरहि समांन,
जब थैं मोर तोर पहिचाना ॥ टेक ॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हा, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हां ॥
आगम निगम एक करि जाना, ते मनवां मन मांहि समांन ॥
जब लग ऊंच नीच करि जाना, ते पसुवा भूले भ्रम नाना ॥
कहै कबीर मैं मेरी खोइ, तबहि रांम अवर नहीं कोई ॥

अवधू जोगी जग मैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ॥ टेक ॥
बसै गगन मैं दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ै, पीवै महारस मीठा ॥
परगट कंथां मांहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै ।
सहंस इकीस छु सै धागा, निहचल नाकै पोवै ॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जरै, त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेस्वर, सहज मुनि ल्यौ लागै ॥

अवधू गगन मंडल घर कीजै ।

अमृत भरै सदा सुख उपजै, बक नालि रस पीवै ॥ टेक ॥
मूल बांधि सर गगन समाना, सुषमन यों तन लागी ।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगणी जागी ॥
मनवां जाइ दरीवै बैठा, मगन भया रसि लागा ।
कहै कबीर जिय संसा नाही, सबद अनाहद बागा ॥

अवधू मेरा मन मतिवारा ।

उन्मनि चढ्या गगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियार ॥ टेक ॥
गुड़ करि ग्यांन ध्यान करि महुवा, भव भाठी करि भारा ।
सुषमन नारी सहजि समानीं, पीवै पीवन हारा ॥
दोउ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महारस भारी ।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई संसारी ॥
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहां मेरा मन नाचै ।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमता काछै ॥

बोलौ भाई राम की दुहाई ।

इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥ टेक ॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्ही, ब्रह्म अग्निन पर जारी ।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतिवाला पीवै राम रस, दूजा कछू न सुहाई ।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ॥
पंच जने सो संग कर लीन्हें, चलत खुमारी लागी ।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ॥
सहज सुनि मैं जिन रस चाष्या, सतगुर थैं सुधि पाई ।
दास कबीर इहि रसि माता, कवहूँ उछुकि न जाई ॥

भाई रे चून बिलूँटा खाई ।

बाधनि संगि भई सवहिन कै, खसम न भेद लहाई ॥ टेक ॥
सब घर फोरि बिलूँटा खायौ, कोई न जानै भेव ।
खसम निपूतौ आंगणि सूतौ, रांड न देई लेव ॥
पाड़ोसनि पनि भई बिरांनी, मांहि हुई घर घालै ।
पंच सखी मिलि मंगल गावैं, यहु दुख याकौं सालै ॥
द्वै द्वै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अंधारा ।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ॥

होत उजाड़ सबै कोई जानै, सब काहू मन भावै ।
कहै कबीर मिलै जे सतगुर, तौ यहू चून छुड़ावै ॥

माया तजूं तजी नहीं जाइ ।

फिर फिर माया मोहि लपटाइ ॥टेक॥

माया आदर माया मान, माया नहीं तहां ब्रह्म गियांन ॥
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान ॥
माया जप तप माया जोग, माया बांधे सबही लोग ॥
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहुँ पासि ॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता ॥
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार ॥

काहे रे मन दह दिसि धावै
विषिया संगि सतोष न पावै ॥टेक॥
जहां जहां कलपै तहां तहां बधना,
रतन कौ थाल कियौ तै रधना ॥
जौ पै सुख पईयत इन मांहीं,
तौ राज छाड़ि कत बन कौं जाहीं ॥
आनंद सहत तजौ विष नारी,
अब क्या भूषै पतित भिषारी ॥
कहै कबीर यहू सुख दिन चारि,
तजि विषिया भजि चरन मुरारी ॥

जियरा जाहि गौ मैं जानां

जो देख्या सो बहुरि न पेख्या माटी सू लपटाना ॥ टेक ॥
बाकुल बसतर किता पहरिवा, का तप बनखंडि बासा ।
कहा मुगधरे पांहन पूजै, काजल डारै गाता ॥
कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई ।
सुनौ संतौ सुमरौ भगत जन, हरि धिन जनम गवाई ॥

साईं मेरे मन साजि दई एक बेखी,
हस्त लोक अरु मैं तैं बोली ॥ टेक ॥
इक भंभर सम सूत खटोला,
त्रिसनां बाव चहुँ दिसि डोला ॥
पांच कहार का मरम न जाना,
एकै कह्या एक नहीं मानां ॥

भूभर घाम उहार न छावा,
नैहरि जाति बहुत दुख पावा ॥
कहे कबीर बर यह दुख सहिए,
राम प्रीति करि सगहीं रहिये ॥

भूठे तन कौ कहा रखिए,
मरिये तौ पल भरि रहण न पइये ॥ टेक ॥
पीर पांड घृत प्यंड संवारा,
प्राण गये ले बाहरि जारा ॥
चोबा चंदन चरचत अंग,
सो तन जरै काठ के संग ॥
दास कबीर यहु कीन्ह बिचारा,
इक दिन हैहै हाल हमारा ॥

देखहु यहु तन जरता है,
घड़ी पहर बिलंबौ रे भाई जरता है ॥ टेक ॥
काहे कौ एता किया पसारा,
यहु तन जरि बरि हैहै छारा ॥
नव तन द्वादस लागी आगी,
सुगंध न चेतै नख सिख जागी ॥
काम क्रोध घट भरे बिकारा,
आपहि आप जरै संसारा ॥
कहे कबीर हम मृतक समाना,
राम नाम छूटे अभिमानां ॥

तन राखनहार को नाहीं,
तुम्ह सोचविचारि देखौ मन मांही ॥ टेक ॥
जौर कुटंब अपनौ करि पारथौ,
मूंड ठोकि ले बाहरि जारथौ ॥
दगाबाज लूटैं अरु रोवैं
जारि गाड़ि पुर योजहिं षोवैं ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई,
हरि बिन राखनहार न कोई ॥

राम थोरे दिन कौं का धन करनां,
 धंधा बहुत निहाइति मरना ॥ टेक ॥
 कोटी धज साह हस्ती बध राजा,
 क्रिपन को धन कौनै काजा ॥
 धन कै गरब राम नहीं जाना,
 नागा है जम पै गुदराना ॥
 कहै कबीर चेतहु रे भाई,
 हंस गया कछु संग न जाई ॥

मेरी मेरी दुनियां करते, मोह मछुर तन धरते ।
 आगैं पीर मुकदम होते, वै भी गए यौं करते ॥ टेक ॥
 किसकी ममां चचा पुनि किसका, किसका पगुड़ा जोई ।
 यह संसार बजार मड्या है, जानैगा जन कोई ॥
 मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहाँ नहीं को मेरा ।
 यहु संसार दूढ़ि सब देखा, एक भरोसा तेरा ॥
 खांहि हलाल हराम निवारै, भिस्त तिनहु कौं होइ ।
 पंच तत का मरम न जानै दोजगि पड़िहैं सोई ॥
 कुटुंब कारणि पाप कमावै, तू जाणौं घर मेरा ।
 ए सब मिले आप सवारथ, इहां नहीं को तेरा ॥
 सायर उतरौ पंथ सँवारौ, बुरा न किसी का करणां ।
 कहै कबीर सुनहु रे संतौ, ज्वाब खसम कू भरणां ॥

रे या मैं क्या मेरा क्या तेरा,
 लाज न मरहि कहत घर मेरा ॥ टेक ॥
 चारि पहर निस भोरा, जैसै तरवर पंषि बसेरा ।
 जैसे बनियें हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा ॥
 ये ले जारे वै ले गाड़े, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े ।
 कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा सोई ॥

नर जाणै अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया ॥ टेक ॥
 मारग छांड़ि कुमारग जावै, आपण मरै और कूं रोवै ।
 कछू एक किया कछू एक करणां, मुगध न चेतै निहचै मरणां ॥
 ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उज्जत बिनसत लगै न बारा ।
 पंच पंथुरिया एक ससीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा ॥

मन रे अहरषि बाद न कीजै, अपनां सुकृत भरिभरि लीजै ॥ टेक ॥
 कुँभरा एक कमाई माटी, बहु विधि जुगति बणाई ।
 एकनि मैं मुकताहलि मोती, एकन ब्याधि लगाई ॥
 एकनि दीना पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा ।
 एकनि दीनी गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा ॥
 सांची रही सूम की संपति, मुगध कहै यहु मेरी ।
 अंत काल जब आइ पहूँता, छिन मैं कोन्ह न बेरी ॥
 कहत कबीर सुनौं रे संतौ, मेरी मेरी सब भूठी ।
 चड़ा चीथड़ा चूहड़ा ले गया, तणीं तणगती टूटी ॥

हड़ हड़ हड़ हड़ हंसती है, दीवानपना क्या करती है ॥
 आडी तिरछी फिरती है, क्या च्यों च्यों म्यों म्यों करती है ॥ टेक ॥
 क्या तू रंगी क्या तू चंगी, क्या सुख लोडै कीन्हा ।
 मीर मुकदम सेर दिवांनी, जंगल केर पजीना ॥
 भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया ।
 राम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया ॥
 कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि है निस्तारा ।
 सारा खलक खराब किया है, मानस कहा बिचारा ॥

हरि जननी मै बालिक तेरा,
 काहे न औगुण बकसहु मेरा ॥ टेक ॥
 सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहै न तेते ॥
 कर गहि केस करै जौ धाता, तऊ न हेत उतारै माता ।
 कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

मैं गुलाम मोहिं बेचि गुसाईं,
 तन मन धन मेरा रामजी कै ताईं ॥ टेक ॥
 आनि कबीरा हाटि उतारा ।
 सोई गाहक सोई बेचनहारा ॥
 बेचै राम तो राखै कौन ।
 राखै राम तों बेचै कौन ॥
 कहै कबीर मैं तन मन जारया ।
 साहिब अपना छिन न बिसारया ॥

हिंदी के कवि और काव्य

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव ।
 हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥ टेक ॥
 हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया ।
 राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥
 किया सुंगार मिलन कै ताई ।
 काहे न मिलौ राजा राम गुसाई ॥
 अब की बेर मिलन जो पाऊं ।
 कहै कबीर भौजलि नहिं आऊं ॥

राम बिन तन की ताप न जाई ।
 जल मैं अगनि उठी अधिकाई ॥ टेक ॥
 तुम्ह जलनिधि मैं जल र मीना ।
 जल मैं रहौं जलहिं बिन पीना ॥
 तुम्ह पिंजरा मैं सुवना तोरा ।
 दरसन देहु भाग बड़ मोरा ॥
 तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला ।
 कहैं कबीर राम रंमू अकेला ॥

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई ।
 जा दिन तेरो कोई नाहीं ता दिन राम सहाई ॥ टेक ॥
 संत न जानूं मत न जानूं जानूं, सुन्दर काया ।
 मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खायै माया ॥
 वेद न जानूं मेद न जानूं, जानूं एकहि रामा ।
 पंडित दिसि पछिवारा कीन्हा, मुख कीन्हौं जित नामा ॥
 राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै ।
 दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन ऊवारै ॥

डगमग छांड़ि दे मन बौरा ।
 अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा ॥ टेक ॥
 होइ निसंक मगन है नाचौ, लोभ मोह भ्रम छांड़ौ ।
 सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचैं भाड़ौ ॥
 लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं पासी ।
 आधा चलि करि पीछा फिरिहै, हैहै जग मैं हासी ॥
 यहु संसार सकल है मेला, राम कहैं ते सूचा ।
 कहै कबीर नाव नहीं छांड़ौं, गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥

का सिधि साधि करौं कुछ नाहीं,
 राम रसाइन मेरी रसना माहीं ॥ टेक ॥
 नहीं कुछ ग्यान ध्यान सिधि जोग, तायैं उरजै नाना रोग ।
 का बन मैं बसि भये उदास, जे मन नहीं छाड़ै आसा पास ॥
 सब कृत काच हरी हित सार, कहै कबीर तजि जग न्यौहार ।

चलौ विचारी रहौ सँभारी, कहता हूँ ज पुकारी ।
 राम नाम अंतर गति नाही तौ जनम जुवा ब्यूँ हारी ॥ टेक ॥
 मूँड़ मुड़ाइ फूलि का बैठे, काननि पहिरि मंजूसा ।
 बाहरि देह घेह लपटानी, भीतरि तौ घर मूसा ॥
 गालिब नगरी गांव बसाया, हाम काम अहंकारी ।
 घालि रसरिया जब जम खैचै, तब का पति रहै तुम्हारी ॥
 छांड़ि कपूर गांठि विष बांध्यौ, मूल हुवा न लाहा ।
 मेरे राम की अभय पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा ॥

ते हरि के आवैहि किहि कामा ।
 जे नहीं चीन्है आतमरामा ॥ टेक ॥
 थोरी भगति बहुत अहंकारी ।
 ऐसे भगता मिलै अपारा ॥
 भाव न चीन्है हरि गोपाला ।
 जानि न अरहट कै गलि माला ॥
 कहै कबीर जिनि गया अभिमाना ।
 सो भगता भगवंत समाना ॥

कहा भयौ रचि स्वांग बनायौ ।
 अंतरिजामी निकटि न आयौ ॥ टेक ॥
 बिषई बिषै डिठावै गावै ।
 राम नाम मनि कबहूँ न भावै ॥
 पापी परलै जाहि अभागे ।
 अमृत छाड़ि बिषै रसि लागे ॥
 कहै कबीर हरि भगति न साधै ।
 भग मुषि लागि मूये अपराधी ॥
 सब दुनों सयानीं मैं बौरा ।
 हम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ॥ टेक ॥
 मैं नाहीं बौरा राम कियो बौरा ।
 सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा ॥

बिद्या न पढ़ूं बाद नहीं जानूं ।
 हरि गुन कथत सुनत बौरानूं ॥
 काम क्रोध दोऊ भये विकारा ।
 आपहि आप जरै संसारा ॥
 मीठी कहा जाहि जो भावै ।
 दास कबीर राम गुन गावै ॥

अब मै राम सकल सिधि पाई ।
 आन कहूँ तौ राम दुहाई ॥ टेक ॥
 इहि चिति चाषि सवै रस दीठा ।
 राम नाम सा और न मीठा ॥
 औरै रस है है कफ गाता ।
 हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ॥
 दूजा बणिज नहीं कछू बाधर ।
 राम नाम दोऊ तत आधर ॥
 कहै कबीर जे हरि रस भोगी ।
 ताकू मिल्या निरंजन जोगी ॥

रे मन जाहि जहां तोहि भावै ।
 अब न कोई तेरै अंकुस लावै ॥ टेक ॥
 जहां जहां जाइ तहां तहां रामा ।
 हरि पद चीन्हि कियौ विश्रामा ॥
 तन रंजित तब देखियत दोई ।
 प्रगट्यौ ग्यांन जहां तहां सोई ॥
 लीन निरंतर बपु बिसराया ।
 कहै कबीर सुख सागर पाया ॥

बहुरि हम काहे कूं आवहिगे ।
 बिछुरे पंचतत की रचना, तब हम रामहि पावहिगे ॥ टेक ॥
 पृथी का गुण पाणी सोप्या, पानी तेज मिलावहिगे ।
 तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावहिगे ॥
 जैसे बहु कंचन के भूषन, ये कहि गालि तवावहिगे ।
 ऐसे हम लोक बेद के बिछुरे, सुनिहि मांहि सभांवहिगे ॥
 जैसे जलहि तरंग तरंगनी ऐसे हम दिखलावहिगे ।
 कहै कबीर स्वामी सुखसागर, हंसहि हंस मिलावहिगे ॥

अवधू काम धेन गहि बांधी रे ।

भांडा भजन करे सबहिन का कछु न सूझै आंधी रे ॥ टेक ॥

जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै ।

कौली घाल्या बीडरि चालै, ज्यूं धेरोँ ल्यू दरवै ॥

तिहिं धेन थैं इच्छ्या पूगी, पाकडि खूटै बांधी रे ।

गवाड़ा माहैं आनंद उपनौं, खूटै दोऊ बांधी रे ॥

साई माइ सासु पुनि साई, साई याकी नारी ।

कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु बिचारी ॥

ऐसा ग्यान बिचारि लै लै लाइ लै ध्याना ।

सुनि मंडल मैं घर किया, जैसे रहै सिचांना ॥ टेक ॥

उलट पवन कहां राखिये, कोई भरम बिचारै ।

साधै तीर पताल कूं, फिरि गगनहि मारै ॥

कंसा नाद बजाव ले, धुनि निमसि ले कंसा ।

कंसा फूटा पंडिता, धुनि कहां निवासा ॥

प्यंड परे जीव कहां रहै, कोई मरम लखावै ।

जीवत जिस घरि जाइये, उधै मुषि नही आवै ॥

सतगुर मिलै त पाईये, ऐसी अकथ कहाणी ।

कहै कबीर संसा गया, मिले सारंग पाणी ॥

अकथ कहाणी प्रेम की कछु कही न जाई ।

गूंगे केरी सरकरा बैठे मुसकाई ॥ टेक ॥

भीमि बिना अरु बीज बिन तरवर एक भाई ।

अनत फल प्रकासिया गुर दिया बताई ॥

मन थिर बैसि बिचारिया रामहि ल्यौ लाई ।

भूठी अन मै गिस्तरी सब थोथी बाई ॥

कहै कबीर सकति कछुनाही गुर भया सहाई ।

आवण जाणी मिटि गई, मन मनहि समाई ॥

जाइ पूछौ गोबिंद पढ़िया पंडिता, तेरा कौन गुरु कौन चेला ।

अपणों रुप कौं आपहि जाणौं, आपैं रहैं अकेला ॥ टेक ॥

बांभ का पूत बाप बिना जाया, बिन पांऊं तरवरि चढ़िया ।

अस बिन पापर गज बिन गुड़िया, बिन षंडै संगाम जुड़िया ॥

बीज बिन अंकूर पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया ।

रुप बिन नारी पुहप बिन परमल, बिन नौरै सरवर नरिया ॥

देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पाषां भवर बिलंबिया ।
 सूर होइ सो परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया ॥
 दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हृद बिन अनाहद सबद वागा ।
 चेतना होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा ॥

ऐसा अदभुत् मेरे गुरि कथ्या मै रह्या उभैपै ।
 मूसा हस्तो सौं लडै कोई बिरला पेपै ॥ टेक ॥
 मूसा पैठ। बांवि मै, लारै सापणि धाई ।
 उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिगज भाई ॥
 चीटी परबत ऊषण्यां ले राख्यौ चौडै ।
 मुर्गा मिनकी सू लडै, भल पाड़ी दौडै ॥
 सुरही चूषै बछतलि, बछा दूध उतारै ।
 ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै ॥
 भील लुक्क्या बन बीभ मै, ससा सर मारै ।
 कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै ॥

अवधू जागत नींद न कीजै ।
 काल न खाइ कलप नही ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥ टेक ॥
 उलटी गंगा समुद्रहि सोलै, ससिहर सूर गरासै ।
 नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मै व्यंव प्रकास ॥
 डाल गह्या यै मूल न सूझै, मूल गह्यां फल पावा ।
 बंबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा ॥
 बैठि गुफा मै सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै ।
 उलटै धनकि पारधी मारयो, यहु अचरज कोइ बूझै ॥
 औंधा घड़ा न जल मै डूबै, सूधा सूभर भरिया ।
 जाकौं यहु जग घिणा करि चालै, ता प्रसाद निस्तरिया ॥
 अंबर बरसै धरती भीजै, यहु जाणे सब कोई ।
 धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥
 गावणहारा कदे न गावै अणबोल्या नित गावै ।
 नटवर पेपि पेषना पेपै अनहद बेन बजावै ॥
 कहणी रहणी निज तत जाणै, यहु सब अकथ कहाणी ।
 धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसा की बाणी ॥
 बाभ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या ।
 कहै कबीर ते बिरला जागी, धरणि महारस चाख्या ॥

राम गुन बेलड़ी रे, अरवधू गोरखनाथ जांणी ।
 नाति सरूप न छाया जाकै, बिरध करै बिन पांणी ॥ टेक ॥
 बेलड़िया द्वै-अणी पहूती, गगन पहुँती सैली ।
 सहज बेलि जब फूलणि लागी, डाली कूपल मेलही ॥
 मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंब्या, सतगुर बाही बेली ।
 पंच सखी मिलि पवन पर्यया बाड़ी पांणी मेलही ॥
 काटत बेली कूपले मेलही सींचताड़ी कुमिलांणी ।
 कहै कबीर ते बिरला जोगी सहज निरंतर जाणी ॥

राम राइ अविगत बिगति न जानं ।
 कहि किम तोहि रूप ब्रह्मानं ॥ टेक ॥
 प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पाणी ।
 प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे, प्रभू प्रथमे कौन बिनाणी ॥
 प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे, प्रभू प्रथमे रक्त कि रेतं ।
 प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं ॥
 प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्यं ।
 कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्यं ॥

अरवधू सों जोगी गुर मेरा, जो या पद का करै नबेरा ॥ टेक ॥
 तरवर एक पेड़ बिन ठाढा, बिन फूला फल लागा ।
 साखा पत्र कछु नहीं वाकै, अष्ट गगन मुख बागा ॥
 पैर बिन निरति करा बिन बाजै, जिभ्या हीणा गावै ।
 गावणहारै कै रूप न रेखा, सतगुर होइ लखावै ॥
 पंषी का खोज मीन का मारग, कहै कबीर बिचारी ।
 अपरंपार पार परसोतम, वा मूरति की बलिहारी ॥

अब मैं जाणिबौ रे केवल राइ की कहांणी ।
 मंभा जोती राम प्रकासै, गुर गमि बांणी ॥ टेक ॥
 तरवर एक अनंत मूरति, सुरता लेहु पिछांणी ।
 साखा पेड़ फूल फल नाही, ताकी अमृत बांणी ॥
 पुहप वास भवरा एक राता, बारा ले डर धरिया ।
 सोलह मझै पवन भुकोरै, आकासे फल फलिया ॥
 सहज समाधि बिषय थहु सोंच्या, धरती जल हर सोंच्या ।
 कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरवर पेच्या ॥

रे मन बैठि कितै जिनि जासी ,
 हिरदै सरोवर है अविनासी ॥ टेक ॥
 काथा मधे कोटि तीरथ , काथा मधे कासी ।
 काथा मधे कवलापति , काया मधे वैकुण्ठवासी ॥
 उलटि पवन षष्ठचक्र निवासी, तौरथराज गंग तट बासी ।
 गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा, उलटी कूची लागि किवारा ॥
 कहे कवीर भई उजियारा, पंच मारि एक रख्यौ निनारा ।

चितावनी

होली

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबही मोरी बारी ॥ टेक ॥
साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी ।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि कै, जोरत गढ़िया हमारी ।

सखी सब पारत गारी
बिधि गति बाम कछु समझ परत ना, बैरी भई महतारी ।
रोय रोय अँखियाँ मोर पौछत, घरवाँ से देत निकारी ।
भई सब कौ हम भारी
गवन कराय पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी ।
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटै महल अटारी ।

करम गति टारे नाहीं टरै ।
नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घुंघट पट टारी ।
थरथराय तन काँपन लागे, काहू न देख हमारी ।
पिया लै आये गंहारी ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी ।
अब के गौना बहुरि नहिँ औना, करिले भेंट अंकवारी ।
एक बेर मिलि ले प्यारी ।

यही घड़ी यह बेला साधो (टेक)
लाख खरच फिर हाथ न आवै, मानुष जनम सुहेला ।
ना कोई संगी ना कोई साथी, जाता हंस अकेला ॥
क्यों सोया उठि जागु सबेरे, काल मरेदा सेला ।
कहत कबीर गुरु गुन गावो, झूठा है सब मेला ॥

करम गति टारे नाहिँ टरी ।
मुनि बसिस्ट से पंडित ज्ञानी, मोधि के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दसरथ को, बन में विपति परी ॥

कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि , कहँ वह मिरग चरी ।
 सीता को हरि लंग्यो रावन , सोने की लंक जरी ॥
 नीच हाथ हरिचंद बिकाने , बलि पाताल धरी ।
 कोटि गाय नित पुन्न करत नृग , गिरगिट जोनि परी ॥
 पाँडव जिनके आपु सारथी , तिन पर विपति परी ।
 दुर्जोधन को गर्व घटायो , जदु कुल नास करी ॥
 राहु केतु औ भानु चंद्रमा , विधि से जाग परी ।
 कहै कबीर सुनो भाइ साधो , होनी हो के रही ॥

बीती बहुत रही थोरी सी ॥ टेक ॥
 खाट पड़े नर भीखन लागे , निकसि प्रान गयो चोरी सी ।
 भाई बंद कुटुंब अब आये , फूक दियो मानों होरी सी ॥
 कहै कबीर सुनो भई साधो , सिर पर देत हैं भौरी सी

गुरुदेव

चल सतगुरु की हाट , ज्ञान बुधि लाइये ।
 कीजे साहिब से हेत , परम पद पाइये ॥
 सतगुरु सब कुछ दीन्ह , देत कछु ना रख्यो ।
 हमहिं अभागिनि नारि , सुख तजि दुख लह्यो ॥
 गई पिया के महल , पिया संग ना रची ।
 हृदे कपट रख्यो छाय , मान लज्जा भरी ॥
 जहवाँ गैल सिलहली , चढ़ौं गिरि गिरि पड़ौं ।
 उठौं सम्हारिं सम्हारि , चरन आगे धरौं ॥
 जो पिय मिलन की चाह , कौन तेरे लाज हो ।
 अधर मिलो न जाय , भला दिन आज हो ॥
 भला बना संजोग , प्रेम का चोलना ।
 तन मन अरपौ सीस , साहिब हँस बोलना ॥
 जो गुरु रूठे होयं , तो तुरत मनाइये ।
 हुइये दीन अधीन , चूक बकसाइये ॥
 जो गुरु होंय दयाल , दया दिल हेरि हैं ।
 कोटि करम कटि जायँ , पलक छिन फेरि हैं ॥
 कहै कबीर समुभाय , समुझ हिरदे धरो ।
 जुगन जुगन करो राज , ऐसी दुर्मति परिहरो ॥

बिरह

१)

बालम आओ हमारे गेह रे , तुम बिन दुनिया देह रे । टेक ।
 सब कोई कहै तुम्हारी नारी , मो को यह संदेह रे ।
 एक मेक है सेज न सौवै , तब लगि कैसो सनेह रे ॥
 अन्न न भावै नींद न आवै , गृह बन धरै न धीर रे ।
 ज्यों कामी को कामिनि प्यारी , ज्यों प्यासे को नीर रे ॥
 है कोई ऐसा परउपकारी , पिय से कहै सुनाय रे ।
 अब तो बेहाल कबीर भयो है , बिन देखे जिव जाय रे ॥

होली

ये अँखियाँ अलसानी हो , पिय सेज चलो । टेक ।
 खंभ पकरि पतंग अस डोलै , बोलै मधुरी बानी ।
 फुलन सेज बिछाय जो राख्यो , पिया बिना कूहिलानी ॥
 धीरे पाँव धरौ पलँग पर , जागत ननद जिठानी ।
 कहै कबीर सुनो भाई साधो , लोक लाज बिलछानी ॥

प्रीति लगी तुम नाम की , पल बिसरै नाहीं ।
 नजर करो अब मिहर की , मोहि मिलौ गुसाईं ॥
 बिरह सतावै मोहि को , जिव तड़पै मेरा ।
 तुम देखन की चाव है , प्रभु मिला सबेरा ॥
 नैना तरसै दरस को , पल पलक ना लगै ।
 दर्दवंद दीदार का , निसि बासर जागै ॥
 जो अब कें प्रीतम मिलैं , कर निमिख न न्यारा ।
 अब कबीर गुरु पाइया , मिला प्रान पियारा ॥

प्रेम

मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥ टेक ॥
 जो सुख पावो नाम भजन में , सो सुख नाहि अमीरीमें ।
 भला बुरा सब को सुनि लीजै , कर गुजरान गरीबी में ॥
 प्रेम नगर में रहनि हमारी , भलि बनि आई सबूरी में ।
 हाथ में कूड़ी बगल में सोंटा , चारो दिसि जागीरी में ॥
 आखिर यह तन खाक मिलौगा , कहा फिरत मगरूरी में ।
 कहै कबीर सुनो भाई साधो ' साहिव मिलै सबूरी में ॥

घूँघट का पट खोल रे , तो कं पीव मिलेंगे ॥ टेक ॥
 घट घट में वहि साँई रमता , कटुक बचन मत बोल रे (तोको)
 धन जोबन का गर्व न कीजै , भूढा पचरँग चोल रे (तोको)
 सुन्न महल में दियना बारिले , आसा से मत डोल रे (तोको)
 जोग जुगत से रंग महल में , पिय पाये अनमोल रे (तोको)
 कह कबीर आनंद भयो है , बजन अनहद डोल रे (तोको)

हमन है इस्क मस्ताना , हमन को होसियारी क्या ।
 रहैं आजाद या जग से , हमन दुनिया से यारी क्या ॥
 जो बिछुड़े हैं पियारे से , भटकते दर बदर फिरते ।
 हमारा यार है हम में , हमन को इंतजारी क्या ॥
 खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है ।
 हमन गुरु नाम साचा है , हमन दुनिया से यारी क्या ।
 न पल बिछुड़े पिया हमसे , न हम बिछुड़ें पियारे से ।
 उन्हीं से नेह लागी है , हमन को बेकरारी क्या ॥
 कबोरा इस्क का माता , दुई को दूर कर दिल से ।
 जो चलना राह नाजुक है , हमन सिर बोझ भारी क्या ॥

नानक

गुरु नानक का जन्म लाहौर जिले के तलवंडी नामक गाँव में हुआ था। इनकी जन्म तिथि बैशाख सुदी तृतीया सं० १५२६ मानी गई है। बड़े प्रातःकाल सूर्योदय से कुछ पहले शुभ ब्राह्म मुहूर्त में ही इनका जन्म हुआ था, किंतु सुविधा के लिये इनके अनुयायी सिख लोग इनका जन्मोत्सव कार्तिका पूर्णमासी को ही मानते हैं। इनके पिता का नाम कालू था और यह अपने यहाँ के सूबेदार बुलार पठान के यहाँ कारिंदे का काम करते थे। यह लोग जाति के वेदी खत्री थे। इनकी माता का नाम तृप्ता था।

शैशव काल से ही नानक की प्रवृत्ति पुण्य कार्यों और साधु सेवा की ओर थी। विचारशीलता और भावुकता का परिचय भी यह बाल्यकाल से ही देने लगे थे। इनका विचारंभ सात वर्ष की अवस्था में हुआ था। पहले इनको उदू और फारसी का ही शिक्षा मिली थी। १९ वर्ष की अवस्था में (सं० १५४५) में इनका विवाह गुरदासपुर की सुलक्षणी नाम की कन्या से हो गया और इससे इनके श्रीचंद और लक्ष्मी चंद नाम के दो पुत्र भी हुए। विवाह के बाद इन की शिक्षा भी एक प्रकार से समाप्त हो गई और इनके पिता को इन्हें किसी काम काज में लगा देने की चिंता हुई। पर इनकी चित्त-वृत्ति आरंभ से ही ऐहलौकिक कार्यों से उदासोन थी। जीविकापार्जन संबंधी किसी काम में इन्होंने कभी दिलचस्पी नहीं ली। आत्मीयों के अधिक दबाव डालने पर इन्होंने कुछ दिन के लिये उस प्रदेश के तत्कालीन शासक दौलत खाँ के यहाँ मालखाने की अफसरी स्वीकार कर ली थी। उस समय की दृष्टि से यह काफी महत्त्वपूर्ण पद था पर वास्तव में एक दिन भी इस काम में इनका जी न लगा और अंत में विरक्त हो कर इन्होंने इस काम को छोड़ ही दिया और फिर कुटुम्बियों तथा आत्मीय स्वजनों के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर भी इन्होंने किसी सांसारिक व्यवसाय में हाथ नहीं डाला। आध्यात्मिक विषयों की ओर इनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति तो थी ही, क्रमशः वह उत्तरोत्तर विकसित ही होती गई यहाँ तक कि वह संसार के महान् धर्मयाजकों में इनका एक स्थान बना कर के ही शांत हुई। सिख संप्रदाय के प्रवर्तक होने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

इनके उर्बर मस्तिष्क तथा धर्मबुद्धि के विकास में इनकी सुदूरव्यापिनी तथा बहुसंख्यक यात्राएँ बहुत कुछ सहायक हुईं। इनका प्रारंभ यों हुआ। सुयोग या दैवयोग से इनको एक अपनी ही सी मनावृत्ति वाला अनुचर भी मिल गया था। इसका नाम मदन था। श्रुत्य और स्वामी दोनों ही ईशगुणगान और संगीत में बड़ी अभिरुचि रखते थे। भजनानंदी वीतराग साधुओं की गोष्ठी में बैठ हरिभजन में

कालयापन की अपेक्षा इन्हें कोई काम न भाता था। अंत में जीविका संबंधी कार्य तथा पारिवारिक संसर्ग से आध्यात्मिक अनुसंधान में विशेष विघ्न पड़ता देख नानक जी विवाह के ठीक ग्यारह वर्ष उपरांत (सं० ५५६) ज्ञान के अन्वेषण के लिये चल पड़े। इस यात्रा में इन्होंने आगरे से लेकर बिहार, बंगाल आदि देशों में घूमते हुए वर्षा तक के सब पूर्वी प्रदेशों के सैर की। कहा जाता है इस यात्रा में इन्हें ११ वर्ष लगे। इसी यात्रा में उनका कबीर से साक्षात्कार हुआ होगा। कबीर की अवस्था उस समय साठ वर्ष से ऊपर रही होगी। इनकी दूसरी यात्रा का आरंभ सं० १५६७ में होता है। इस बार वह दक्षिण की ओर गए और लंका तक के साधुओं का सत्संग किया। इनकी तीसरी और अंतिम यात्रा सब से बड़ी हुई। इसमें वे पश्चिमोत्तर प्रदेशों में भ्रमण करते हुए बलख, बुखारा, बगदाद, रूम और मक्के मदीने तक पहुँचे। इनकी क़ाबा यात्रा के संबंध में एक रोचक घटना प्रसिद्ध है। क़ाबा के उपासनागृह में यह क़ाबा की मूर्ति को ओर ही पैर करके रखा हुआ था। पास में कुछ मुसलमान भी पड़े हुए थे। उनमें से एक ने इन्हें पैर से ठुकराते हुए डपट कर पूछा कि 'तू क़ाबे शरीफ की ओर पैर करके क्यों पड़ा हुआ है।' इस पर इन्होंने हँस कर कहा 'जिधर खुदा न हो उधर मेरा पैर फेरे' इस पर उसने घसीट कर इनका पाँव दूसरी ओर कर दिया। इसी समय एक विचित्र घटना हुई। सारा मंदिर घूम गया और क़ाबे की मूर्ति फिर इनके पैरों के सामने दिखाई पड़ने लगी। सब लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। बारी बारी उन लोगों ने सब दिशाओं की ओर इन का पाँव घुमाया, पर इनके पाँव के साथ साथ क़ाबा भी घूमता गया। इस पर लोगों ने इन्हें कोई दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष समझा और इनका बड़ा आदर सम्मान किया। अस्तु

इसी यात्रा में इन्होंने नेपाल, भूटान, कश्मीर आदि प्रदेशों की प्रदक्षिणा भी की थी। इनकी यह अंतिम यात्रा सं० १५७९ में समाप्त हुई। इस के बाद वह कर्तारपुर में आकर रहने और धर्मोपदेश करने लगे। और वहीं सं० १५९५ में इनका स्वर्गवास हुआ। उस समय इन की अवस्था ५० वर्ष के लगभग थी। कबीर को मरे इस समय २० वर्ष हो चुके थे।

इनके आध्यात्मिक तथा सामाजिक विचार कबीर से बहुत मिलते जुलते हैं। अंतर यदि किसी बात में है तो केवल इतना ही कि नानक के समय से एकेश्वरवाद, तथा निराकारोपासना संबंधी सिद्धांत व्यावहारिक दृष्टि से शिथिल हो चला। कबीर के अनुयायियों में ही मूर्तिपूजा और कर्मकांड के ढकांसलों का प्रवेश शनैः शनैः घुसने लगा।

नानक के पदों का संग्रह सिखों के छठवें गुरु अर्जुन ने सं० १६६१ में तैयार करवाया। यही 'आदिग्रंथ' अथवा 'ग्रंथ साहब' के नाम से प्रसिद्ध है। सिख लोग इसी ग्रंथ को ही ईश्वर मान कर बड़े समारोह से पूजते हैं।

नानक जी का सब से सुन्दर भजन 'जपजी' है जो कि प्रस्तुत संग्रह में दिया गया है। इनके अन्य प्राप्त ग्रंथ 'सुखमनी', 'अष्टांग जोग', और नानक जी की 'साखी' है। 'प्राण संगती' नाम से स्थानीय बेलवेडियर प्रेस ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिससे प्रस्तुत संग्रह में पर्याप्त सहायता मिली है।

नानक की कविता के संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि इनकी शिक्षा बहुत साधारण थी, और जो कुछ थी वह भी फारसी और पंजाबी (गुरुमुखी) की। ऐसी अवस्था में इनसे प्रथम श्रेणी की हिंदी कविता की आशा करना व्यर्थ है। केवल काव्यकला की दृष्टि से संत कवि शायद हिंदी साहित्य के अन्य सभी शाखाओं के कवियों से पिछड़े हुए हैं। यहां पर यह स्मरण रहे कि रामशाखा, कृष्णशाखा, तथा जायसी आदि प्रेमगाथाओं के कवियों को मैंने कबीर आदि संत कवियों से अलग रक्खा है। यों तो ये सभी एक प्रकार से भक्त या संत कवि कहे जा सकते हैं। अस्तु, नानक दादू, भीखा, आदि की कविता केवल कला की दृष्टि से उच्च कोटि की नहीं हुईं अवश्य, पर कोई भी हिंदी काव्य का विशद संग्रह इनकी कविता के बिना केवल इसलिये अपूर्ण समझा जायगा, कि जैसी भी हो इनकी कविता की विशेषता है इनका स्वाभाविक और सहज संदर रूप से ईश्वर और समाज संबंधी एक नवीन संदेश। यह बात और किसी स्कूल में नहीं पाई जाती। नानक जी की कविता में भी, पंजाबी और फारसीपने का आधिक्य होते हुए भी यह विशेषता वर्तमान है। एक बात जो इनके पदों में सबसे निराला है, वह है संगीत का प्राचुर्य। यह पहुँचे हुए संगीतज्ञ थे, और ऐसी अवस्था में इनकी पंक्तियों में संगीत की मात्रा का अधिकार स्वाभाविक ही है।



गुरु नानक

नाम

साचा नामु अराधिया, जम लै भन्ना जाहि ।
नानक करनी सार है, गुरुमुख घड़िया राहि ॥
क्या लीता धनवंतिया, क्या छोंड़्या निर्धनियाँ ।
नानक सच्चे नाम बिनु, अगो दोवें सक्खणियाँ ॥
इक सूही दूजी सोहणी, तीजी सो भावन्ती नारि ।
सुइने रुपे पञ्चरी, नानक बिनु नावैं कुड़ियार ॥
अट्टे पहर मचंदड़ा, कच्चै कूड़े कम ।
नाम अराधन ना मिले, नानक हीन करम ॥
सहस स्याणप नाम बिनु, करि देखै सभि बाद ।
सोई स्याणप नानका, हिरदे जिनके याद ॥
भूषण पहिरे भोजन खाये फूल बहे नर अंधु ।
नानक नामु न चेतनी, लागि रहे दर्गधु ॥

शूर

सुरा एह न आखियन, जो लड़नि दलों में जाय ।
सुरे सोई नानका, जो मनगु हुकम रजाय ॥
हिरदे जिनके हरि बसै, सो जन कहियहि सूर ।
कही न जाई नानका, पूरि रहत्या भरपूर ॥

अहंकार

कूड़े करहि तकम्बरी, हिन्दू मूसलमान ।
लहन सजाई नानका, बिनु नावैं सुलतानु ॥
मन को दुबिधा ना मिटै, मुक्ति कहां ते होय ।
कउड़ी बदले नानका, जन्म चल्या नर खोइ ॥

चितावनी

कलियां थी धउले भये, धउलियों भये सुपैदु ।
नानक मता मतों दिया, उज्जरि गइया खेडु ॥
जागो रे जिन जागना, अब जागनि की बारि ।
फेरि कि जागो नानका, जब सोवउ पाँउ पसारि ॥
जित मुह मिलनि मुमारखों, लक्खों मिलै असीस ।
ते मुँह फेर तपाइ यहि, तन मन सहे कसीस ॥

इक दन्वहि इक साङ्गियहि, इक दिचनि ढंड लुड़ाइ ।
गई मुमारख नानका, हे हे पहुती आय ॥
मित्राँ दोस्ताँ माल धन, छडि चले अति भाइ ।
संगि न कोई नानका, उह हंस इकेला जाइ ॥

भक्ति

मैं धरि तेरी साहिबा, और नहीं परवाहि ।
जगत पधारू पंध सिर, गिरावें लेंदा साहि ॥
जेही पिरिति लगदिया, तोड़ निबाहू होइ ।
नानक दरगह जाँदियाँ, ठक न सकै कोइ ॥
सै सै बारी कट्टियै, जे सीस कीचै कुरबान ।
नानक कीमति ना पवै, परिया दूर मकान ॥

उपदेश

जित बेले अमृत बसे, जीयाँ होवे दाति ।
तित बेले तू उठि बड्ड, त्रिह पहरे पिछली राति ॥
खत्री ब्राह्मण शूद्र बैस, जाती पूछि न देई दाति ।
नानक भागे पाइयै, त्रिह पहरे पिछली राति ॥
सबदन जानउ गुरु का, पार परउ कित बाट ।
ते नर डूबे नानका, जिनका बड़ बड़ ठाट ॥
धर अंबर बिच बेलड़ी, तँह लाल सुगंधा बूल ।
भक्खर इक नाँ आयो, नानक नहीं कबूल ॥

मिश्रित

रँडियाँ एह न आखियन, जिनके चलन भतार ।
रँडियाँ सेई नानका, जिन बिसरिया करतार ॥
देखि अजाड़ों जडियाँ, पसंगु मुहुरगु किराड़ ।
तत्ते तावड़ ताइयहि, मुहि मिलनीयाँ अँगियार ॥
देखि कै सूड़ी भोपड़ी, चोरी करदे चोर ।
बसि पये धर्मराय दै, कडिड लये सभ खोर ॥
बरतु नेमु तीरथु भ्रमें, बहुतेरा बोलणि कूड़ ।
अंतरि तीरथु नानका, सोधन नाही मूड़ ॥
लै फुरमान दिवान दा, स्वसि प्यादे खाहिं ।
बाही बद्धे मारियहि, मारें दे कुरलाहिं ॥
पाँवे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्ला कोर ।
(नानक) तिनाँ पास न भिठोयै, जो सबदे दे चोर ॥

पद

साधो रचना राम बनाई ।

इक बिनसै इक इस्थि मानै, अचरज लख्यौ न जाई ।
काम क्रोध मोह बस प्रानी, हरि मूरति बिसराई ॥
भूठा तन साचा करि मान्यो, ज्यों सुपना रैनाई ।
जो दीसै सो सकल बिनासै, ज्यों बादर की छाँई ॥
जन नानक जग जानौ मिथ्या, रहौ राम सरनाई ।

यह मन नेक न कह्यो करै ।

सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुरमति तैं न टरै ।
मद माया बस भयो बावरो, हरिजस नहिं उचरै ॥
करि परपंच जगत के डहकै, अपनो उदर भरै ।
स्वान पूँछ ज्यों होय न सूधों, कछौ न कान धरै ॥
कहु नानक भुजु राम नाम नित, जा तैं काज सरै ।

मन की मनहीं मॉहि रही ।

ना हरि भजे न तीरथ सेवे, चोटी काल गही ।
दारा मीत पूत रथ संपति, धन जन पूर्न मही ॥
और सकल मिथ्या यह जानो, भजन राम सही ।
फिरत फिरत बहुते जुग हारयो, मानस देह लही ॥
नानक कहत मिलन की बिरिया, सुमिरत कहा नहीं ।

रे मन कौन गति होइ है तेरी ।

एहि जग में राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान ।
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी ॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह ।
दारा सुत भयो दीन पगहुं परी बेरी ॥
नानक जन कह पुकार, सुपने ज्यों जग पसार ।
सिमरत नहिं क्यों मुरार, माया जा की चेरी ॥

माई मैं मन की मान न त्यागो ।

माया के मद जन्म सिरायो, राम भजन नहिं लाग्यो ।
जम को दंड परयो सिर ऊपर, तब सोबत तैं जाग्यो ॥
कहा होत अब के पछिताये, छूटत नाहिन भाग्यो ।
यह चिंता उपजी घट में जब, गुरु चरनन अनुराग्यो ॥
सुफल जनम नानक तब हुआ, जो प्रभु जस में पाग्यो ।

साधो मन का मान तियागो ।

काम क्रोध संगत दुर्जन की, ता तैं अहि निसि भागो ।
सुख दुख दोनों सम कर जानै, और मान अपमाना ॥
हर्ष सोक तैं रहै अतीता, तिन जग तत्व पिछाना ।
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागै, खोजै पद निरबाना ॥
जन नानक यह खेल कठिन है, किनहुं गुरुमुख जाना ।

जा मैं भजन राम को नाहीं ।

तेहि नर जनम अकारथ खोयो, यह राखो मन माहीं ।
तीरथ करै बर्त पुनि राखै, नहिं मनुवाँ बस जाको ॥
निफल धर्म ताहि तुम मानो, साच कहत मैं याको ।
जैसे पाहन जल में राख्यो, भेदै नहिं तेहि पानी ॥
तैसे ही तुम ताहि पिछानो, भगति हीन जो प्राणी ।
कलि में मुक्ति नाम तैं पावत, गुरु यह भेद बतावै ॥
कहु नानक सोई नर गरुवा, जो प्रब के गुन गावै ।

साध महिमा

जो नर दुख में दुख नहिं मानै ॥

सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै ।
नहिं निंदा नहिं अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना ॥
हर्ष सोक तैं रहै नियारो, नाहिं मान अपमाना ।
आसा मनसा सकल त्यागि कै, जग तैं रहै निरासा ॥
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन, तेहि घट ब्रह्म निवासा ।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं, तिन यह जुगति पिछानी ॥
नानक लीन भयो गोविंद सो, उयो पानी सँग पानी ।

या जग मीत न देख्यो कोई ।

सकल जगत अपने सुख लाग्यो, दुख में संग न होई ।
 दारा मीत पूत संबंधी, सगरे धन सों लागे ॥
 जबहीं निरधन देख्यो नर को, सग छाड़ि सब भागे ।
 कहा कहूँ या मन बौरे को, इन सों नेह लगाया ॥
 दीनानाथ सकल भयभंजन, जस ताको बिसराया ॥
 स्वान पूँछ ज्यों भयो न सुधो बहुत जतन मैं कीन्हो ।
 नानक लाज विरद की राखो, नाम तिहारो लीन्हो ॥

मुरसिद मेरा महरमी, जिन मरम बताया ।
 दिल अंदर दीदार है, खोजा तिन पाया ॥
 तसवी एक अजूब हैं, जा में हरदम दाना ।
 कुँज किनारे बैठि के, फेरा तिन्ह जाना ॥
 क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपनो जाया ।
 सब को लोहू एक है, साहिब फरमाया ॥
 पीर पैगंबर औलिया, सब मरने आया ।
 नाहक जीव न मारिये, पोषन को काया ॥
 हिरिस हिये हवान है, बसि करिले भाई ।
 दाद इलाही नानका, जिसे देवे खुदाई ॥

हरि जू राख लेहु पत मेरो ।

काल को त्रास भयो उर अंतर, सरन गह्यो प्रब तेरो ।
 भय करने को बिसरत नाहीं, तेहिं चिंता तन जारो ॥
 किये उपाय मुक्ति के कारन, दह दिसि को उठि धाया ।
 घट ही भीतर बसै निरंतर, ता को मर्म न पाया ॥
 नाहीं गुन नाहीं कछु जप तप, कौन करम अब कीजै ।
 नानक हार पर्यौ सरनागत, अभय दान प्रब दीजै ॥

काहे रे बन खोजन जाई ।

सर्व निवासी सदा अलोपा, तोही संग समाई ।
 पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर माहिं जस छाई ॥
 तैसे ही हरि बसै निरंतर, घट ही खोजो माई ।
 बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ॥
 जन नानक बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई ।

अब मैं कौन उपाय करूँ ।

जेहि बिधि मन को संसय छूटै, भव निधि पार परूँ ।
जनम पाय कछु भलो न कीन्हो, ता तैं अधिक डरूँ ॥
गुरु मत सुन कछु शान न उपज्यो, पसुवत उदर भरूँ ।
कहु नानक प्रभु बिरद पिछानो, तब हौं पतित तरूँ ॥

प्रब मेरे प्रीतम प्रान पियारे ।

प्रेम भक्ति निज नाम दीजिये, द्याल अनुग्रह धारे ।
सुमिरौं चरन तिहारे प्रीतम, रिदे तिहारी आसा ॥
संत जनों पै करौं बेनती, मन दरसन को प्यासा ।
बिछुरत मरन जीवन हरि मिलते, जन को दरसन दीजै ॥
नाम अधार जीवन धन नानक, प्रब मेरे किरपा कीजै ।

प्रब जी यही मनोरथ मेरा ।

कृपा निधान द्याल मोहिँ दीजै, करि संतन का चेरा ।
प्रात काल लागो जन चरनी, निसि बासर दरसन पावो ॥
तन मन अरप करो जन सेवा, रसना हरि गुन गावो ॥
साँस साँस सुमिरौं प्रभु अपना, संत संग नित रहिये ॥
एक अधार नाम धन मेरा, आनंद नानक यह लहिये ।

भाई मैं केहि बिधि लखो गुसाईं ।

महा मोह अज्ञान तिमिर में, मन रहियो उरभाई ।
सकल जनम भ्रम ही भ्रम खोयो, नहिँ इस्थिर मति पाई ॥
बिषयासक्त रह्यो निसि बासर, नहिँ छूटी अधमाई ।
साधु संग कबहुँ नहिँ कीन्हा, नहिँ कीरति प्रब गाई ॥
जन नानक में नाहीं कोउ गुन, राखि लेहु सरनाई ।

अब हम चली ठाकुर पहिँ हार ।

जब हम सरन प्रभू की आईं, राख प्रभु भावे मार ।
लोगन की चतुराई उपमा, ते बैसंदर जार ॥
कोई भला कहु भावे बुरा कहु, हम तन दियो है डार ।
जो आवत सरन ठाकुर प्रभु तुम्हरी, तिस राखो किरपाधार ॥
जन नानक सरन तुम्हारी हरिजी, राखो लाज मुरार ।

राम सुमिर राम सुमिर एही तेरो काज है ।

माया को संग त्याग, हरि जू की सरन लाग ।
जगत सुख मान मिथ्या, भूठो सब साज है ॥

सुपने ज्यों धन पिछान, काहे पर करत मान ।
 बारू की भीत तैसे, बसुधा को राज है ॥
 नानक जन कहत बात, बिनसि जैहै तेरो गात ।
 छिन छिन करि गयो काल्ह, तैसे जात आज है ॥

चेतना है तो चेत ले निसि दिन में प्रानी ।
 छिन छिन अवधि बिहात है, फूटै घट ज्यों पानी ।
 हरिं गुन काहे न गावही, मूरख अज्ञाना ॥
 झूठे लालच लागि के, नहिँ मर्म पिछाना ।
 अजहूँ कछु बिगारयो नहीँ, जो प्रभु गुन गावै ॥
 कहु नानक तेहिँ भजन तैं, निरभय पद पावै ।

सब कछु जीवत को ब्यौहार ।
 मात पिता भाई सुत बंधव, अरु पुनि गृह की नार ।
 तन तैं प्रान होत जब न्यारे, टेरेत प्रेत पुकार ॥
 आध घरी कोऊ नहिँ राखै घर तैं देत निकार ।
 मृग तृस्ना ज्यों जग स्पना यह देखो हृदे बिचार ॥
 कहु नानक भजु राम नाम नित, जातैं होत उधार ।

इस दम दा मैनों की बे भरोसा ।
 आया आया न आया न आया ॥
 सोच बिचार करै मत मन में ।
 जिसने हूँदा उसे न पाया ॥
 या संसार रेन दा सुपना ।
 कहिँ दीखा कहिँ नाहिँ दिखाया ॥
 नानक भक्तन के पद परसे ।
 निस दिन राम चरन चित लाया ॥

साधो यह तन मिथ्या जानो ।
 या भीतर जो राम बसत हैं, साचो ताहि पिछानो ।
 यह जग है संपति सुपने की, देख कहा पेड़ानो ॥
 संग तिहारे कछु न चालै, ताहि कहा लपटानो ।
 अस्तुति निंदा झोऊ परिहरि, हरि कीरति उर आनो ॥
 जन नानक सबही में पूरन, एक पुरुष भगवानो ।

प्रेम

प्रभु जी तू मेरे प्रान अधारे ।

नमस्कार बँडौत बंदना , अनिक बार जाऊँ बलिहारे ।
ऊठत बैठत सोवत जागत , इहु मन तुम्हे चितारे ॥
सुख दूख इस मन की बिरथा , तुम्ह ही आगे सारे ।
तू मेरी ओट बल बुधि धन तुमही , तुमहिँ मेरे परिवारे ॥
जो तुम करो सोई भल हमरे , पेख नानक सुख चरना रे ।

विसरत नाहिँ मन तें हरी ।

अब यह प्रीति महा प्रबल भई, आन बिषय जरी ।
बूँद कहाँ तियागि चातक, मीन रहत न धरी ॥
गुन गोपाल उचारत रसना, टँव यह परी ।
महा नाद कुरंग मोह्यो, बेध तीच्छन सरी ॥
प्रभु चरन कमल रसाल नानक, गाँठ बाँध परी ।

हौँ कुरबाने जाउँ पियारे, हौँ कुरबाने जाउँ ।

हौँ कुरबाने जाउँ तिन्हाँ दे, लैन जो तेरा नाउँ ।
लैन जो तेरा नाउँ तिन्हाँ दे, हौँ सद कुरबाने जाउँ ॥
काया रंगन जे धिये प्यारे, पाइये नाउँ मजीठ ।
रंगन वाला जे रँगे साहिब, ऐसा रंग न डीठ ॥
जिनके चोलड़े रतड़े प्यारे, कत तिन्हाँ के पास ।
धूड़ तिन्हाँ को जे मिले जी को, नानक की अरदास ॥

गोबिंद जी तू मेरे प्रान अधार ।

साजन मीत सहाई तुमही, तू मेरो परिवार ।
कर बिसाल धारयो मेरे माये, साधु संग गुन गाये ॥
तुम्हरी कृपा तें सब फल पाये, रसिक नाम धियाये ।
अबिचल नीव धराई सतगुरु, कबहुँ डोलत नाहीं ॥
गुर नानक जब भये दयाला, सर्व सुखों निधि पाहीं ।

दाहू

दादू का जन्म अहमदाबाद में सं० १६०१ में फागुन सुदी अष्टमी के दिन हुआ था। इनके जन्म स्थान और वंश आदि के संबंध में बड़ा मतभेद है। इनके जीवन संबंधी इन प्रश्नों पर स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी और पं० चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी ने अच्छा अनुसंधान किया है। द्विवेदी जी ने दादू का संपादन नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से किया है, और त्रिपाठी जी ने भी दादू की रचनाओं का एक बड़ा प्रामाणिक संस्करण निकाला है। विल्सन नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी दादू के कुछ चुने हुए पदों का अनुवाद 'साम्स आफ दादू' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया है। प्रोफेसर विल्सन इनका रचना काल ईसा की सोलहवीं शताब्दी में मानते हैं। उन्हीं के अनुसार ये स्वामी रामानंद की शिष्य-परंपरा में कबीर की छठवीं पीढ़ी में थे और इनका जन्म गुजरात के एक जुलाहे के वंश में हुआ था। वेल्लेडियर प्रेस के संस्करण के अनुसार इनका जन्म एक धुनियाँ के वंश में कबीर की मृत्यु के २६ वर्ष बाद सं० १६०१ में हुआ था। परंतु पं० चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी इन्हें ब्राह्मण कुलोत्पन्न मानते हैं। उन्हीं के अनुसार इनका जन्म फाल्गुन शुक्ल अष्टमी सं० १६०१ में माना जाता है। त्रिपाठी जी ने अपना मत बड़ी संतोषजनक रीति से अनुसंधान करने के बाद स्थिर किया और इसलिये जब तक इनके निष्कर्षों के विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण न मिले तब तक इन्हें ही उत्तर पक्ष मानना पड़ेगा। इनके पिता का नाम लोदी राम प्रायः सभी अन्वेषक मानते हैं।

दादू जी के जीवन वृत्तांत के संबंध में एक सबसे अनोखी बात यह है कि इनके जीवन के प्रथम ३० वर्षों का इतिवृत्त अप्राप्य सा है। इनके जन्म के संबंध में भी कबीर ही की भाँति एक अनोखी कथा प्रसिद्ध है। दादूपंथियों के अनुसार यह साद्यः जात शिशु के रूप में साबरमती नदी में बहते हुए लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण द्वारा पाए गए थे। यद्यपि दादूपंथी और उन्हीं के आधार पर पं० चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी की भी यही धारणा है कि ये ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे, पर इनके अतिरिक्त अधिकतर समालोचकों की धारणा यही है कि धुनियाँ, मोची, या जुलाहा या ऐसे ही किसी साधारण कुल में इनकी उत्पत्ति हुई थी। जो हो, निश्चय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। इनकी कविताओं से तो यही जान पड़ता है कि ये ब्राह्मण न रहे होंगे। जिस प्रकार कबीर ही की भाँति इन्होंने ऊँच नीच के भेद भाव के विरुद्ध उपदेश दिया है उस से तो यही अनुमान हो सकता है कि यह जात्याभिमानी ब्राह्मण तो शायद ही रहे हों। यद्यपि कबीर की भाँति इनकी कविता

में वेद, पुराण, वर्णाश्रमधर्म तथा कर्मकांड आदि की कटु और उहड़ आलोचना नहीं मिलती तो भी कबीर के बताए हुए मार्ग से ही ये चले हैं और इनके उपदेशों में कबीर के सिद्धांतों का विरोध तो कहीं भी नहीं मिलता। इन सब बातों से इसी अनुमान की पुष्टि होती है कि इनकी उत्पत्ति अधिकतर संत कवियों की भाँति किसी अत्यंत साधारण कुल में ही हुई होगी।

ऊपर यह सूचित किया जा चुका है कि इनके जीवन के प्रथम ३० वर्षों का वृत्तांत प्रायः अज्ञात सा है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि १८ वर्ष की अवस्था तक यह अपने जन्म स्थान अहमदाबाद में ही रहे और फिर अगले ८ साल इन्होंने मध्यप्रांत के भिन्न प्रदेशों में घूमने में बिताया। लगभग २८ वर्ष की अवस्था में यह मारवाड़ प्रांत के साँभर (साँभर भील जहाँ का नमक प्रसिद्ध है) नामक स्थान पर पहुँचे (लगभग स० १६३०) और फिर वहाँ से (स० १६३६ से) जयपुर की राजधानी आमेर में स्थायी रूप से रहने लगे। यहाँ वह लगभग १५ वर्ष तक रहे। कहा जाता है स० १६४२ में बड़े आग्रह से बुलाए जाने पर अकबर की तत्कालीन राजधानी फतेहपुर सीकरी भी गए थे और वहाँ बादशाह से इनका साक्षात्कार हुआ था। स० १६५० में ये आमेर छोड़कर जयपुर में रहने लगे और अंत में लगभग ९ वर्ष वहाँ रह कर नराणे की एक पहाड़ी गुफा में रहने लगे और कुछ ही दिनों में वहाँ जेठ बदी अष्टमी स० १६६० में परलोक सिधा। दादू-पंथियों की प्रधान गद्दी अब भी नराणे में ही है। वहाँ इनका एक स्मृति मंदिर भी है जिसमें दादूपंथी साधु निवास करते हैं।

इनका गुरु कौन था यह अभी तक निश्चय नहीं हो सका है। दादूपंथियों में इस संबंध में यह कथा प्रसिद्ध है कि स्वयं कृष्ण भगवान ने वृद्ध का रूप धारण कर इन्हें दीक्षा दी थी और इसी कारण इनके गुरु का नाम बृद्धानंद या 'बृदण' भी कहा जाता है। इस संबंध में इनका यह दोहा भी ध्यान में रखने योग्य है।

दादू गैब माँहि गुरुदेव मिला, पाया हम परसाद ।

मस्तक मेरे कर धरया, दाया अगम अगाध ॥

पं० सुधाकर द्विवेदी कबीर के पुत्र कमाल को दादू का गुरु मानते हैं, पर अपनी इस धारणा के पक्ष में वह कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं दे सके हैं। पर जो कोई भी इनका दीक्षा गुरु रहा हो, इतना तो इनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने अपना आदर्श कबीर को ही बनाया होगा। कबीर का नाम बार बार इनकी रचनाओं में मिलता है और वह भी इस रूप में नहीं जिसमें कबीर ने शेखतकी (सुनहु तकी तुम सेख) का नाम लिया है। इनके दोहों, साखियों और पदों में कबीर के सदेश, उपदेश या विचार दोहराए हुए से मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति तो कबीर की मृत्यु के २५ वर्ष के बाद हुई थी और इनके रचना काल का

आरंभ भी कबीर की मृत्यु के कम से कम ५० वर्ष बाद ही आरंभ हुआ होगा। क्योंकि सं० १६३० में साँभर में स्थापित होने के बाद ही पंथ प्रवर्तक के रूप में यह प्रसिद्ध हुए। परंतु ५० या ६० वर्ष बाद भी कबीर की ज्ञानज्योति की चका-चौंध काफी रह गई होगी और यह कोई आश्चर्य नहीं कि किसी दिन अध्यात्मिक तंद्रावस्था में इन्होंने अपने मानसिक नेत्रों के सामने कबीर का ही अंतिम दिनों का (१२० वर्ष की अवस्था वाले) विघृष्टान रूप प्रत्यक्ष पाया हो और उस से मानसिक दीक्षा ग्रहण कर ली हो। क्योंकि यह तो कथा प्रसिद्ध है कि इनके गुरु कोई परम वृद्ध महापुरुष थे, वह और कोई नहीं इनके मानस पटल में वृद्ध कबीर की ही छाया रही होगी। वृद्ध कबीर इसलिये कि मृत्यु व्यक्ति के अंतिम दिनों की ही स्मृति बाद के लोगों के मन में स्पष्ट रह जाती है। भगवान् कृष्ण का वृद्धरूप में दादू को दीक्षा देने आने की कथा बेतुकी या असंगत विशेष कर इसलिये जान पड़ती है कि महाभारत से लेकर आज तक कृष्ण संबंधी जितने कथानक ज्ञात हैं उनमें कृष्ण के वृद्ध या 'बूढ़ण' रूप का चित्र कहीं नहीं खींचा गया है। और फिर महाकवि सूर या मीरा को भाँति कृष्ण इनके आराध्य देव भी नहीं थे जैसा कि इनकी रचनाओं से स्पष्ट है।

इनकी कविता की भाषा अवश्य कबीर की भाषा से बहुत कुछ भिन्न थी। पूरबी भाषा तो इन की रचना में कहीं भी नहीं मिलती। प्राधान्य मारवाड़ी और कहीं कहीं गुजराती मिश्रित पश्चिमी हिंदी का है। कहीं कहीं पंजाबीपन भी देखने में आ जाता है पर कम। हाँ गुजराती और मारवाड़ी का मुँह करीब करीब बराबर है। कारण स्पष्ट है। इनके जीवन का उत्तरार्द्ध मारवाड़ में बीता और यही इनका रचना काल रहा। बाल्य और कैशोर काल में गुजरात में रहना भी इनकी रचना पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता था। इनके कुछ पद ठेठ राजस्थानी और गुजराती में भी हैं। दो चार पद पंजाबी में भी मिलते हैं। इनकी रचना में कबीर की वह जटिलता या रहस्यपूर्णता नहीं है जिनके कारण कुछ लोग इन्हें (कबीर को) प्रथम रहस्यवादी कवि कहते हैं। वह चमत्कार भी नहीं है। पर माधुर्य अवश्य कबीर से अधिक है। शिक्षा तो इनकी कुछ विशेष नहीं जान पड़ती। अन्य संत कवियों की भाँति भाषादोष से यह भी बरी नहीं है। इस समय की सामान्य काव्यभाषा में खड़ी बोली की क्रियायों का प्रयोग यह भी खूब करते थे। विषय भी इनके वही हैं जिन्हें प्रायः सभी संतकवियों ने एकमत होकर अपनाया है और जिन्हें अन्य किसी शाखा के कवियों हुआ तक नहीं, जैसे—ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जातिपाँति, ऊँचनीच के भेदभाव का निराकरण, हिंदू मुसलमानों का अभेद, संसार की अनित्यता, आत्मबोध, चेतावनी, सूरमा इत्यादि।

दादू

गुरुदेव

- (दादू) गैब मौंहि गुरुदेव मिल्या , पाया हम परसाद ।
मस्तक मेरे कर धरथा , देख्या अगम अगाध ॥
- (दादू) सतगुरु सू सहजै मिल्या , लीया कंठ लगाइ ।
दाया भई दयाल की , तब दीपक दिया जगाइ ॥
सतगुरु काढे केस गहि , ह्वत इहि संसार ।
दादू नाव चढ़ाइ करि , कीये पैली पार ॥
दादू उस गुरुदेव की , मैं बलिहारी जाउँ ।
जेंह आसन अमर अलेख था , ले राखे उस ठाउँ ॥
- (दादू) सतगुरु मारे सबद सो , निरखि निरखि निज ठौर ।
राम अकेला रहि गया , चीत न आवै और ॥
सबद दूध घृत राम रस , कोइ साध बिलोवण हार ।
दादू अमृत काठि ले , गुरुमुखि गइ बिचार ॥
देवै किरका दरद का , टूटा जोड़ै तार ।
दादू साधै सुरति के , सो गुरु पीर हमार ॥
सतगुरु मिलै तो पाइये , भक्ति मुक्ति भंडार ।
दादू सहजै देखिये , साहिब का दीदार ॥
- (दादू) सतगुरु माला मन दिया , पवन सुरति सूँ पोइ ।
बिन हाथों निस दिन जपै , परम जाप यूँ होइ ॥
- (दादू) यहु प्रसीत यहु देहुरा , सतगुरु दिया दिखाइ ।
भीतरि सेवा बंदगी , बाहरि काहे जाइ ॥
मन ताजी चेतन चढ़े , ल्यौ की करै लगान ।
सबद गुरु का ताजना , कोइ पहुँचै साध सुजान ॥

सुमिरन

दादू नीका नाँव है , हरि हिरदै न बिसारि ।
मूरति मन माहँ बसै , साँसै साँस सँभारि ॥
साँसै साँस सँभालता , इक दिन मिलिहै आइ ।
सुमिरन पैड़ा सहज का , सतगुरु दिया बताइ ॥
दादू राम सँभालि ले , जब लग सुखी सरीर ।
फिर पीछै पछिताहिगा , जत्र तन मन धरै न धीर ॥

- मेरे संसा को नहीं , जीवन मरन का राम ।
 सुपनै ही जनि बीसरे , मुख हिरदै हरि नाम ॥
 हरि भजि साफल जीवना , पर उपगार समाइ ।
 दादू मरण तहँ भला , जहँ पसु पँखी खाइ ॥
- (दादू) अगम बस्त पानै पड़ी , राखी मांझि छिपाइ ।
 छिन छिन सोई संभालिये , मति पै बीसरी जाइ ॥
- (दादू) राम नाम निज औषधी , काटै कोटि बिकार ।
 बिषम व्याधि ये ऊबरे , काया कंचन सार ॥
- (दादू) गह सुख सरग पयाल के , तोल तराजू बाहि ।
 हरि सुख एक पलक्क का , ता सम कह्या न जाय ॥
 कौन पटंतर दीजिए , दूजा नाही कोइ ।
 राम सरीखा राम है , सुमिर्याँ ही सुख होइ ॥
 नाँव लिया तब जाणिये , जे तन मन रहै समाइ ।
 आदि अंत मध एक रस , कबहूँ भूलि न जाइ ॥

शब्द

- (दादू) सबदै बंध्या सब रहै , सबदै सबही जाय ।
 सबदै ही सब ऊपजै , सबदै सबै समाय ॥
- (दादू) सबदै ही सचु पाइये , सबदै ही संतोष ।
 सबदै ही इस्थिर भया , सबदै ही भागा सोक ॥
- (दादू) सबदै ही सूषिम भाय , सबदै सहज समान ।
 सबदै ही निर्गुण मिलै , सबदै निर्मल ग्यान ॥
- (दादू) सबदै ही मुक्ता भया , सबदै समभै प्राण ।
 सबदै ही सूभै सबै , सबदै सुरभै जाण ॥
 पहली किया आप थं उतपत्ती ओंकार ।
 ओंकार थैं ऊपजे , पंच तत्त आकार ॥
 पंच तत्त थैं घट भया , बहु बिधि सब विस्तार ।
 दादू घट थैं ऊपजे , मै तैं वरण बिचार ॥
 एक सबद सैं ऊनवै , बर्षन लागै आइ ।
 एक सबद सौं बीखरै , आप आप कौं जाइ ॥
- (दादू) सबद बाण गुर साध के , दूरि दिसंतर जाइ ।
 जेहि लागे सो ऊबरे , सूते लिये जगाइ ॥
 सबद जरै सो मिलि रहै , एकै रस पूरा ।
 कायर भागे जीव ले , पग माँडै सुरा ॥

सबद सरोवर सूभर भरथा, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवै प्रीत सौ, तिन के अखिल सरीर ॥

विरह

- मन चित चातक ज्यूँ रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दरसन कारने, पुरवहु मेरी आस ॥
(दादू) विरहिनि दुख कासनि कहै, कासनि देख सँदेस ।
पंथ निहारत पीव का, विरहिनि पलटे केस ॥
ना बहु मिलै ना मै सुखी, कहु क्यूँ जीवन होइ ।
जिन मुभक्तौ घायल किया, मेरी दारू सोइ ॥
(दादू) मै भिखारी मंगिता, दरसन देहु दयाल ।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु सँभाल ॥
दीन दुनी सदकै करौ, टुक देखण दीदार ।
तन मन भी छिन छिन करौ, भिस्त दोजग भीवार ॥
विरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौ लाइ ।
दादू नख सिख पर जलै, तब राम बुझावै आइ ॥
अंदर पीड़ न ऊभरै, बाहर करै पुकार ।
दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार ॥
(दादू) कर बन सर विन कमान विन, मारै खैंचि कसीस ।
लागी चोट सरीर में, नख सिख सालै सीस ॥
(दादू) विरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव ।
जीव जगावै सुरति कौं, पच पुकारै पीव ॥
(दादू) नैन हमारे ढीठ है, नाले नीर न जाहिं ।
सूके सरौं सहेत वै, करँक भये गलि माँहिं ॥
(दादू) जब विरहा आया दरद सौं, तब कड़वे लागे काम ।
काया लागी काल है, भीठा लगा नाम ॥
जे कबहुं विरहिनि मरै, तौ सुरति विरहिनि होई ।
दादू पिव पिव जीवताँ, मुवा भी टरै सोइ ॥
मीयाँ मैडा आव घर, वाँदी बत्ताँ लोइ ।
दुखडे मुँहडे गये, मराँ विछोहै रोइ ॥

भक्ति और लव

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजै सहजै आव ।
मुक्ता द्रवारा महल का, इहै भगति का भाव ॥
ह्यौ लागी तब जाणिये, जे कबहुं छूटि न जाइ ।
जीवत यौ लागी रहै, मूवाँ मंझि समाई ॥

मन ताजी चेतन चढ़े , ल्यौ की करै लगाम ।
 सबद गुरू का ताजना , कोइ पहुँचै साध सुजान ॥
 आदि अंत मधि एक रस , दूटै नहिं धागा ।
 दादू एकै रहि गया , जब जाणै जागा ॥
 अर्थ अनूपम आप है , और अनरथ भाई ।
 दादू ऐसी जानि करि , तासौं ल्यौ लाई ॥
 सुरति अपूठी फेरि करि , आतम माहँ ज्ञाण ।
 लाहि रहै गुरुदेव सौं , दादू सोई सयाण ॥
 जहँ आतम तहँ राम है , सकल रक्षा भरपूर ।
 अंतरगति ल्यौ लाइ रहु , दादू सेवग सूर ॥
 एक मना लागा रहै , अंत मिलैगा सोइ ।
 दादू जाके मन बसै , ताकौं दरसन होइ ॥
 दादू निबहै ल्युँ चलै , धरि धीरज मन माहिं ।
 परसैगा पिव एक दिन , दादू थाकै नाहिं ॥

चितावनी

(दादू) जे साहिब कौं भावै नहीं , सो बाट न बूझी रे ।
 साईं सौं सन्मुख रही , इस मन सौं जूझी रे ॥
 दादू अचेत न होइये , चेतन सौं चित लाइ ।
 मनवाँ सोता नोंद भरि , साईं संग जगाई ॥
 आया पर सब दूरि करि , राम नाम रस लागि ।
 दादू औसर जात है , जागि सकै तो जागि ॥
 दुख दरिवा ससार है , सुख का सागर राम ।
 सुख सागर चलि जाइये , दादू तजि बेकाम ॥

(दादू) भाँती पाये पसु पिरी , हाँणो लाइ न बेर ।
 साथ सभोई हल्यौ , पोइ पसंदा केर ॥
 काल न सूझै कंध पर मन चितवै बहु आस ।
 दादू जिव जाणौ नहीं , कठिन काल की पास ॥
 जहँ जहँ दादू पग धरै , तहाँ काल का फंध ।
 सिर ऊपर साँघे खड़ा , अजहुँ न चेतै अंध ॥
 यहु बन हरिया देखि करि , फूल्यौ फिरै गंवार ।
 दादू यहु मन मिरगला , काल अहेड़ी लार ॥
 कहतौं सुनतौं देखतौं , लेतौं देतौं प्राण ।
 दादू सो कतहू गया , माटी धरी मसाण ॥

पंथ दुहेला दूरि घर , संग न साथी कोय ।
 उस मारग हम जाहिंगे , दादू क्यौं सुख सोइ ॥
 काल भाल में जग जलै , भाजि न निकसै कोइ ।
 दादू सरणै साच कै , अभय अमर पद होइ ॥
 ये सज्जन दुर्जन भये , अति काल की बार ।
 दादू इनमें को नहीं , बिपति बटावणहार ॥
 काल हमारा कर गहे , दिन दिन खैंचत जाइ ।
 अजहुं जीव जागै नहीं , सेवत गई बिहाइ ॥
 धरती करते एक डग , दरिया करते फाल ।
 हाँकौं परबत फाड़ते , सो भी खाये काल ॥

निज करता का निर्णय

जाती नूर अलाह का , सिफाती अरवाह ।
 सिफाती सिजदा करै , जाती बे परवाह ॥
 वार पार नहीं नूर का , दादू तेज अनंत ।
 कीमति नहीं करतार की , ऐसा है भगवंत ॥
 जियें तेल तिलनि में , जियें गंधि फुलनि ।
 जियें माखण पीर में , ईयें रब रूहनि ॥

दुबिधा

जब हम ऊजड़ चालते , तब कहते मारग माहिं ।
 दादू पहुँचे पंथ चलि , कहैं यहु मारग नाहिं ॥
 द्वै पष उपजी परिहरै , निर्पष अनमै सार ।
 एक राम दूजा नहीं , दादू लेहु बिचार ॥
 दादू संसा आरसी , देखत दूजा होई ।
 भरम गया दुभिध्या मिटी , तब दूसर नाहीं कोइ ॥

बेहद

देखि दिवाने है गये , दादू खरे सयान ।
 कार पार कोइ ना लहै , दादू है हैरान ॥
 पार न देवै आपण , गोप बूझ मन माहिं ।
 दादू कोई ना लहै , केतै आवैं जाहिं ॥

समरथ

समरथ सब विधि साइयाँ , ताकी मैं बलि जाउँ ।
 अंतर एक जु सो बसै , औरां चित्त न लाउँ ॥

ज्यँ राखें त्यों रहेंगे , अपरो बल नाही ।
 सबै तुम्हारे हाथि है , भाजि कत जाहीं ॥
 दादू दूजा क्यँ कहै , सिर परि साहिब एक ।
 सो हम कूँ क्यँ बीसरे , जे जुग जाँहि अनेक ॥
 कर्म फिरावै जोव कौं , कर्मों कौं करतार ।
 करतार कौं कोई नहीं , दादू फेरनहार ॥
 आप अकेला सब करै , औरूँ के सिर देइ ।
 दादू सोभा दास कूँ , अपना नाम न लेइ ॥

चिनय

तिल तिल का अपराधी तेरा , रती रती का चोर ।
 पल पल का मैं गुनही तेरा , वस्त्रसौ औगुण मोर ॥
 गुनहगार अपराधी तेरा , भाजि कहाँ हम जाहिं ।
 दादू देख्या सोधि सब , तुम लिन कहिँ स समाहिं ॥
 आदि अंत लौं आई करि , सुकिरत कछू न कीन्ह ।
 माया मोह मद मंछरा , स्वाद सबै चित दीन्ह ॥
 दादू बंदीवान है , तू बंदी छोड़ दिवान ।
 अब जनि राखौ बंदि में , मीराँ मेहरबान ॥
 दिन दिन नौतम भगति दे , दिन दिन नौतम नाँव ।
 दिन दिन नौतम नेह दे , मैं बलिहारी जाँव ॥
 साईं सत संतोष दे , भाव भगति बेसास ।
 सिदक सबूरी साँच दे , मांगै दादूदास ॥
 पलक माहिं प्रगटै सही , जे जन करै पुकार ।
 दीन दुखी तब देखि करि , अति आतुर निहिं बार ॥
 आगें पीछें संगि रहै , आप उठाये भार ।
 साध दुखी तब हरि दुखी , ऐसे सिरजन हार ॥
 अंतरजामी एक तूँ , आतम के आधार ।
 जे तुम छाड़हु हाथ थैं , तो कौण संवाहणहार ॥
 तुम हो तैसी कीजिये , तो छूटैंगे जीव ।
 हम हैं ऐसी जनि करौ , मैं सदिकै जाँऊ पीव ॥
 साहिब दर दादू खड़ा , निसि दिन करै पुकार ।
 मीराँ मेरा मिहर करि , साहिब दे दीदार ॥
 तुम कूँ हम से बहुत हैं , हम कूँ तुम से नाहिं ।
 दादू कूँ जनि परिहरौ , तूँ रहु नैनहुँ माहिं ॥

विश्वास

(दादू) सहजै सहज होइगा , जे कुछ रजिया राम ।
 काहे कौं कलपै मरै , दुखी होत बेकाम ॥
 (दादू) मनसा बाचा कर्मना , साद्विष का बेसास ।
 सेवग सिरजनहार का करै कौन की आस ॥
 (दादू) च्यंता कीयाँ कुछ नहीं , च्यंता जिव कूँ खाय ।
 हूणा था सो है रखा , जाणा है सो जाइ ॥
 (दादू) राजिक रिजक लिये खड़ा , तेवै हाथौं हाथ ।
 पूरि क पूरा पासि है , सदा हमारे साथ ॥

विचार

केटि अचारी एक विचारी , तऊ न सर भरि होइ ।
 आचारी सब जग मर्या , विचारी विरला कोइ ॥
 सहज विचार सुख में रहै , दादू बड़ा बमेक ।
 मन इंद्रि पसरै नहीं , अंतरि राखै एक ॥
 (दादू) सोचि करै सो सूरमा , कार सोचै सो क्रूर ।
 करि सोच्यौ मुख स्याम है , सोच करथौं मुख नूर ॥
 जो मति पीछें ऊपजै , सो मति पहिली होइ ।
 कबहुँ न होवै जी दुखी , दादू सुखिया सोइ ॥

साँच

साँचा नाँव अलाह का , साँई सति करि जाणि ।
 निहचल करि ले बंदगी , दादू सो परवाणि ॥
 दुइ दरोग लोग कौं भावै , साँई साच पियारा ।
 कौण पंथ हम चलै कहौ धौं , साधौ करौ विचारा ॥
 औषद खाइ न पछि रहै , बिषम व्याधि क्यों जाइ ।
 दादू रोगी बावरा , दोस वैद कौं लाइ ॥
 जे हम जाएथा एक करि , तौ काहे लोक रिसाइ ।
 मेरा था सो मैं लिया , लांगौं का क्या जाइ ॥
 दादू पैड़े पाप के , कदे न दीजै पांव ।
 जिहि पैड़े मेरा पिव मिलै , तिहि पैड़े का चाव ॥
 ऊपरि आलम सब करै , साधू जन घट मांदि ।
 दादू एता अंतरा , ताथै बनती नाहि ॥
 भूठां साचा करि लिया , बिष अमृत जाना ।
 दुख कौं सुख सब के कहे , ऐसा जगत दिवाना ॥

साँचे का साहिब धरणी , समरथ सिरजनहार ।
 पाखंड की यहु पिर्यभी , परपंच का संसार ॥
 (दादू) पाखंड पीव न पाइये , जे अंतरि साच न होइ ।
 ऊपरि थैं क्यौहीं रहौ , भीतर के मल धोइ ॥
 जे पहुँचे ते कहि गये , तिनकी एकै जाति ।
 सवै सयाने एक मति , उनकी एकै जाति ॥

मौन

(दादू) मनहीं माँहै समझि करि . मनहीं माहिं समाइ ।
 मन हीं माहैं राखिये , बाहरि कहि न जनाइ ॥
 जरण जोगी जुगि जुगि जीवै . भरना मरि मरि जाय ।
 दादू जोगी गुरमुखी , सहजै रहै समाइ ॥

जीवत मृतक

जीवत माटी है रहै , साईं सनमुख होइ ।
 दादू पहिली मरि रहै , पीछै तौ सब कोइ ॥
 आपा गर्व गुमान तजि , मद मछर हंकार ।
 गहै गरीबी बंदगी , सेवा सिरजन हार ॥
 (दादू) मेरा बैरी मै मुवा . मुझै न मारै कोउ ।
 मै हीं मुझ कौं मारता , मै मरजीवा होइ ॥
 मेरे आगे मै खड़ा , ताथैं रह्या लुकाइ ।
 दादू परगट पीव है , जे यहु आपा जाइ ॥
 दादू आप छिपाइये , जहाँ न देखै कोइ ।
 पिव कौं देखि दिखाइये , त्यों त्यों आनंद होइ ॥
 (दादू) साईं कारण माँस का , लोही पानी होइ ।
 सूकै आटा अस्थि का , दादू पावै सोइ ॥

पवित्रता

(दादू) मेरे हिरदे हरि बसै , दूजा नाही और ।
 कहौ कहाँ धौं राखिये , नहीं आन कौं ठौर ॥
 (दादू) पीव न देख्या नैन भरि , कंठि न लागी धाइ ।
 सूती नहि गल बाँहि दे , बिच हीं गई बिलाइ ।
 प्रेम प्रीति इसनेह विन , सब भूठे सिंगार ॥
 दादू आतम रत नहीं , क्यो मानै भरतार ।
 (दादू) हूँ सुख सूती नौद भरि , जागे मेरा पीव ॥
 क्यो करि मेला होइगा , जागैं नाही जीव ।

सुंदरि कबहूँ कंत का , मुख सौं नांव न लैइ ॥
 अपणे पिव के कारणे , दादू तन मन देइ ।
 तन भी तेरा मन भी तेरा , तेरा प्यंड परान ।
 सब कुछ तेरा तू है मेरा , यहु दादू का ज्ञान ॥
 (दादू) नीच ऊँच कुल सुंदरी , सेवा सारी होइ ।
 सोई सोहागनि कीजिये , रूप न पीजै धोइ ॥

माँस अहार

माँस अहारो मद पिवै , बिषै विकारी सोइ ।
 दादू आतम राम बिन , दया कहां थै होइ ॥
 आपन कौं मारै नहीं , पर कौं मारन जाहि ।
 दादू आपा मारै बिना , कैसे मिलै खुदाय ॥

दया

काल जाल थै काढ़ि कारि , आतम अंगि लगाइ ।
 जीव दया यहु पालिये , दादू अमृत खाइ ॥
 भवहीणा जे पिरथमी , दया बिहूणा देस ।
 भगति नहीं भगवंत की , तहँ कैसा परवेस ॥
 काला मुँह करि करद का , दिल थै दूरि निवार ।
 सब सूरति सुबहान की , मुल्लौं गुग्घ न मोरि ॥

दुर्जन

निगुणा गुण मानै नहीं , केटि करै जे कोइ ।
 दादू सब कुछ सौंपिये , सो फिर बैरी होइ ॥
 दादू सगुणा लीजिये , निगुणा दीजै डारि ।
 सगुणा सन्मुख राखिये , निर्गुण नेह निवारि ॥
 दादू दूध पिलाइये , बिषहर बिष करि लेइ ।
 गुण का अवगुण करि लिया , ताही कौं दुख देइ ॥
 मूसा जलता देख करि , दादू हंस-दयाल ।
 मानसरोवर ले चल्या , पंखा काटे काल ॥

मध्य

सहज रूप मन का भया , जब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
 ताता सीला सम भया , तब दादू एकै अंग ॥
 कुछ न कहावै आप कौं , काहू संगि न जाइ ।
 दादू निर्पष है रहै , साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥

ना हम छाड़ैं ना गहैं , ऐसा ज्ञान विचार ।
 मद्धि भाइ सेवैं सदा , दादू मुकति दुवार ॥
 बैरागी मन में बसै , घरबारी घर माहिं ।
 राम निराला रहि गया , दादू इनमें नाहिं ॥

सतसंग दुर्जन को

सतगुर चंदन बावना , लागे रहै भुवंग ।
 दादू बिष छाड़ैं नहीं , कहा करै सतसंग ॥
 कोटि बरस लौं राखिये , बंसा चंदन पास ।
 दादू गुण लीये रहै , कदै न लागै बास ॥
 कोटि बरस लौं राखिये , लोहा पारस संग ।
 दादू रोम का अंतरा , पलटै नाहीं अंग ॥
 कोटि बरस लौं राखिये , पत्थर पानी माँहि ।
 दादू आड़ा अंग है , भीतर भेदै नाहिं ॥

घटमठ

(दादू) जा कारन जग ढूँढ़िया , सो तौ घट ही माहिं ।
 मैं तैं पड़दा भरम का , ता थैं जानत नाहिं ॥
 सब घटि माहैं रमि रखा , विरला बूझै कोइ ।
 सोई बूझै राम को , जो राम सनेही होइ ॥

साध

साधू जन संसार में , पारस परगट पाइ ।
 दादू केते ऊधरे , जेते परसे आइ ॥
 साधू जन संसार में , सीतल चंदन वास ।
 दादू केते ऊधरे , जे आये उन पास ॥
 जहँ अरंड अरु आक थे , तँह चंदन ऊग्या माहिं ।
 दादू चंदन करि लिया , आक कहै को नाहिं ॥
 साध मिलै तब ऊपजै , हिरदे हरि का हेत ।
 दादू संगति साध की , कृपा करै तब देत ॥
 जब दखौ तब दीजियौ , तुम पै माँगो येहु ।
 दिन प्रति दरसन साध का , प्रेम भगति दिढ़ देहु ॥
 दादू चंदन करि कछ्छा , अपणाँ प्रेम प्रकास ।
 दस दिसि परगट हूँ रखा , सीतल गंध सुवास ॥
 पर उपगारी संत सब , आये यहि कलि माँहि ।
 पिवैं पिलावैं राम रस , आप सुवारथ नाहिं ॥

साध सबद सुख बरखि है , सीतल होइ सरीर ।
 दादू अंतर आतमा , पीवै हरि जल नीर ॥
 औगुण छांड़ै गुण गहै , सोई सिरोमणि साध ।
 गुण औगुण थैं रहति है , सो निज ब्रह्म अगाध ॥
 विष का अमृत करि लिया , पावक का पाणी ।
 बाँका सूधा करि लिया , सो साध बिनाणी ॥

सार गहनी

पहिली न्यारा मन करै , पीछै सहज सरीर ।
 दादू हंस बिचार हौं , न्यारा कीया नीर ॥
 मन हंस मोती चुणै , कंकर दीया डारि ।
 सतगुरु कहि समझाईया , पाया भेद बिचारि ॥
 दादू हंसा परखिये , उत्तिम करणी चाल ।
 बगुला वैसे ध्यान धरि , परतषि कहिये काल ॥
 गऊ बच्छ का ग्यान गहि , दूध रहै ल्यौ लाइ ।
 सोंग पूँछ पग परिहरै , अस्थन लागै धाइ ॥

सेवक

सेवग सेवा करि डरै , हम थै कछु न होइ ।
 तूँ है तैसी बंदगी , करि नहिं जानै कोय ॥
 फल कारण सेवा करै , याचै त्रिभुवन राव ।
 दादू सो सेवग नहीं , खेलै अपना डाव ॥
 सूरज सन्मुख आरसी , पावक किया प्रकास ।
 दादू साँई साध बिच , सहजै निपजै दास ॥

भेष

शानी पंडित बहुत हैं , दाता सूर अनेक ।
 दादू भेष अनंत हैं , लागि रहथा सो एक ॥
 कनक कलस विष सँ भरथा , सो किस आवै काम ।
 सो धनि कूटा चाम का , जा में अमृत राम ॥
 स्वाँग साध बहु अंतरा , जेता धरनि अकास ।
 साधू राता राम सूँ , स्वाँग जगत की आस ॥
 (दादू) स्वाँगी सब संसार है , साधू कोई एक ।
 हीरा दूरि दिसंतरा , कंकर और अनेक ॥
 दादू एकै आतमा , साहिब है सब माहिँ ।
 साहिब के नाते मिलै , भेष पंथ के नाहिँ ॥

(दादू) जग दिखलावै बावरी , षोड़स करै सिंगार ।
तहँ न सँवारै आप कूँ , जहँ भीतर भरतार ॥

प्रेम

प्रम भगति जब ऊपजै , निहचल सहज समाध ।
दादू पीवे प्रेम रस , सतगुर के परसाद ॥
दादू राता राम का , पीवै प्रेम अघाइ ।
मतवाला दीदार का , मांगै मुक्ति बलाइ ॥
ज्यूँ अमली के चित अमल है , सूर के संग्राम ।
निरधन के चित धन वसै , यो दादू के राम ॥
जो कुछ दिया हम कौं , सो सब सुमहीं लेहु ।
तुम बिन मानै नहीं , दरस आपड़ा देहु ॥
भोरे भोरे तन करै , बंडै करि कुरबाण ।
मोठा कौड़ा ना लगै , दादू तोहू साण ॥
जब लग सीस न सौँपिये , तब लग इसक न होइ ।
आसिक मरखै ना डरै , पिया पियाला सोइ ॥
इसका मुहब्बत मस्तमन , तालिब दर दीदार ।
दोस्त दिल हरदम हजूर , यादगार हुसियार ॥
दादू इसक अलाह का , जे कबहूँ प्रगटै आय ।

(तौ) तन मन दिल अरवाह का , सब पड़दा जलि जाय ॥
दादू पाती प्रेम की , बिरला बांचै कोइ ।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ै , प्रेम बिना क्या होइ ॥
प्रीती जो मेरे पीव की , पैठी पिंजर माहिँ ।
रोम रोम पिव पिव करै , दादू दूसर नाहिँ ॥
आसिक मासूक है गया , इसक कहावै सोइ ।
दादू उस मासूक का , अल्लहि आसिक होइ ॥
इसक अलह की जाति है , इसक अलह का अंग ।
इसक अहल औजूद है , इसक अलह का रंग ॥

बिभिचारिन

नारी सेवग तब लगै , जब लग साईं पास ।
दादू परसै आन को , ताकी कैसी आस ॥
कीया मन का भावतौं , मेटी आज्ञा कार ।
क्या मुख ले दिखलाइये , दादू उस भरतार ॥
पतिबरता के एक है , बिभिचारणि के दोइ ।
पतिबरता बिभिचारणी , मेला क्यों करि होइ ॥

पुलिष हडररर ँक है , हड नररी डहु अंग ।
जे जे जैसी तरहि सौँ , खेलै तिस ही रंग ॥

करनी और कथनी

दरदू कथड़ी और कुलु , करणी करै कुलु और ।
तिन थै डेरर जिव डरै , जिनके ठीक न ठौर ॥

डरन

आपर डेटै हरि डजै , तन डन तजै डिकर ।
निरडैरी सब जीव सौँ , दरदू डहु डति सर ॥
किस सौँ डैरी है रखा , दूजर कोई नरहि ।
जिसके अंग थै ऊडडर , सेई है सब डरहि ॥
जहाँ ररड तहँ डै नहीँ , डै तहँ नरहीँ ररड ।
दरदू डहल डरीक है , दुड को नरहीँ ठरड ॥

उडडेश

डहिली थर सेर अड डडर , अड सेर आगै होइ ।
दरदू तीनों ठौर को , डूरुडै डिरलर कोइ ॥
जे डन डेडे डुरीति सौँ , ते जन सदर सजीव ।
उलटि सरडने आड डै , अंतर नरहीँ डीव ॥
देह रहै संसर डै , जीव ररड के डरस ।
दरदू कुलु वुडरडै नहीँ , कल डरल दुख तुरस ॥
दरदू कुलु जीवतौँ , डूरुआँ कुलु नरहि ।
डूरुआँ डीळै कुलुटिये , तौ सब आये उस डरहि ॥
संगी सेई कीजिये , जे इस्थिर इहि संसर ।
नर डहु खिरै न हड खडै , ऐसर लेहु डिचर ॥
संगी सेई कीजिये , सुख दुख कर सरथी ।
दरदू जीवण डरण कर , सेर सदर संगरती ॥
कडहुँ न डिहडै सेर डलर , सरधू दिड डति होइ ।
दरदू हीरर ँक रस , डरंधि गरंठड़ी सेइ ॥

डिश्रित

आडर उरडै उरडिया , दीसै सब संसर ।
आडर सुरडै सुरडिया , डहु गुर गुररन डिचर ॥
सब गुण सब ही जीव के , दरदू वुडरडै आइ ।
डर डरहुँ जरडै डरै , कोइ न जरणै तरहि ॥

दादू बेली आत्मा , सहज फूल फल होइ ।
 सहज सहज सतगुर कहै , बूझै बिरला कोइ ॥
 हरि तरवर तत आतमा , बेली करि बिस्तार ।
 दादू लागै अमर फल , कोइ साधू सीचणहार ॥
 दया धर्म का रुखड़ा , सत सौं बधता जाइ ।
 संतोष सौं फूलै फलै , दादू ऊमर फल खाइ ॥
 माया बिहड़ै देखताँ , काया संग न जाइ ।
 कृत्तम बिहड़ै बावरे , अजरावर ल्यौ लाइ ॥
 जेते गुड़ न्यापै जीवकौ , तेते तै तजै रे मन ।
 साहिब अपड़े कारणे , भलो निबाह्यो पन ॥

पारख

(दादू) जैसे माहँ जिव रहे , तैसी आवै बास ।
 मुख बोलै कब जाणिये , अंतर का परकास ॥
 मति बुधि बिबेक विचारविन , माणस पसू समान ।
 समभाया समझै नहीं , दादू परम गियान ॥
 काचा उल्लै ऊफड़ै , काया हॉडी माहिँ ।
 दादू पाका मिलि रहे , जीव ब्रह्म द्वै नाहिँ ॥
 अंधे हीरा परखिया , कीया कौड़ी मोल ।
 दादू साधू जौहरी , हीरे मोल न तोल ॥
 (दादू) साहिब कसै सेवग खरा , सेवग कौं सुख होइ ।
 साहिब करै सो सब भला , बुरा न कहिये कोइ ॥

माया

साहिब है पर हम नहीं , सब जग आवै जाइ ।
 दादू सुपिना देखिये , जागत गया विलाइ ॥
 (दादू) माया का सुख पंच दिन , गन्यौ कहा गँवार ।
 सुपिनै पायो राज धन , जात न लागै बार ॥
 कालरि खेत न नीपजै , जे बाहै सौ बार ।
 दादू हाना बीज का , क्या परि मरै गँवार ॥
 राहु गिलै ज्यौं चंद कौं , गहन गिलै ज्यौं सूर ।
 कर्म गिलै यौ जीव कौं , नखसिख लागै पूर ॥
 कर्म कुहाड़ा अंग बन , काटत बारंबार ।
 अपने हाथौं आप कौं , काटत है संसार ॥
 (दादू) सब को बड़ि जै खार खलि , हीरा कोइ न लेइ ।
 हीरा लेगा जौहरी , जो माँगे सो देइ ॥

- सुर नर मुनियर बसि किये , ब्रह्मा बिस्नु महेस ।
 सकल लोक के गिर खड़ी , साधू के पग हेठ ॥
- (दादू) पहिली आप उपाई करि , न्यारा पद निर्वाण ।
 ब्रह्मा बिस्नु महेस मिलि बंध्या सकल बंधाण ॥
 दादू बाधे बेद बिधि , भरम करम उरभाइ ।
 मरजादा माहँ रहै , सुमिरण किया न जाह ॥
- (दादू) माया मीठी बोलणी , नै नै लागै पाँइ ॥
 दादू पैसे पेट में , काढ़ि कलेजा खाइ ॥
 भँवरा लुब्धी बास का , कँवल बँधाना आइ ।
 दिन दस माहँ देखतां , दून्यू गये विलाइ ॥

परिचय

- (दादू) निरंतर पिउ पाइया , तीन लोक भरिपूर ।
 सब सेजौं साइं बसैं , लोग बतावै दूरि ॥
 दादू देखौं निज पीब कौं , दूसर देखौं नाहिं ।
 सबै दिसा सौं सोधि करि , पाया घट ही माहिं ॥
 बुहुप प्रेम बरिषैं सदा , हरि जन खेलैं फाग ।
 ऐसा कौतिग देखिये , दादू मोटे माग ॥
- (दादू) देही माहै दोइ दिल , इक खाकी इक नूर ।
 खाकी दिल सूझै नहीं , नूरी मंझि हनूर ॥
- (दादू) जब दिल मिला दयाल सौं , तब अंतर कुछ नाहिं ।
 ज्यों पाला पानी कौं मिल्या , त्यों हरि जन हरि माहिं ॥

मन

- साईं सूर जे मन गहै , निमखि न चलने देइ ।
 जब हीं दादू पग भरै , तब हीं पाकड़ि लेइ ॥
 जब लागि यहु मन थिर नहीं , तब लागि परस न हेइ ।
 दादू मनवाँ थिर भया , सहजि मिलैगा सोइ ॥
 यहु मन कागज की गुड़ी , उड़ि चढ़ी आकास ।
 दादू भीगै प्रेम जल , तब आइ रहै हम पास ॥
 सो कुछ हम थैं ना भया , जा पर रीझै राम ।
 दादू इस संसार में , हम आए बेकाम ॥
 इंद्री स्वारथ सब किया , मन मांगै सो दीन्ह ।
 जा कारण जग सिरजिया , सो दादू कछू न कीन्ह ॥
- (दादू) ध्यान धरें का होत है , जे मन नहिं निर्मल होइ ।
 तौ बग सबहीं ऊधरैं , जे यहि बिधि सीझै कोइ ॥

(दादू) जिसका दर्पण ऊजला , सो दर्पण देखै माहिँ ।
जिसकी मैली आरसी , सो मुख देखै नाहिँ ॥
जागत जहँ जहँ मन रहै , सोवत तहँ तहँ जाइ ।
दादू जे जे कन बसै , सोइ सोइ देखै आइ ॥
जहँ मन राखै जीवतों , मरतों तिस धरि जाइ ।
दादू बासा प्राण का , जहँ पहली रह्या समाइ ॥
जीवन लूटै जगत सब , मिरकत लूटै देव ;
दादू कहाँ पुकारिये , करि करि मूए सेव ॥

निंदा

(दादू) जिहि घर निंदा साध की , सो घर गये समूल ।
तिनको नीव न पाइये , नाँव न ठाँव न धूल ॥
(दादू) निंदा नाँव न लीजिये , सुपनै हों जिनि होय ।
ना हम कहैं न तुम सुणौ , हम जिनि भाखै कोइ ॥
अणदेख्या अनरथ कहैं , कलि प्रथमी का पाप ।
धरती अंबर जब लगैं , तब लग करैं कलाप ॥
(दादू) निंदक बपुरा जिन मरै , पर उपकारी सोइ ।
हम कूँ करता ऊजला , आपण मैला होइ ॥

सूरमा

(दादू) जे मुझ होते लाख सिर , तौ लाखौं देती यारि ।
रह मुम दीया एक सिर , सोई सौंपे नारि ॥
सूरा चढ़ि संग्राम कौं , पाछा पग क्यों देइ ।
साहिब लाजै भाजतों , धृग जीवन दादू तेइ ॥
काहर काम न आवई , यहु सूरे का खेत !
तन मन सौंपै राम कौ , दादू सीस सहेत ॥
जब लग लालच जीवका , तब लग) निर्भय हुआ न जाइ ।
काया माया तन तजै , तब चैड़े रहै बजाइ ॥
काया कबज कमान करि , सार सबद करि तीर ।
दादू यहु सर सांधि करि , भारै मोटे मीर ॥
(दादू) तन मन काम करीम के , आवै तौ नीका ।
जिस का तिस कौं सौंपिये , सोच क्या जी का ॥
दादू पाखर पहरि करि , सब कों भूभण जाइ ।
अगि उघाड़ै सूरिवाँ , चोट मुँह मुँह खाइ ॥
(दादू कहै) जे तू राखै साइयाँ , तौ मारि न सककै कोइ ।
बाल न बंका करि सकै , जे जग बैरी होइ ॥

सर्व समरथ

जिनि सत छाड़ै बावरे , पूरि क है पूरा ।
सिरजे की सब चित है , देबे कौं सूर ॥ टेक ॥
गर्भ बास जिन राखिया , पावक थैं न्यारा ।
जुगति जतन करि सँचिया , दे प्राण अधारा ॥
कुंज कहाँ धरि संचरै , तहँ के रखवारा ।
हेम हरत जिन राखिया , सो खसम हमारा ॥
जल थल जीव जिते रहैं , सो सब कौं पूरै ।
संपट सिला में देत है , काहें नर भूरै ॥
जिन यहु भार उठाइया , निरवाहै सोई ।
दादू छिन न बिसारिये , ता थैं जीवन होई ॥

नाम और सुमिरन

मनौं भजि राम नाम लीजे ।
साध संगति सुमिरि सुमिरि , रसना रस पीजे ।
साधू जन सुमिरण करि , केते जपि जागै ॥
अगम निगम अमर किये , काल कोइ न लागे ।
नीच ऊंच चितन करि , सरणागति लीये ॥
भगति मुक्ति अपणी गति , ऐसैं जन कीये ।
केते तिरि तीर लागे , बंधन भव छूटे ॥
कलिमल विष जुग जुग के , राम नाम खूटे ॥
भरम करम सब निवारि , जीवन जपि सोई ।
दादू दुख दूर करण , दूजा नहि कोई ॥

नाँउ रे नाँउ रे सकल सिरोमणि नाँउ रे ,
मैं बलिहारी जाँउ रे ॥ टेक ॥
दूतर तारै पारि उतारै , नरक निवारै नाँउ रे ।
तारणहार भौजल पारा , निर्मल सारा नाँउ रे ॥

नूर दिखावै तेज मिलावै , जोति जगावै नाँउ रे ।
सब सुख दाता अमृत राता , दादू माता नाँउ रे ॥

चितावनी

कागा रे करक परि बोलै ।
खाइ मांस अरु लगहीं डोलै ॥ टेक ॥
जा तन कौं रचि अधिक सेंवारा ।
सो तन ले माटी में डारा ॥
जा तन देखि अधिक नर फूले ।
सो तन छाँड़ि चल्या रे भूले ॥
जात न देखि मन में गरवाना ।
मिलि गया माटी तजि अभिमाना ॥
दादू तन की कहा बड़ाई ।
निमख माहीं माटी मिलि जाई ॥

सजनी रजनी घटनी जाइ ।
पल पल छीजै अवधि दिन आवै , अपनौं लाल मनाइ ॥ टेक ॥
अति गति नोंद कहा सुख सोवै , यहु औसर चलि जाइ ।
यहु तन बिछुरे बहुरि कहँ पावै , पीछै ही पछिताइ ॥
प्राण पति जागै सुंदरि क्यों सोवै , उठि आतुर गहि पांइ ।
कोमल बचन करुण करि आगै , नख सिक्ख रहु लपटाइ ॥
सखी सुहाग सेज सुख पावै , प्रीतम प्रेम बढाइ ।
दादू भाग बड़े पिव पावै , सकल सिरोमणि राइ ॥

मन रे राम बिना तन छीजै ।
जब यहु जाइ मिलै माटी में , तब कहु कैसैं कीजै ॥ टेक ॥
पारस परसि कंचन करि लीजै , सहज सुरति सुखदाई ।
माया बेलि बिधै फल लागे , तापर भूलि न भाई ॥
जब लग प्राण प्येड है नीका , तब लग ताहि जिनि भूलै ।
यहु संसार संबल कै सुख ज्यूं , ता पर तू जिनि फूलै ॥
और येह जानि जग जीवन , समझि देखि सजु पावै ।
अंग अनेक आन मति भूलै , दादू जिनि डहकावै ॥

प्रेम

बाला सेज हमारी रे , तूँ आव हौं वारी रे ।
 हौं दासी तुम्हारी रे ॥ टेक ॥
 तेरा पंथ निहारूँ रे , सुंदर सेज सँवारूँ रे ।
 जियरा तुम पर वारूँ रे ॥
 तेरा अँगना पेखौं रे , तेरा मुखड़ा देखौं रे ।
 जब जीवन लेखौं रे ॥
 मिलि मुखड़ा दीजै रे , यह लाहड़ा लीजै रे ।
 तुम देखे जीजै रे ॥
 तेरे प्रेम की माती रे , तेरे रगड़े राती रे ।
 दादू वारणै जाती रे ॥

तेरे नाँउ की बलि जाऊँ , जहाँ रहौं जिस ठाऊँ ॥ टेक ॥
 तेरे बैनौं की बलिहारी , तेरे नैनहुँ उपरि वारी ।
 तेरी मूरति की बलि कीती , बारि बारि हौं दीती ॥
 सोभित नूर तुम्हारा , सुंदर जोति उजारा ।
 मीठा प्राण पियारा , तूँ है पीव हमारा ॥
 तेज तुम्हारा कहिये , निर्मल काहे न लहिये ।
 दादू बलि बलि तेरे , आव पिया तूँ मेरे ॥

हरि रस माते मगन भये ।

सुमिरि सुमिरि भये मतवाले , जामण मरण सब भूलि गये ॥
 निर्मल भगति प्रेम रस पीवै , आन न दूजा भाव धरै ।
 सहजै सदा राम रंगि राते , मुकति बैकुण्ठै कहा करै ॥
 गाइ गाइ रसलीन भये है , कछु न माँगैं संत जनै ॥
 और अनेक देहु दत आगै , आन न भावें राम बिनै ॥
 इकटग ध्यान रहे ल्यौ लागे , छाकि परे हरि रस पीवै ।
 दादू मगन रहै रसमाते , ऐसैं हरि के जन जीवै ॥

बिरह

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर ॥ टेक ॥

दरसन बिना बहुत दिन बीते , सुंदर प्रीतम मोर ।
 चारि पहर चारौं जुग बीते , रैनि गँवाई मोर ॥

अवधि गई अजहूँ नहिँ आए, कतहुँ रहे चित चोर ।
 कबहुँ नैन निरखि नहिँ देखे मारग चितवत तोर ॥
 दादू ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चंद चकोर ।

आवौ राम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे ॥ टेक ॥
 बिरहनि आतुर पंथ निहारै, राम राम कहि पीव पुकारै ।
 पंथी बूझै मारग जोवै, नैन नीरजल भरि भरि रोवै ॥
 निस दिन तलफै रहे उदास, आतम राम तुम्हारे पास ।
 बप बिसरै तन की सुधि नाही, दादू बिरहनि मिरतक माहीं ॥

कतहुँ रहे हो बिदेस, हरि नहिँ आये हो ।
 जनम मिरानौ जाइ, पिव नहिँ पाये हो ॥
 बिपति हमारी जाइ, हरि सौँ को कहै हो ।
 तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि ब्यूँ रहै हो ॥
 पिव के बिरह बियोग, तन की सुधि नहिँ हो ।
 तलफि तलफि जिव जाइ, मिरतक है रही हो ॥
 दुखित भई हम नारि, कब हरि आवैं हो ।
 तुम्ह बिन प्राण अधार, जिव दुख पावै हो ॥
 प्रगटहु दीनदयाल, बिलम न कीजै हो ।
 दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजै हो ॥

कौण बिधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ॥ टेक ॥
 पास पीव परदेस है रे, जब लग प्रगटै नाहिँ ।
 बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन माहिँ ॥
 जब लग नैन न देखिये, परगट मिलै न आइ ।
 एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सहा न जाइ ॥
 तब लग नेड़े दूरि है, जब लग मिलै न मोहिँ ।
 नैन निकट नहिँ देखिये, संगि रहे क्या होइ ॥
 कहा करौ कैसे मिलै रे, तलफै मेरा जीव ।
 दादू आतुर बिरहनी, कारण अपने पीव ॥

बिनय

हमरे तुमहीं हौ रखपाल ।
 तुम बिन और नहीं कोउ मेरे, भौ दुख मेटणहार ॥

बैरी पंच निमष नहिँ न्यारे, रोकि रहे जम काल ।
 हा जगदीस दास दुख पावै, स्वामी करो सँभाल ॥
 तुम बिन राम दहैं ये दुंदर, दसौँ दिसा सब साल ।
 देखत दीन दुखी क्यों कीजे, तुम हौ दीनदयाल ॥
 निर्भय नाँव हेत हरि दीजे, दरसन परसन लाल ।
 दादू दीन लीन करि लीजे, मेटहु सबै जँजाल ॥

क्यों बिसरै मेरा पीव पियारा ।
 जीव कि जीवन प्राण हमारा ॥ टेक ॥
 क्यों कर जीवै मीन जल बिछुरें, तुम बिन प्राण सनेही ।
 च्यंतामणि जब कर थैं छूटै, तब दुख पावै देही ॥
 माता बालक दूध न देवै, सो कैसेँ करि पीवै ।
 निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसेँ करि जीवै ॥
 परखहु राम सदा सुख अमृत, नीभर निर्मल धारा ।
 प्रेम पियाला भरि भरि दीजे, दादू दास तुम्हारा ॥

घट मठ

भाई रे घर ही में घर पाया ॥
 सहजि समाइ रखा ला माहीं, सतगुरु खोज बताया ॥
 ता घर काज सबै फिरि आया आपै आप लखाया ।
 खोलि कपाट महल के दीन्हे, थिर अस्थान दिखाया ॥
 भय औ भेद भरम सब भागा, साच सोई मन लाया ।
 प्यंड परे जहां जिव जावै, ता में सहज समाया ॥
 निहचल सदा चलै नहिँ कबहुँ, देख्या सब में सोई ।
 ताही सूँ मेरा मन लागा, और न दूजा कोई ॥
 आदि अंत सोई घर पाया, इव मन अनत न जाई ।
 दादू एक रंगै रंग लागा, तामें रह्या समाई ॥

मन

मेरे तुमहीं राखणहार, दूजा को नहीं ।
 ये चंचल चहुँ दिसि जाइ, काल तही तही ॥ टेक ॥
 मैं केते किये उपाइ, निहचल ना रहै ।
 जहँ बरजौ तहँ जाइ, मदमातौ नहै ॥

जहँ जाणै तहँ जाइ, तुम थ ना डरै॥
ता स्यौ कह्या बसाइ, भावै त्यों करै ॥
सकल पुकारै साध, मै केता कह्या ।
गुर अंकुस मानै नाहिँ, निरभै है रखा ॥
तुम बिन और न कोइ इस मन को गहे ।
तू राखै राखणहार, दादू तौ रहे ॥

करम धरम

मूल सींचि बधै ज्युँ बेला सो तत तरवर रहे अकेला ॥ टेक ॥
देवी देखत फिरै ज्युँ भूले खाइ हलाहल विष कौ फूले ।
सुख कौ चाहै पड़ै गल पासी, देखत हीरा हाथ यँ जासी ॥
केह पूजा रचि ध्यान लगावै, देवल देखै खबरि न पावै ।
तोरै पाती जुगति न जानी, इहि भ्रमि रहे भूलि अभिमानी ॥
तीरथ बरत न पूजै आसा, बनखंडि जाहीं रहै उदासा ।
यूँ तप करि करि देह जलावै, भरमत डोलै जनम गंवावै ॥
सतगुर मिलै न संसा जाई, ये बंधन सब देखै छुड़ाई ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति माहिँ लखावै ॥

जगत मिथ्या

मन रे तू देखै सो नाहीं, है सो अगम अगोचर माहीं ॥ टेक ॥
निस अंधियारी कछू न सूझै, ससै सरप दिखावा ।
ऐसै अंध जगत नहिँ जानै, जीव जेवड़ी खावा ॥
मृग-जल देखि तहाँ मन धावै, दिन दिन भूठी आसा ।
जहँ जहँ जाइ तहाँ जल नाहीं, निहचै मरै पियासा ॥
भरम बिलास बहुत बिधि कीन्हा, ज्यौ सुपिनै सुख पावै ।
जागत भूठ तहाँ कुछ नाहीं, फिरि पीछें पछितावै ॥
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भरम बिलाना ।
दादू अंत इहाँ कुछ नाहीं, है सो सोधि सयाना ॥

निंदक

न्यंदक बाबा बीर हमारा, बिनही कौड़े बहे विचारा ।
कर्म कोटि के कुसमल काटै, काज संवारै बिनही साटै ।
आपण डूबै और कौ तारै, ऐसा प्रीतम पार उतारै ॥
जुगि-जुगि जीवौ न्यंदक मोरा, राम देव तुम करौ निहोरा ।
न्यंदक बपुरा पर-उपगारी, दादू न्यंथा करै हमारी ॥

कपट भक्ति

हम पाया हम पाया रे भाई ।
 भेष बनाइ ऐसी मनि आई ॥ टेक ॥
 भीतर का यहु भेद न जानै ।
 कहै सुहागनि क्यूँ मन मानै ॥
 अंतर पीव सौं परचा नाही ।
 भई सुहागनि लोगन माही ॥
 साईं सुपिनै कबहु न आवै ।
 कहिवा ऐसैं महल बुलावै ॥
 इन बातन मोहिं अचिरज आवै ।
 पटम किये पिव कैसैं पावै ॥
 दादू सुहागनि ऐसैं कोई ।
 आपा मेटि राम रत होई ॥

सुंदरदास

सुंदरदास

कहा जाता है कि बाबा दादू दयाल के ५२ शिष्य थे और उनमें से एक प्रधान शिष्य सुंदरदास जी भी थे। इनका जन्म घोसा (जयपूर राज्य) में चैत्र शुक्ला नवमी सं० १६५३ में हुआ था। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का सती देवी था। यह लोग बूसर गोत्र के खंडेलवाल वैश्य थे। इनकी माता का जन्म एक सोंकिया गोत्र के खंडेलवाल महाजन के यहां हुआ था। इनकी उत्पत्ति के संबंध में भी एक अलौकिक सी कथा प्रसिद्ध है। पहले साधुओं में यह प्रथा थी कि जब कपड़े की आवश्यकता पड़ती थी तो लोगों के यहां से सूत मांग लिया करते थे। जग्गा नाम का दादू का एक शिष्य एक दिन सूत इकट्ठा करने के अभिप्राय से संयोग से सती देवी के द्वार पर उपस्थित हुआ और फक्कीरों की सधुक्कड़ी बोली में सवाल किया—

‘दे माई सूत ले माई पूत’

संयोग से कुमांगी सती देवी उस समय बैठी चरखा कात रही थी। उसने बालिकोचित सरल भाव से अपने कते हुए सूत से थोड़ा सा निकाल कर जग्गा को देते हुए कहा—‘लो बाबाजी सूत’। बाबाजी क मुंह से भी निकल पड़ा—‘ले माई पूत’। लौट कर जग्गा ने यह वृत्तांत अपने गुरु दादू को सुनाया। उन्होंने ध्यान से जब इस विषय पर विचार तो बड़े सकट में पड़े। कहने लगे जग्गा तूने यह क्या वचन दे डाला, उस लड़की के भाग्य में तो पुत्रवती हाना लिखा ही नहीं है, पर अब तेरे वचन की रक्षा तो होनी ही चाहिए। अब यही एक उपाय है कि तू ही जाकर सती के गर्भ में बास कर। जग्गाजी ने उदाम होकर कहा जो आज्ञा पर अपने चरण से अलग न करियेगा। दादू ने उसे ढाढ़स देते हुए कहा कि कोई चिंता नहीं, तू जाकर सती के माना पिता से यह कह आ कि सती के विवाह के समय व उनके पति तथा सास ससुर का यह जता द कि इस संबंध से जो प्रथम पुत्र हागा वह परम भक्त हागा और ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही वैराग्य ले लेगा।

उप्युक्त कथानक के सत्यासत्य पर विचार करने को आवश्यकता नहीं है, पर इतना तो तथ्य है कि सती का ब्याह जयपूर राज्यांतगत घोसा (जयपूर राज्य की पुरानी राजधानी) परमानंद नामक महाजन से हुई था और दादू की मृत्यु के १५ वर्ष पहले (सं० १६५३) सुंदरदास का जन्म हुआ और यह बालक सं० १६५९ में दादू के दशम क थोड़े दिन बाद ही घर बाहर छोड़ विरक्त हो

विद्याभ्यास के लिये काशी चल पड़ा था। इस वृत्तांत की पुष्टि भक्तमाल में आए हुए राघवदास के निम्नलिखित पद्य से होती है—

दिवसा है नम्र चोखा बूसर है साहूकार,
सुंदर जनम लियो ताहि घर आइ कै।
पुत्र की चाहि पति दई है जनाइ,
त्रिया कह्यो समुझाइ स्वामी कहौ सुखदाइ कै॥
स्वामी मुख कही सुत जनमैगो सही,
पै बिराग लैगो वही घर रहै नहीं माइ कै।
एकादस बरस में त्याग्यो घर माल सब,
वेदांत पुरान सुने बारानसी जाइ कै॥

कुछ विद्वानों की धारणा है कि सं० १६५९ में जब दादू जी द्यौसा गए थे उसी समय ये दादू के शिष्य हो गए और उन्हीं के साथ निकल पड़े और नगाणा में उनके स्वर्गवास (सं० १६६०) तक बराबर उन्हीं के साथ रहे। कहते हैं कि पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार ही परमानंद (सुंदरदास के पिता) ने पुत्र को दादू के चरणों में समर्पित कर दिया। दादू ने पुत्र को प्यार करते हुए कहा यह बालक तो बड़ा सुंदर है। किसो किसी के अनुसार इनके प्रथम शब्द यह थे 'अरे सुंदर तू आगया' (अर्थात् जगगा तू सुंदर के रूप में अथवा सुंदर रूप में पुनः प्रगट हो गया) कहते हैं दादू के प्यार करते ही सुंदर के शरार की कांति सहस्रधा बढ़ गई और उसका मन भी परिवर्तित हो गया और उसने मरते दम तक दादू का साथ न छोड़ा। इनके सौम्य और सुश्री रूप की प्रशंसा बहुत प्रबल है और जान पड़ता है वास्तव में यह 'सुंदर' रहे होंगे। इनका नाम 'सुंदर' दादू का रक्खा हुआ हो कहा जाता है।

कहते हैं दादू जी की मृत्यु के बाद उनके पुत्र और उत्तगधिकारी गरीबदासजी ने ईर्ष्यावश सुंदर का कुछ अपमान किया था जिससे खिन्न हो यह कुछ दिन के लिये एक बार फिर अपने माता पिता के पास चले आए थे और प्रायः तीन या चार वर्ष घर में ही रहे पर दूरिचर्चा के सिवाय इनका और कोई काम न था। अंत में सं० १६५४ में जब सुंदरदास जी लगभग ग्यारह वर्ष के रहे होंगे, यह जगज्जीवन नाम के एक संस्कृत के विद्वान् के संपर्क में आए। उसने इन्हें काशी चलकर विद्याध्ययन की सलाह दी और ये तैयार भी हो गए। कहा जाता है तब से लेकर १९ वर्ष तक (सं० १६८३ तक) इन्होंने काशी के प्रकांड पंडितों के यहां संस्कृत साहित्य का व्यापक और गंभीर अध्ययन किया। साथ ही वहां के साधु-संतों का सतसंग भी खूब किया। सं० १६८३ के लगभग यह फिर राजपुताने लौटे और फतेहपुर के शेखाबाटो नामक स्थान पर अपने एक पुराने गुरु भाई बाबा प्रागदास के साथ रहने लगे। वहां पर महाजनों का इनकी स्मृति में बनवाया हुआ एक पक्का

मकान और एक कुँआ अब भी मौजूद है। यहाँ पर वह प्रायः १५ वर्ष तक रहे। सं० १५९९ में इनके प्रिय सुहृद् बाबा प्रागदास जी की मृत्यु हो गई और इसके बाद इनका जी शेखाबादा से उचट गया और फिर इन्होंने देशाटन और सत्संग में अपना जीवन बिताना आरंभ किया। उत्तरोय भारत, पंजाब और राजपुताने में ही इनके अधिक घूमने के प्रमाण मिलते हैं। गुजरात और काठियावाड़ प्रांतां में भी इनके घूमने के प्रमाण मिले हैं।

घूम फिर कर इन्होंने फिर कुछ दिन फतेहपुर में निवास किया था पर अंत में सं० १७४० में यह साँगनेर (जयपुर से ८ मील दक्खिन) चले गए। वहाँ दादू के एक प्रधान शिष्य रज्जब जी रहते थे। यहीं पर उन्होंने अपने अंतिम दिन काटे। इस समय इनकी अवस्था ९० वर्ष के ऊपर थी। सं० १७४६ में यह कुछ रोगग्रस्त हुए और बीमारी बढ़ती ही गई पर साथियों के बहत आग्रह करने पर भी इन्होंने गुरु और ईश्वर गुण गान के अतिरिक्त किसी औषधि का सेवन नहीं किया और अंत में उसी साल कार्तिक सुदी अष्टमी वृहस्पतिवार के दिन परलोक सिधारे। इन्होंने अंत समय जो वचन कहे थे वह अंत सगय की साखी' के नाम से प्रसिद्ध हैं और प्रस्तुत संग्रह में दिए गए हैं।

इनका रचनाकाल इनके काशी से लौटने के बाद आरंभ होता है। संत कवियों में यही एक ऐसे थे जिनकी शिक्षा और प्रतिभा दोनों ही विलक्षण थीं। इसके सिवा शास्त्रोक्त काव्यकला में भी यही एक प्रवीण थे। अन्य संत कवियों की भांति इन्होंने केवल भजन के योग्य शब्द और पद ही नहीं कहे हैं। उच्चकोटि के प्रथम श्रेणी के कवियों के समकक्ष इन्होंने अनेक कवित्त सवैया भी रचे हैं। भाषा भी इनकी वही सधुक्कड़ी बोली नहीं बल्कि सुंदर मंजी हुई सुव्यवस्थित पर ईषत् राजस्थानी-रंजित ब्रजभाषा है। सारांश यह कि भक्तिरस के साथ साथ उच्च कोटि की साहित्यिकता का परिचय देने वाले यही एक संत कवि हो गए हैं। इनके कवित्त सवैयाओं में, यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि तथा विविध अर्थालंकारों की भी अच्छी बहार देखने में आती है। और सब तो केवल संत थे, पर ये संत तो थे ही, साथ ही प्रथम श्रेणी के कवि और विद्वान् भी थे। यही कारण था कि इनकी रचना में इस प्रकार देशकाल तथा समाज की रीति नीति तथा लोक मर्यादा की अवहेलना नहीं खटकती। इसके साथ ही शास्त्रसम्मत लोक, धर्म तथा वेद पुराण आदि की उत्तरदायित्व शून्य आलोचना भी इनके काव्य में नहीं है। अर्थशून्य अनूठी या इन उटपटांग उक्तिओं से इन्हें चिढ़ थी जिनका मुख्य उद्देश्य शायद अशिक्षित जनता पर प्रभाव डालता ही रहा होगा। इनके दाशेनिक सिद्धांतों, सृष्टितत्त्व तथा आत्मा परमात्मा आदि आध्यात्मिक विषयों से संबंध रखने वाले पदों में वैसी रहस्यपूर्ण या उटपटांग तथा समझ में न आनेवाली बातें नहीं कही गई हैं जैसी कि कबीर के पदों में मिलती हैं। इनके

वचन अधिकतर शास्त्रसम्मत हुए हैं। इनकी को कविता में हास्य और विनोद का भी अच्छा पुट देखने में आता है। भिन्न भिन्न देशों के रस्म रिवाज पर इनकी बड़ी मनोरंजक उक्तियां मिलती हैं।

इनके मुख्य ग्रंथ 'ज्ञान-समुद्र' और 'लघु-ग्रंथावली', 'साखी', 'पद' 'सुंदर-बिलास' हैं। यों तो छोटे बड़े इनके २२ ग्रंथ मिलते हैं पर इनका प्रधान ग्रंथ 'सुंदर बिलास' है। इसका का एक उत्तम संस्करण 'सुंदर-सार' नाम से काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने जयपुर के पुरोहित हरिनारायण जी बी० ए० द्वारा संपादित करा प्रकाशित किया है। प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस ने भी 'सुंदर-बिलास' प्रकाशित किया है। प्रस्तुत संग्रह में दोनों की सहायता ली गई है।

सुंदरदास

पतिव्रता

एक सही सब के उर अंतर, ता प्रभु कूँ कहु काहि न गावै ।
संकट माहिँ सहाय करै पुनि, सो अपनो पति क्यूँ बिसरावै ॥
चार पदारथ और जहाँ लगि, आठहु सिद्धि नवौ निधि पावै ।
सुंदर छार परौ तिनके मुख, जो हरि कूँ तजि आन कूँ ध्यावै ॥

जल को सनेही मीन बिहुरत तजै प्रान ।
मणि बिनु अहि जैसे जीवत न लहिये ॥
स्वाति बुंद को सनेही, प्रगट जगत माँहि ।
एक सीप दूसरो सु, चातक हु कहिये ॥
रवि को सनेही पुनि, कमल सरोवर में ।
ससि को सनेही हू, चकोर जैसे रहिये ॥
तैसे ही सुंदर एक, प्रभु सँ सनेह जोरि ।
और कछु देखि, काहू और नहि बहिये ॥

गुरुदेव

गोबिंद के किये जीव, जात है रसातल को ।
गुरु उपदेसे से तो, छूटै जमफंद तें ॥
गोबिंद के किये, जीव बस परे कर्मन के ।
गुरु के निवाजे से, फिरत है स्वछंद तें ॥
गोबिंद के किये, जीव बूझत भवसागर में ।
सुंदर कहत गुरु काढ़ै दुख दूंदे तें ॥
और हू कहाँ लौँ कछू मुख तें कहूँ बनाय ।
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोबिंद तें ॥

सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु,
सत्त्व रजो तम ताप निवारी ।

इंद्रिय देह मृषा करि जानत,
 सीतलता समता उर धारी ।
 व्यापक ब्रह्म बिचार अखंडित,
 द्वैत उपाधि सबै जिन टारी ।
 सबद सुनाथ सेंदेह मिटावत,
 सुंदर वा गुह की बलिहारी ।

बिरह उराहना

हम कूँ तौ रैन दिन, संक मन माहिँ रहै ।
 उनकी तौ बातिन में, ठीकहु न पाइये ॥
 कबहुँ सेंदेसा सुनि, अधिक उछाह होइ ।
 कबहुँक रोइ रोइ, आँसुन बहाइये ॥
 औरन के रस बस, होइ रहे प्यारे लाल ।
 आवन की कहि कहि, मह कूँ सुनाइये ॥
 सुंदर कहत ताहि, काटिये सु कौन भाँति ।
 जोइ तर आपने सु, हाथ तें लगाइये ॥

पीव को अंदेसा भारी, तो सूँ कहुँ सुन प्यारी ।
 यारी तौरि गये सों तौ, अजहुँ न आये है ॥
 मेरे तौ जीवन प्राण, निसि दिन उहै ध्यान ।
 मुख सूँ न कहुँ आन, नैन उर लाये हैं ॥
 जब तें गये बिछोहि, कल न परत मोहि ।
 ता तें हूँ पूछत तोहि, किन बिरमाये है ॥
 सुंदर बिरहिनी को, सोच सखी बार बार ।
 हम कूँ बिसार अब, कौन के कहाये हैं ॥

अजपा जाप

स्वासों स्वास राति दिन सोहं सोहं होइ जाप ।
 याही माला बारंबार दढ़ कै धरतु हैं ॥
 देह परे इंद्री परे अंतःकरण परे ।
 एकही अखंड जाप ताप कूँ हरतु है ॥
 काठ की रुद्राच्छ की रु सूतहू की माला और ।
 इनके फिराये कछु कारज सरतु है ॥

सुंदर कहत तातें आतमा चैतन्य रूप ।
आप को भजन सो तो आपही करतु है ॥

अद्वैत

जैसे ईख रस की मिठाई, भौंति भौंति भई ।
फेरि करि गारे, ईख रस ही लहतु है ॥
जैसे घृत थीज के, डरा सो बांधि जात पुनि ।
फेर पिघले तें, वह घृत ही रहतु है ॥
जैसे पानी जमि के, पषाण दू सो देखियत ।
सो पषाण फेरि, पानी होय के बहतु है ॥
तैसे ही सुंदर यह, जगत है ब्रह्म मै ।
ब्रह्म सो जगतमय, वेद सु कहतु है ॥

ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि, अरूप अखंडित है सब माहीं ।
ईसुर पावक रासि प्रचंड जू, संग उपाधि लिये बताहीं ॥
जीवत अनंत मसाल चिराग, सु दीप पतंग अनेक दिखाहीं ।
सुंदर द्रवैत उपाधि मिटै जब, ईसुर जीव जुदे कछु नाहीं ॥

शूर

असन बसन बहु, भूषण सकल अंग ।
संपति विविधि भौंति भरयो सब घर है ॥
स्रवण नगारो सुने छिनक में छाड़ि जात ।
ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहाँ मर है ॥
मन में उछाह रण माहिं दूक दूक होइ ।
निर्भय निसंक वा के रंचहू न डर है ॥
सुंदर कहत कोउ, देह को ममव नाहिं ।
सूरमा को देखियत, सीस विनु घर है ॥

पाँव रोपि रहै, रण माहिं रजपूत कोऊ ।
हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है ॥
बाजत जुभाऊ सहनाई सिंधु राग पुनि ।
सुनतहि कायर की, छूटि जात कल है ॥
भलकत बरछी, तिरछी तरवार बहै ।
मार मार करत परत खल भल है ॥
ऐसे जुद्ध में अडिग सुंदर सुभट सोइ ।
घर माहि सूरमा, कहावत सकल है ॥

बिचार

देह ओर देखिये तौ, देह पंचभूतन को ।
 ब्रह्मा कर कीट लग देह ही प्रधान है ॥
 प्राण ओर देखिये तौ, प्राण सबही के एक ।
 छुधा पुनि तृषा दोऊ, व्यापत समान है ॥
 मन ओर देखिये तौ, मन को सुभाव एक ।
 संकल्प विकल्प करै, सदा ही अज्ञान है ॥
 आतम बिचार किये, आतमा ही दीसै एक ।
 सुंदर कहत कोऊ दूसरो न आन है ॥

एकहि कूप तें नीरहि सींचत, ईख अफीमहि अंब अनारा ।
 होत उहै जल स्वाद अनेकनि, मिष्ट कटूक खटा अरु खारा ॥
 ल्यूँही उपाधि संजोग तें आतम, दीसत आहि मिल्यो सबिकारा ।
 काढ़ि लिये सुबिबेक बिचार सु, सुंदर सुद्ध सरूपहि न्यारा ॥

मन

घेरिये तौ घेरे हू, न आवत है मेरो पूत ।
 जोई परबोधिये सो कान न धरतु है ॥
 नीति न अनीति देखै, सुभ न असुभ पेखै ।
 पल ही में होती, अनहोती हू करतु है ॥
 गुरु की न साधु की न लोक बेदहू की संक ।
 काहू की न मानै न तौ काहू तैं डरतु है ॥
 सुंदर कहत ताहि, धीजिये सु कौन भाँति ।
 मन की सुभाव कछु कह्यो न परतु है ॥

पलही में मरि जाय पलही में जीवतु है ।
 पलही में पर हाथ, देखत भिकानो है ॥
 पलही में फिरै नवखड हू ब्रह्माँड सब ।
 देख्यो अनदेख्यो सोतौ, या तें नहिं छानो है ॥
 जातो नहिं जानियत, आवतो न दीसै कछु ।
 ऐसे सी बलाइ अब, तासूं परथो पानो है ॥
 सुंदर कहत याको, गति हूँ न लखि परै ।
 मन की प्रतीत कोऊ, करै सो दिवानो है ॥

तो सों न कपूत कोऊ, कितहुं न देखियत ।
 तो सों न सपूत कोऊ, देखियत और है ॥
 तू ही आप भूलै महा, नीचहु तें नीच होइ ।
 तू ही आप जानै तौ, सकल सिर मोर है ॥
 तू ही आप भ्रमै तब, जगत भ्रमत देखै ।
 तेरे स्थित भये सब, ठौर ही को ठौर है ॥
 तू ही जीव रूप तू ही, ब्रह्म है अकासवत ।
 सुंदर कहत मन, तेरी सब दौर है ॥

बचन बिबेक

और तौ बचन ऐसे, बोलत है पसु जैसे ।
 तिन के तौ बोलिबे में, ढंगहुं न एक है ॥
 कोऊ रात दिवस, बकत ही रहत ऐसे ।
 जैसी बिधि कूप में, बकत मानो मेक है ॥
 बिबिधि प्रकार करि, बोलत जगत सब ।
 घट घट प्रतिमुख बचन अनेक है ॥
 सुंदर कहत तातें बचन बिचारि लेहु ।
 बचन तो वहे जा में, पाइये बिबेक है ॥

बोलिये तौ तब जब, बोलिबे की सुधि होइ ।
 न तौ मुख मौन गहि, चुप होइ रहिये ॥
 जोरिये तौ तब जब, जोरिबे की जानि परै ।
 तुक छंद अरथ अनू जा में लहिये ॥
 गाइये तौ तब जब, गाइबे को कंठ होइ ।
 सवण के सुनत ही मन जाइ गहिये ॥
 तुक-भंग-छंद-भंग, अरथ मिलै न कछु ।
 सुंदर कहत ऐसी, बाणी नहीं कहिये ॥

एकनि के बचन सुनत, अति सुख होइ ।
 फूल से भूत हैं, अधिक मनभावने ॥
 एकनि के बचन तौ, असि मानौ बरसत ।
 सवण के सुनत, लगत अलखावने ॥

एकनि के बचन कटुक कहु विष रूप ।
 करत मरम छेद-दुक्ख उपजावने ॥
 सुंदर कहत घट घट में बचन मेद ।
 उत्तम मध्यम अरु अधम सुहावने ॥

निःसंशय ज्ञानी

भावै देह छूटि जाहु कासी माहिँ गंगा तट ।
 भावै देह छूटि जाहु, छेत्र मगहर में ॥
 भावै देह छूटि जाहु, बिप्र के सदन मध्य ।
 भावै देह छूटि जाहु, स्वपच के घर में ॥
 भावै देह छूटि देस आरज अनारज में ।
 भावै देह छूटि जाहु बन में नगर में ॥
 सुंदर शानी के कछु संसय रहत नहिं ।
 सुरग नरक सब, भागि गयो नर में ॥

विश्वास

जगत में आइके, विसारयो है जगतपति ।
 जगत कियो है सोई जगत भरतु है ॥
 तेरे निसि दिन चिता, औरहि परी है आइ ।
 उद्यम अनेक, भौंति भौंति के करतु है ॥
 इत उत जायके, कमाई करि लाऊँ कछु ।
 नेक न अज्ञानी नर धीरज धरतु है ॥
 सुंदर कहत एक प्रभु के, बिस्वास बिनु ।
 बादहि कूँ वृथा सठ पचि के मरतु है ॥

धीरज धारि बिचार निरंतर, तेहि रच्यो सोइ आपुहि ऐहै ।
 जेतिक भूक लगी घट प्राणहि, तेतिक तू अन्यारहि पैहै ॥
 जो मन में तृस्ना करि धावत, तौ तिहुँ लोक न खात अपैहै ।
 सुंदर तू मत सोच करै कछु, चौँच दई जिन चूनहु दैहै ॥

प्रेम ज्ञानी

द्वंद बिना बिचरै बसुधा पर, जा घट आतम ज्ञान अपारो ।
 काम न क्रोध न लोभ न मोह, न राग न द्वेष न महर न थारो ॥
 जोग न भोग न त्याग न संग्रह, देह दसा न ढँक्यो न उषारो ।
 सुंदर कोउक जानि सकै यह, गोकुल गाँव को पैंडोहि न्यारो ॥

ज्ञानी

ज्ञानी कर्म करै नाना विधि, अंहकार या तन को खोवै ।
कर्मन को फल कछु न जोवै, अंतःकरण बासना धोवै ॥
ज्यूँ कोऊ खेती कूँ जोतत, लेकर बीज भूनि के बोवै ।
सुंदर कहै सुनो दृष्टांतहि, नाँगि नहाई कहा निचोवै ॥

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि ।
क्रिया सो करत दीसै यूँही नित प्रीत है ॥
काहू कूँ निकट राखै, काहू कूँ तौ दूर भाखै ।
काहू सँ नेरे न दूर ऐसी जाकी मति है ॥
रागद्वेष न द्वेष कोऊ, सोक न उल्लाह दोऊ ।
ऐसी विधि रहै कहुँ रति न बिरति है ॥
बाहिर न्योहार ठानै, मन में सुपन जानै ।
सुंदर ज्ञानी की कछु, अद्भुत गति है ॥

तमोगुण बुद्धि सोतौ, तवा के समान जैसे ।
ताके मध्य सूरज की, रंचहु न जोत है ॥
रजोगुण बुद्धि जैसे, आरसी की औधी ओर ।
ताके मध्य सूरज की, कछुक अद्योत है ॥
सच्चगुण बुद्धि जैसे, आरसी की सूधी ओर ।
ताके मध्य प्रतिबिंब सूरज की पोत है ॥
त्रिगुण अतोत जैसे प्रतिबिंब मिटि जात ।
सुंदर कहत एक सूरज ही होत हैं ॥

संख्या ज्ञान

देह के संजोग ही तें, सीत लगै घाम लगै ।
देह के संजोग ही तें छुधा तृषा पौन कूँ ॥
देहके संजोग ही ते' कटुक मधुर स्वाद ।
देह के संजोग कहै खाटो खारो लौन कूँ ॥
देह के संजोग कहै मुख ते' अनेक बात ।
देह के संजोग ही, पकरि रहै मौन कूँ ॥

सुंदर देह के संजोग दुःख मानै सुख मानै ।
देह के संजोग गये, दुख सुख कौन कूँ ॥

छीर नीर मिले दोऊ, एकठे ही होइ रहे ।
नीर जैसे छाड़ि हंस, छीर कूँ गहतु है ॥
कंचन में और धातु, मिलि करि बनि परयो ।
सुद्ध करि कंचन सुनार ज्यूँ लहतु है ॥
पावक हूँ दारु मध्य, दारु हूँ सो होइ रखो ।
मथि करि काढै वह, दारु कूँ दहतु है ॥
तैसे ही सुंदर मिल्यो, आतमा अनातमा जु ।
भिन्न भिन्न करै सो तो सांख्य ही कहतु है ॥

साध के लक्षण

धूलि जैसो धन जाके, सूलि सो संसार सुख ।
भूलि जैसो भाग देखौ अंत कैसी यारी है ॥
पाप जैसी प्रभुताई, साप जैसो सनमान ।
बढ़ाई बिच्छुन जैसी, नागिनी सी नारी है ॥
अग्नि जैसो इंद्रलोक, बिभि जैसो बिधि लोक ।
कीरति कलंग जैसी, सिद्ध सी ठगारी है ॥
बासना न कोई वाकी ऐसी मति सदा जाकी ।
सुंदर कहत ताहि, बंदना हमारी है ॥

आत्म अनुभव

है दिल में दिलदार सही, अखियाँ उलटी करि ताहि चितैये ।
आब में खाक में बाद में आतस, जानि में सुंदर जानि जनैये ॥
नूर में नूर है तेज में तेजहि, ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जैये ।
क्या कहिये कहते न बनै कछु, जो कहिये कहते हि लजैये ॥

काहूँ कूँ पूछत रंक, धन कैसे पाइयत ।
कान देके सुनत, स्वर्ण सोई जानिये ॥
उन कह्यो धन हम, देख्यो है फलानी ठौर ।
मनन करत भयो, कब घर आनिये ॥
फेरि जब कह्यो धन गढ़्यो तेरे घर माहिँ ।
खोदन लाग्यो है तब, निदिध्यास ठानिये ॥

धन निकस्यो है जब, दारिद गयो है तब ।
सुंदर साक्षात्कार, नृपति बखानिये ॥

न्याय सास्त्र कहत है, प्रगट ईसुरवाद ।
मीमांसाहि सास्त्र माहिँ कर्मवाद कह्यो है ॥
वैशेषिक सास्त्र पुनि, कालवादी है प्रसिद्ध ।
पातंजलि सास्त्र माहिँ, योगवाद लह्यो है ॥
सांख्य सास्त्र माहिँ पुनि प्रकृति पुरुष वाद ।
वेदांत जु सास्त्र तिन, ब्रह्मवाद गह्यो है ॥
सुंदर कहत षटसास्त्र, माहिँ भयो वाद ।
जाके अनुभव ज्ञान, वाद में न बह्यो है ॥

वाचक ज्ञान

ज्ञानी की सी बात कहै, मन तौ मलिन रहै ।
बासना अनेक भरि, नेक न निवारी है ॥
जैसे कोऊ आभूषण, अधिक बनाई रखै ।
कलई ऊपरि करि, भीतर भंगारी है ॥
ज्यूही मन आवै त्यूही, खेलत निसंक होइ ।
ज्ञान सुनि सीखिलियो, ग्रंथ न बिचारी है ॥
सुंदर कहत बाके, अटक ना कोऊ आहि ।
जोई वा सँ मिलै जाइ, तीही कू बिगारी है ।

देह सँ ममत्त्व पुनि गेह सँ ममत्त्व ।
सुत दाण सँ ममत्त, मन माया में रहतु हैं ॥
थिरता न लहै जैसे, कंदुग चौगान माहिँ ।
कर्मनि के बस मारयो, धका कू बहुत है ॥
अंतःकरण सदा, जगत सँ रचि रह्यो ।
मुख सँ बनाय बात ब्रह्म की कहतु है ॥
सुंदर अधिक मोहिँ, याही तें अचंभो आहि ।
भूमि पर परयो कोऊ चंद कू गहतु है ॥

सतसंग

जो कोइ जाइ मिलै उन सँ नर, होत पवित्र लगै हरि रंगा ।
 दोष कलंक सबै मिटि जाइसु, नीचहु जाई जु होत उतगा ॥
 ज्यू जल और मलीन महा अति, गंग मिल्या हुइ जातहि गंगा ।
 सुंदर सुद्ध करै ततकाल जु, है जग माहि बड़ो सतसंगा ॥

प्रीति प्रचंड लगै पर ब्रह्महि, और सबै कछु लागत फीको ।
 सुद्ध हृदय मन होइ सु निर्मल, द्वैत प्रभाव मिटै सब जी को ॥
 गोष्ठि व ज्ञान अनंत चलै जहँ, सुंदर जैसो प्रवाह नदी को ।
 ताहितें जानि करौ निसि बासर, साधु को संग सदा अति नीको ॥

दुष्ट

अपने न दोष देखे, और के औगुण पेखे ।
 दुष्ट को सुभाव, उठि निंदा ही करतु है ॥
 जैसे कोई महल संवारि राख्यो नीके करि ।
 कीरी तहाँ जाय छिद्र ढूँढत फिरतु है ॥
 भोरही तें साँझ लग, साँझही तें भोर लग ।
 सुंदर कहत दिन ऐसे ही भरतु है ॥
 पाँव के तरे की नहीं सूखे आग मूरख कूँ ।
 और सँ कहत तेरे, सिर पै बरतु है ॥

सर्प डसै सु नहीं कछु तालुक, बीछू लगै सु भले करि मानौ ।
 सिंहहु खाय तु नाहिँ कछू डर, जो गज मारत तौ नहिँ हानौ ॥
 आगि जरो जल बूढ़ि मरौ, गिरि जाइ गिरौ कछु मै मत आनौ ।
 सुंदर और भले सबही यह, दुर्जन संग भलो जिनि जानौ ॥

आपनु काज सँवारन के हित, और कु काज बिगारत जाई ।
 आपनु कारज होउ न होउ, बुरो करि और कुँ डारत भाई ॥
 आपहु खोवत औरहु खोवत खोइ दुनों घर देत बहाई ।
 सुंदर देखत ही बनि आवत, दुष्ट करै नहिँ कौन बुराई ॥

तृष्णा

किधौं पेट चूल्हो कीधौं, भाठि किधौं भाड़ आहि ।
 जोइ कछु भोकिये, सो सब जरि जातु है ॥
 किधौं पेट थल किधौं, बापि किधौं सागर है ।
 जेतो जल परै ते तो, सकल समातु है ॥
 किधौं पेट दैत किधौं, भूत प्रेत राच्छस है ।
 खाउं खाउं करै कछु, नेक न अघातु है ॥
 सुंदर कहत प्रभु, कौन पाप लायो पेट ।
 जब ही जनम भयो, तब ही को खातु है ॥

जो दस बीस पचास भये सत ।
 होइ हजार तु लाख मँगैगी ॥
 कोटि अरब खरब असंख्य ।
 पृथ्वीपति होन कि चाह जगैगी ॥
 स्वर्ग पताल को राज करौं ।
 तृष्णा अधिकी अति आग लगैगी ॥
 सुंदर एक संतोष बिना सठ ।
 तेरी तो भूख कभी न भगैगी ॥

करम धरम

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो, पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी ।
 मेघ सहै सिर सीत सहै तन, घूप समय जु पंचागिनि बारी ॥
 भूख सहै रहि रूख तरे, सुंदरदास सहै दुख भारी ।
 ढासन छाड़ि के कासन ऊपर, आसन मारि पै आसन न मारी ॥

मेघ सहै सीत सहै सीस पर घाम सहै ।
 कठिन तपस्या करि कद मूल खात है ॥
 जोग करै जज्ञ करै, तीरथ रु व्रत करै ।
 पुन्य नाना विधि करै मन में सुहात है ॥
 और देवी देवता उपासना अनेक करै ।
 आँबन की हौस कैसे आक डोंड़े जात है ॥
 सुंदर कहत एक रवि के प्रकास बिनु ।
 जेगना की जोति कहा रजनी बिलात है ॥

कामिनी

रसिक प्रिया रस मँजरी, और सिंगारहि जान ।
 चतुराई करि बहुत विधि, बिषय बनाई आन ॥
 विषय बनाई आन, लगत विषयिन कूँ प्यारी ।
 जागे मदन प्रचंड, सराहै नखसिख नारी ॥
 ज्यूं रोगी मिष्ठान खाइ, रोगहि बिस्तारै ।
 सुंदर ये गति होइ, रसिक जो रस प्रिया धारै ॥

कामिनी की तनु मानु कहिये सधन बन ।
 वहाँ कोऊ जाय सो तौ भूले ही परतु है ॥
 कुंजर है गति कटि केहरी को भय जा में ।
 बेनी काली नागिनीऊ फन कूँ धरतु है ॥
 कुच हैं पहार जहाँ काम चोर रहै तहाँ ।
 साधि के कटाच्छ बान प्रान कूँ हरतु है ॥
 सुंदर कहत एक और डर जा में अति ।
 राच्छसी बदन खौँउ खौँउ ही करतु है ॥

चितावनी

मातु पिता युवती सुत बाँधव ।
 लागत है सब कूँ अति प्यारो ॥
 लोक कुटुंब खरो हित राखत ।
 होइ नहीं हम तैं कहुँ न्यारो ॥
 देह सनेह तहाँ लग जानहु ।
 बोलत है मुख सबद उचारो ॥
 सुंदर चेतन सक्ति गई जब ।
 बेगि कहै घरबार निकारो ॥

तू कछु और विचारत है नर ।
 तेरो विचार घरबो ही रहैगो ॥
 कोटि उपाय करै धन के हित ।
 भाग लिख्यो तितनोहि लहैगो ॥
 भोर कि साँझ घरी पल मौँझ सु ।
 काल अचानक आइ गहैगो ॥

राम भज्यो न कियो कछु सुकिरत ।
सुंदर यूँ पछताइ रहैगो ॥

उपदेश

सोवत सोवत सोइ गयो सठ, रोवत रोवत कै बेर रोयो ।
गोवत गोवत गोइ धरयो धन, खोवत खोवत तैं सब खोयो ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन, बोवत बोवत लै बिष बोयो ।
सुंदर सुंदर राम भज्यो नहिं, ढोवत ढोवत बोझहिं ढोयो ॥

कार उहै अविहार रहै नित, सार उहै जु असारहि नाखै ।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर, नीति उहै जु अनीतिन भाखै ॥
तंत उहै लगि अत न टूटत, संत उहै अपनो सत राखै ।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब, स्वाद उहै रस सुंदर चाखै ॥

मिश्रित

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और ।
चित्त सों न चंदन सनेह सों न सेहरा ॥
हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन ।
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा ॥
सील सों न स्नान अरु ध्यान सों न धूप और ।
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा ॥
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और ।
आतम सों देव नाहि देह सों न देहरा ॥

जा सरीर माहिं तू अनेक सुख मानि रह्यो ।
ताहि तू विचार या में कौन बात भली है ॥
मेद मज्जा मोंस रग रग में रक्त भरयो ।
पेटहू पिटारी सी में ठौर ठौर मली है ॥
हाड़न सँ भरयो मुख हाड़न के नैन नाक ।
हाथ पाउ सोऊ सब हाड़न की नली है ॥
सुंदर कहत याहि देखि जनि भूलै कोई ।
भीतर भँगार भरी ऊपर तौ कली है ॥

पतिव्रत

सुंदर और न ध्याइये, एक बिना जगदीस ।
 सो सिर ऊपर राखिये, मन क्रम बिसवाबोस ॥
 सुंदर पतिव्रत राम सौं, सदा रहै इक तार ।
 सुख देवै तो अति सुखी, दुख तो सुखी अपार ॥
 जो पिय को व्रत लै रहै, कंत पियारी सोइ ।
 अंजन मंजन दूरि करि, सुंदर सनमुख होइ ॥
 प्रीतम मेरा एक तू सुंदर और न कोइ ।
 गुप्त भया किस कारने, काहि न परगट होइ ॥

सुमिरन

सुंदर सतगुरु यों कछ्वा, सकल सिरोमनि नाम ।
 ता कौं निमु दिन सुमरिये, सुख सागर सुखधाम ॥
 हिरदे में हरि सुमरिये, अंतरजामी राइ ।
 सुंदर नीके जतन सौं, अपनी बित्त छिपाइ ॥
 रंक हाथ हीरा चढ़्यो, ता कौ मोल न तोल ।
 घर घर डोलै बेचतो, सुंदर याही मोल ॥
 राम नाम मिसरी पिये, दूरि जाहि सब रोग ।
 सुंदर औषध कटुक सब, जप तप साधन जोग ॥
 राम नाम जाके हिये, ताहि नवै सब कोय ।
 ज्यों राजा की संक तें, सुंदर अति डर होइ ॥
 सुंदर सब ही संत मिलि, सार लियौ हरि नाम ।
 तक्र तजी घृत काढि कै, और क्रिया किहि काम ॥
 लीन भया बिचरत फिरै, छीन भया गुन देह ।
 दीन भई सब कल्पना, सुंदर सुमिरन येह ॥
 भजन करत भय भागिया, सुमिरन भागा सोच ।
 जाप करत जौंरा टल्या, सुंदर साची लोच ॥
 सुंदर भजिये राम को, तजिये माया मोह ।
 पारस के परसे बिना, दिन दिन छीजै लोह ॥
 प्रीति सहित जे हरि भजै, तब हरि होहिँ प्रसन्न ।
 सुंदर स्वाद न प्रीति बिन, भूख बिना ज्यों अन्न ॥
 एक भजन तन सौं करै, एक भजन मन होइ ।
 सुंदर तन मन के परे, भजन अखंडित सोइ ॥
 जाही कौ सुमिरन करै, है ताही को रूप ।
 सुमिरन कीये ब्रह्म के, सुंदर है चिदरूप ॥

बंदगी

सुंदर अंदर पैसि करि, दिल में गोता मारि ।
 तौ दिल ही में पाइये, साईं सिरजनहारि ॥
 सखुन हमारा मानिये, मत खोजै कहूँ दूर ।
 साईं सीने बीच है, सुंदर सदा हजर ॥
 जो यह उसका है रहे, तो वह इसका होइ ।
 सुंदर बातों ना मिलै, जब लग आपन खोज ॥
 सुंदर दिल की सेज पर, औरति है अरवाह ।
 इसको जाग्या चाहिये, साद्विष बेपरवाह ॥
 जो जागै तौ पिय लहै, सोयें लहिये नाहिं ।
 सुंदर करिये बंदगी, तो जाग्या दिल माहिं ॥

गुरुदेव

दादू सतगुरु बंदिये, सो मेरे सिर-मौर ।
 सुंदर बहिया जायथा, पकरि लगाया ठौर ॥
 सुंदर सतगुरु बंदिये, सोई बंदन जोग ।
 औषध सबद दिवाइ करि, दूर कियो सब रोग ॥
 परमेसुर अरु परम गुरु, दोनों एक समान ।
 सुंदर कहत बिसेष यह, गुरु तें पावै ज्ञान ॥
 सुंदर सतगुरु आपु तें, किया अनुग्रह आइ ।
 मोह निसा में सोवतें, हमकौं लिया जगाइ ॥
 सुंदर सतगुरु सारिखा, कोऊ नहीं उदार ।
 ज्ञान खजीना खेलिया, सदा अटूट भँडार ॥
 समदृष्टी सीतल सदा, अद्भुत जाकी चाल ।
 ऐसा सतगुरु कीजिये, पलमें करै निहाल ॥
 सुंदर सतगुरु मिहर करि, निकट बताया राम ।
 जहाँ तहाँ भटकत फिरै, काहे को बेकाम ॥
 गोरखधंधा लोह में, कड़ी लोह ता माहिं ।
 सुंदर जानै ब्रह्म में, ब्रह्म जगत द्वै माहिं ॥
 परमात्म से आत्म, जुदे रहे बहुकाल ।
 सुंदर मेला करि दिया, सतगुरु मिले दयाल ॥
 परमात्म अरु आतमा, उपज्या यह अबिबेक ।
 सुंदर भ्रमतेँ दोय थे, सतगुरु कीए एक ॥
 सुंदर सूता जीय है, जाग्या ब्रह्म स्वरूप ।
 जागन सोवन तें परे, सतगुरु कछा अनूप ॥

मूरख पावै अर्थ कौं , पंडित पावै नाहिं ।
 सुंदर उलटी बात यह , है सतगुरु के माहिं ॥
 सुंदर सतगुरु ब्रह्ममय , पर सिष की चम इष्टि ।
 सूधी आर न देखई , देखै दर्पन पृष्ठ ॥
 सुंदर काटे सोष करि , सतगुरु सोना होइ ।
 सिष सुबरन निर्मल करै , टाँका रहै न कोइ ॥
 नभमनि चितामनि कहै , हीरामनि मनिलाल ।
 सकल सिरोमनि मुकटमनि , सतगुरु प्रगट दयाल ॥
 सुंदर सतगुरु आप तें , अतिही भये प्रसन्न ।
 दूरि किया संदेह सब , जीव ब्रह्म नहिं भिन्न ॥
 सुंदर सतगुरु हैं सही , सुंदर सिच्छा दीन्ह ।
 सुंदर बचन सुनाइ कै , सुंदर सुंदर कीन्ह ॥

बिरह

मारग जोवै बिरहिनी , चितबै पिय की ओर ।
 सुंदर जियरे जक नहीं , कल न परत निस भोर ॥
 सुंदर बिरहिनि अधजरी , दुःख कहै मख रोइ ।
 जरि बरि कै भस्मी भइ , धुवौं न निकसै कोइ ॥
 ज्यों ठगमूरी खाइ कै , मुखहिं न बोलै बैन ॥
 दुगर दुगर देख्या करै , सुंदर बिरहा औन ॥
 लालन मेरा लाडिला , रूप बहुत तुझ माँहि ।
 सुंदर राखै नैन में , पलक उघारै नाँहि ॥
 अब तुम प्रगटहु राम जी , हृदय हमारे आइ ।
 सुंदर मुख संतोष है , आनंद अंग नमाइ ॥

धरनीदास

बाबा धरनीदास का नाम छपरा जिले के माँझी नामक गाँव में सं १७१३ में हुआ था। इनके पिता का नाम परसुराम और माता का विरमा देवी था। इन्होंने कई ककहरे लिखे हैं जिनमें एक में पकार से आरंभ होने वाले पद्य में इन्होंने अपनी उत्पत्ति का वर्णन कर दिया है। वह पद्य यों है—

परसुराम अरु विरमा आई
पुत्र जानि जग हेतु बड़ाई
प्रगटि धरनि इसुर करि दायो
पूरे भाग भक्ति हरि दायो

यह लोग जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे और इनके यहाँ कारिदागिरी या मुनीमी काम तो पुश्तैनी था, साथ ही खेती बारी का काम भी होता था। इनकी शिक्षा भी पहले दीवानी या कारिदागिरी के ही उपयुक्त हुई और इनके पिता परसुराम जी ने इन्हें माँझी के जमींदार के यहाँ दीवान रखवा भी दिया था। यद्यपि ये अपना काम बड़ी तत्परता और योग्यता से करते थे और मालिक ने इन पर पूरा भरोसा कर सारा कारबार इन्हीं को सौंप रक्खा था, तो भी इनका हृदय सदा आध्यात्मिक अनुशीलन में ही लीन रहा करता था पर इनके मालिक को इन बातों की कुछ खबर न थी। ये परमात्मचिंतन ऐसे समय और स्थान में और कुछ इस रीति से करते थे कि किसी को कुछ पता नहीं चलता था। उपदेश देने या दसबीस साधुओं और श्रोताओं को इकट्ठा कर सार्वजनिक रूप से ईश गुणगान या सत्संग करने का इन्हें व्यसन न था। सागंश यह कि यह बड़े ही एकांतप्रिय थे और किसी भी रूप में आत्मविज्ञापन पसंद नहीं करते थे और इसी से लोगों को इनके पहुँचे हुए साधक या भक्तरूप का परिचय न मिल सका था। पर एक दिन अकस्मात् इनका वास्तविक रूप प्रगट हो गया। कथा यों है—एक दिन ये जमींदारी संबंधी क्रायज पत्र फैलाए कुछ लिख रहे थे कि यकायक न जाने क्या सोच कर उठे और एक लोटा पानी उठाकर वहीं और बस्ते पर उड़ेल दिया। लोगों ने इन्हें पागल समझा और उनके बहुत कुछ पूछ ताछ करने पर बतलाया कि आरती के समय जगन्नाथ जी के वस्त्र में आग लग गई थी सो उसी को पानी उड़ेल कर मैंने बुझाया है। लोगों को हठ विश्वास हो गया कि यह पागल हैं। इनके मालिक ने भी इन्हें पागल समझा। पर इस घटना के बाद ही यह नौकरी छोड़ कर चल खड़े हुए, उस समय की कही हुई इनकी ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

‘लिखनी नाहिं करूं रे भाई ।

मोहि राम नाम सुधि आई ॥

बाद में कहते हैं कि इनके मालिक के पता लगवाने पर जगन्नाथ जी के वस्त्र में आग लगने वाली कथा सच निकली और तब उसने बहुत तरह से क्षमा माँगते हुए इनसे फिर कार्यभार ग्रहण करने की प्रार्थना की पर सब व्यर्थ । इसी प्रकार इनके संबंध में और भी कई अश्रुतपूर्व कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनमें सत्यता का अंश चाहे जितना भी हो पर इतना तो स्पष्ट है कि इनका पहला व्यवसाय लेखक का था पर साथ ही ये ईश्वरचिंतन का भी समय निकाल लेते थे और क्रमशः हरिपद में इनकी लौ बढ़ती ही गई । अंत में एक दिन इन्होंने अपने हृदय में एक स्पष्ट पुकार सुनी । इन्हें विदित हो गया कि अब मेरा यह लौकिक कार्य समाप्त हुआ और अब मुझे केवल हरिभजन में कालयापन करना चाहिए और इन्होंने किया भी ऐसा ही ।

इनकी मृत्यु तिथि अज्ञात है । कहते हैं पूरी अवस्था पाकर इन्होंने गंगा और सरयू के संगम स्थान में समाधि ले ली थी ।

इनके रचे हुए दो ग्रंथ प्राप्त हैं— (१) ‘सत्यप्रकाश’ (२) ‘प्रेमप्रकाश’ ‘धरनीदास जी की बानी’ नाम से इनके पद्यों का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है । यह संग्रह ६० पृष्ठों का है और इसमें कुल ३३० पद्य हैं ।

इनकी भाषा पूर्वी हिंदी तो है ही पर कहीं कहीं उसमें खड़ी बोली के पद भी दिए गए हैं । स्मरण रहे कि यह बिहार प्रांत के रहने वाले थे और तत्कालीन साहित्यिक केंद्र आगरा मथुरा प्रांत में इनके घूमने या रहने के प्रमाण भी नहीं मिलते । ऐसी अवस्था में इनकी भाषा में विशेष साहित्यिकता की आशा करना व्यर्थ है । पर इनके भाव अवश्य सुंदर और कोमल हैं । कोमलता तो इतनी अधिक कदाचित् किसी संत कवि की कविता में नहीं है, यहाँ तक कि कोई कोई समालोचक इनके भावों में स्त्रीत्व का प्राधान्य मानते हैं । इनके पदों की एक दूसरी विशेषता यह है कि उनमें एकांत निष्ठा की भावना बहुत स्पष्ट है । किसी भी कवि की कृति में उसके स्वभाव की छाप पड़े बिना नहीं रह सकती । धरनीदास जी आरंभ से ही कितने एकांतप्रिय थे यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है । संत कवियों में यही एक ऐसे सज्जन हो गए हैं जिन्हें सामुहिक रूप से कोई कार्य करने से चिढ़ थी । यह सब से अलग रहना ही पसंद करते थे । इनके स्वभाव का यह अंग इनकी रचना पर भी अपना रंग लाए बिना नहीं रह सकता था ।

प्रस्तुत संग्रह में चुने हुए पद ‘धरनीदास जी की बानी’ से लिए गए हैं ।

धरनीदास

बिरह

अजहुँ मिलो मेरे प्रान - पियारे ।
दीनदयाल कृपाल कृगानिवि ॥
करहु छिमा अपराध हमारे ।
कल न परत अति बिकल सकल तन ॥
नैन सकल जनु बहत पनारे ।
माँस पचो अरु रक्त रहित भे ॥
हाइ दिनहुँ दिन होत उघारे ।
नासा नैन खवन रसना रस ॥
इंद्री स्वाद जुआ जनु हारे ।
दिवस दसो दिसि पंथ निहारत ॥
राति बिहात गनत जस तारे ।
जो दुख सहत कहत न बनत मुख ॥
अंतरगत के हौ जानन हारे ।
धरनी जिव भिलमलित दीप ज्यों ॥
होत अंधार करो उंजियारे ।

चिंताधर्मा

पानी से पैदा कियो सुनु रे मन बौरे,
ऐसा खमम खुदाय कहाई रे ।
दाह भयो दस मास को सुनु रे मन बौरे,
तर सिर ऊपर पाई रे ॥
आँच लगी जब आग की सुनु रे मन बौरे,
आजिज है अकुलाई रे ।
कौल कियो मुख आपने सुनु रे मन बौरे,
नाहक अंक लिखाई रे ॥
अब की करिहो बंदगी सुनु रे मन बौरे,
जो पइहो मुकलाई रे ।
जग आये जंगल परे सुनु रे मन बौरे,
भरम रहे अरुभाई रे ॥

पर को पीर न जानिया सुनु रे मन बौरे,
 बहुरि ऐसहीं जाई रे ।
 सतगुरु कै उपदेस जे सुनु रे मन बौरे,
 दोजख दरद मिटाई रे ।
 मानुष देह दुरलभ अहै सुनु रे मन बौरे,
 धरनी कह समुझाई रे ॥

उपदेश

कवित्त—जीव की दया जेहि जीव ब्यापै नहीं,
 भूखे न अहार प्यासे न पानी ।
 साधु के संग नहिं सबद से रंग नाहिं,
 बोलि जानै न मुख मधुर बानो ॥
 एक जगदीस को सीस अरपै नाहीं,
 पाँच पच्चीस बहु बात ठानी ।
 राम को नाम निज धाम बिस्वाम नहीं,
 धरनी कह धरनि सों धृग सो प्रानो ॥

विनय

प्रभु जी अब जिनि मोहिं बिसारो ।
 असरन सरन अधम जन तारन, जुग जुग बिरद तिहारो ॥
 जहँ जहँ जनम करम बसि पायो, तहँ अरुफे रस खारो ।
 पाँचहुँ के परपंच भुलानो, धरंउ न ध्यान अधारो ॥
 अध गर्भ दस माम निरंतर, नखसिख सुरति सँवारो ।
 मज्जा मुत्र अग्निमल क्रम जहँ, सहजै तहँ प्रतिपारो ॥
 दीजै दरस दयाल दया करि, गुन ऐगुन न बिचारो ।
 धरनी भजि आयो सरनागति, तजि लज्जा कुल गारो ॥

तुहि अवलंब हमारे हो ।

भावै पगु नाँगे करो, भावै तुरय सवारो हो ॥
 जनम अनेकन बादि गो, निजु नाम बिसारे हो ।
 अब सरनागत रावरी, जन करत पुकारो हो ॥
 भवसागर बेरा पारो, जल मॉँझ मँझारे हो ।
 संतत दीन दयाल ही, करि पार निकारो हो ॥
 धरनी मन बच कर्मना तन मन धन वारे हो ।
 अपनो बिरद निबाहिये, नाहिं बनत बिचारो हो ॥

मोसों प्रभु नाहिं दुखित, तुम सों सुखदाई ॥ टेक ॥
 दीन बंधु बान तेरो, आइ कर सहाई ।
 मोसों नहिं दीन और निरखो जगमोई ॥
 पतित पावन निगम कहत, रहत हौ कित गोई ।
 मो सों नहिं पतित और, देखो जग टोई ॥
 अधम के उधारन तुम, चारो जुग ओई ।
 मो तें अब अधम आहि, कवन धौ बड़ोई ॥
 धरनी मन मनिया, इक ताग में परोई ।
 आपन करि जानि लेहु, कर्म फंद छोई ॥

प्रेम

हरि जन हरि के हाथ बिकाने ।
 भावै कहो जग धृग जीवन है, भावै कहो बौराने ॥
 जाति गवाय अजाति कहाये, साधु संगति ठहराने ।
 मेटो दुख दारिद्र परानो, जूउन खाय अवाने ॥
 पाँच जने परवल परपची, उलटि परे बदिखाने ।
 छूटी मजूरी भये हजूरी, सादिव के मन माने ॥
 निरममता निरवेरे सभन तें, निरसंका निरवाने ।
 धरनी काम राम अपने तें, चरन कमल लपटाने ॥

पिया मोर बसैं गउरगढ़, मैं बसैं प्रयाग हो ।
 सहजहिं ला सनेह, उपजु अनुराग हो ॥
 असन बसन तन भूपन, भवन न भावै हो ।
 पल पल समुझि सुरति मन गहवरि आवै हो ॥
 पथिक न मिलहि सजन जन, जिनहिं जनावों हो ।
 बिहवल विकल बिलखि चित, चहुँ दिसि धावों हो ॥
 होय अस मोहिं ले जाय कि ताहि ले आवै हो ।
 तेकरि होइवों लौंडिया, जे रहिया बतावै हो ॥
 तबहिं त्रिया पत जाय, दोमर जब चाहै हो ।
 एक पुरुष समरथ, धन न चाहै हो ॥

जहिया भइल गुरु उपदेस, अंग अंग के मिटल कलेस ।
 सुनत सजग भयो जीव, जनु अगिनी परै धीव ॥

उर उपजल प्रभु प्रेम, छुटि के तब ब्रत नेम ।
जब घर भइल अंजोर, तब मानल मन मोर ॥
देखे से कहल न जाय, कहले न जग पतियाय ।
धरनी धनि तिन पाग, जेहि उपजल अनुराग ॥

जग में कायथ जाति हमारी ।

पायो है माला तिलक दुसाला, परमारथ ओहदा री ॥
कागद जहलगि करम कमायो, कैची ज्ञान रसा री ।
गुरु के चरन अनंद जाप करि, अनुभव वरक उतारो ॥
मन मसिहानी साँच की स्याही, सुरति सोफ भरि डारी ।
भरम काटि करि कलम छुरी छवि, तकि तृष्णा खत भारी ॥
तबलक तत्त दया को दफदर, संत कचहरा भारी ।
रैयत जगत सबद कै कौंडी, दूजी मार न मारी ॥
नाम रतन को भरो खजाना, धरो सो हृदय कोठारी ।
है कोइ परखनहार बिबेकी, बारंवार पुकारी ॥
धरनी साल बसाल अमाली, जमाखरच यहि पारी ।
प्रभु अपने कर कागज मेरो, लीजै समुझि सुधारी ॥

मन तुम यहि विधि करौ कैथाई ।

सुख संपति कबहुं नहिं छीजै, दिन दिन बढ़त बढ़ाई ॥
कसबा काया कर ओहदा री, चित चिट्ठा धर साथी ।
मोहासिब करि अस्थिर मनुवां, मूल मत्र अपराधी ॥
तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की, ध्यान निरखि ठहराई ।
हृदय हिसाब समुझि कै कीजै, दहियक देहु लगाई ॥
राम को नाम रटी रोजनामा, मुक्ति सों फरद बताई ।
अजपा जाप अवरिजा करि के, सर्व कर्म बिलगाई ॥
रैयत पाँच पचीस बुझाए, हरि हाकिम रहे राजी ।
धरनी जमाखरच विधि मिलि है, को करि सकै गमाजी ॥

भाई रे जीभ कहल नहिं जाई ।

नाम रतन को करत निठुराई, कूदि चलै कुचराई ॥
चरन न चलै सुपथ पै पग दुइ, अपथ चलै अतुराई ।
देत बार कर दीन्ह दूबरो, लेत करै हथियाई ॥
नैना रूप सरूप सनेही, नाद खवन लुबधाई ।
नासा बहती बास बिषै की, इंद्री नारि पराई ॥

संत चरन को सीस नवै नहिं, ऊपर अधिक तराई ।
जो मन बेरि बेन्हिये बांधौ, भाजै छांद तुराई ॥
का सों कहों कहै को मानै, अंग अंग अकुठाई ।
धरनीदास आस तब पूजै, जो हरि होहिं सहाई ॥

मन बसि लेहु अगम अटारी ॥ टेक ॥
नव नारिन को द्वारा निरखो, सहज सुखमना नारी ।
अजब अवाज नगारा बाजत गगन गरजि धुनि भारी ॥
तहं बरै बाती खिचस न राती, अलख पुरुष मठ धारी ।
धरनी कै मन कहा न मानै, तबहिं हनो है कटारी ॥

मन रे तू हरि भजु अवरि कुमति तजु ।
है रहु विमल विरागी अनुरागी लो ॥
देई देवा सो भूँठी, जैसे मरकट मूठी ।
अंत बहुरि विलगाने पछिताने लो ॥
जठर अगिन जरै, भोजन भसम करै ।
तहं प्रभु पालल देहो नित तेही लो ॥
सुत हितु बंधु नारी, इन संग दिना चारी ।
जल संग परत पखाने, असमाने लो ॥
परिजन हाथी घोरा, इहव कहत मोरा ।
चित्र लिखल पट देखा, तस लेखा लो ॥
धरनी बिच्छुक वानी हम प्रभु अजमानी ।
मिलहु पट खोलो अनमाली लो ॥

मन तुम कम न करहु रजपूती ।
गगन, नगारा बाजु गहागह, काहे रहो तुम सूती ॥
पाँच पचीस तीन दल ठाढ़े, इन संग सेन बहूती ।
अब तोहि घेरी मारन चाहत, जस पिंजरा मह तूती ॥
पइहौ राज समाज अमर पद, है रहु विमल बिभूती ।
धरनीदास बिचार कहतु है, दूसर नाहिं सपूती ॥

शब्द

कंत दरस बिनु आवरी ।
मो तन व्यापै पीर प्रीतम की, मूरुख जानै आवरी ॥
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चित चावरी ।

भोजन भवन सिंगार न भावै, कुल करतूति अभाव री ॥
 खिन खिन उठि उठि पंथ निहारो, बार बार पछितावं री ।
 नैनन अंजन नाँद न लागै, लागै दिवस बिभावरी ॥
 देह दसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछे नाव री ।
 धरनी धनी अजहुँ पिय पाओँ, तौ सहजै अनँद बधाव री ॥

हरि जन हरि के हाथ बिकाने ।
 भावै कहो जग धृग जीवन है, भावै कहो बौराने ॥
 जाति गँवाय अजाति कहाये, साधु संगति ठहराने ।
 मेढो दुख दारिद्र परानो, जूठन खाय अघाने ॥
 पांच जने परबल परपंची, उलटि परे बँदिखाने ।
 छुटी मजूरी भये हजूरी, साहब के मन माने ॥
 निरममता निरखैर समत तैं, निरसंका निरबाने ।
 धरनी काम राम अपने तैं, चरन कमल लपटाने ॥

हरि जन वा मद के मतवारे ।
 जो मद बिना काठि बिनु भाठी, बिनु अग्निहिँ उदगारे ॥
 बास अकास घराघर भीतर, बुंद भरै भलका रे ।
 चमकत चंद अनंद बढ़ो जिव, शब्द सघन निरुवारे ॥
 बिनु कर धरे बिना मुख चाखे, बिनहिँ पियाले ढारे ।
 ताखन स्यार सिंह को पौरुख, जुत्थ गजंद बिडारे ॥
 काटि उपाय करै जो कोई, अमल न होत उतारे ।
 धरनी जो अलमस्त दिवाने, सोइ सिरताज हमारे ॥

हित करि हरि नामहिँ लाग रे ।
 घरी घरी घरियाल पुकारै, का सोवै उठि जाग रे ॥
 चोआ चंदन चुपड़ तेलना, और अलबेली पाग रे ।
 सो तन जरे खड़े जग देखो, गूद निकारत काग रे ॥
 मात पिता परिवार सुता सुत, बंधु त्रिया रस त्याग रे ।
 साधु के संगति समिर सेचित होइ जो सिर मोटे भाग रे ॥
 समबत जरै बरै नहिँ जब लागि, तब लागि खेलहु पाग रे ।
 धरनीदास तासु बलिहारी, जहँ उपजै अनुराग रे ॥

ऐसे राम भजन कर बाव रे ।

बेद साखि जन कहत पुकारे, जो तेरे चित चाव रे ॥
काया दुवार हुवै निरखु निरंतर, तहाँ ध्यान ठहराव रे ।
तिरबेनी एक संगहि संगम सुन्न सिखर कहं धाव रे ॥
उदधि उलंघि अनाहद निरखौ, अरध उरध मधि ठाँव रे ।
राम नाम निसु दिन लव लागे, तवहिं परम पद पाव रे ॥
तहं है गगन गुफा गढ़ गाढ़ो, जहाँ न पवन पहाँव रे ।
धरनीदास तासु पद बंदे, जो यह जुगति लखाव रे ॥

मेरो राम भलो ब्योपार हो ।

वा सौं दूजा दृष्टि न आवे, जाहि करो रोजगार ॥
जो खेती तो उहै कियारी, बिनु बीज बैल हर फार हो ।
रात दिवस उद्दम करै, गंग जमुन के पार हो ॥
बनिज करो तो उहै परोहन, भरो विविधि परकार हो ।
रात दिवस उद्दम करै, गंग जमुन के पार हो ॥
बनिज करो तो उहै परोहन, भरो विविध परकार हो ।
लाम अनेक मिले सतसंगति, सहजहिं भरत भंडार हो ॥
जो जाचो तो वाहि को जाचो, फिरौ न दूजौ दुवार हो ।
धरनी मन बच क्रम मानो, केवल अधर अधार हो ॥

जुगजुग संतन की बलिहारी ।

जो प्रभु अलख अमूरत अविगत, तासु भजन निरवारी ।
मन बच क्रम जगजीवन को व्रत, जीवन को उपकारी ।
संतन साँच कही सवहिन तें, सुन पितु भूप भिखारी ॥
ढोलिया ढोल नगर जो मारै, गृह गृह कहत पुकारी ।
गोधन जुत्थ पार करिबे के, पीटत पीठ पहारी ॥
एहि जग हरि भगता पतिवरता, अवर बसै विभिचारी ।
धरनी धृग जीवन है तिन्ह के, जिन्ह हरि नाम बिसारो ॥

जो जन भक्त बल्लुल उपवासी ।

ता के भवन भयो उजियारी, प्रगटी जोति दिवासी ॥
लोक लाज कुल बानि बिसारी, सार सब्द के गासी ।
तिन्ह के सुजस दसो दिसि बाढ़ो बवन सके करि हाँसी ॥

हरि ब्रत सकल भक्त जन गहि गहि, जम तैं रहे भवासे ।
 देह धरी परमारथ कारन, अंत अमैपुर बासी ॥
 काम क्रोध तृस्ना मद मिथ्या, सहज भये बनबासी ।
 संतत दीन दयाल दयानिधि, धरनी जन सुखरासी ॥

मोहिं कछु नाहिं बिसाय, केउ केसहु कहि जाव री ॥ टेक ॥
 भांकि भरोखे रावला, मन मोहन रूप देखाज री ।
 दृष्टि परे परबस पर्यो घर, घरहु न मोहिं सोहाय री ॥ .
 जस जल चर जल में चरे, मख चारो सहज समाय री ।
 निगलत तो वहि निर्भय, अब उगलत उगलि न जाय री ॥
 जस पंछी बन बैठियो, अपना तन मन ठहराय री ।
 नर को भेद न भेदियो, पर अबचक लागे आय री ॥
 दोहा - जाहि परो दुख आपनो, जो जाने पर पीर ।
 धरनी कहत सुन्थो नहिं, बांभ की छाती छीर ॥

एक अलाह के मैं कुरबानी । दिल ओभनल मेरा दिलजानी ॥
 तू मेरा साहब मैं तेरा बंदा । तू मेरे सभी हवस पहिचंदा ॥
 बार बार तुम कहं सिर नावों । जानि जरूर तुम्हे गोहरावों ॥
 तुमहिं हमारे मक्का मदीना । तुमहीं रोजा रिजिक रोजीना ॥
 तुमहीं कोरान खतम खतमाना । तुम तसबी अरु दीन हमाना ॥
 मैं आसिक महबूब तू दरसा । बेगर तोहि जहान जहर सा ॥
 देहु दिदार दिलासा येही । नातर जाव बिनसि बर देही ॥
 कादिर तुमहिं कदर को जाना । मैं हिन्दू किधों मूमलमाना ॥
 धरनीदास खड़े दरवाजा । सब के तुमहिं गरीब निवाजा ॥

मैं निरगुनियां गुन नहिं जाना । एक धनी के हाथ बिकाना ॥
 सोह प्रभु पक्का मैं अति कच्चा । मैं भूटा मेरा साहब सच्चा ॥
 मैं ओछा मेरा साहब पूरा । मैं कायर मेरा साहब सूर ॥
 मैं मूर्ख मेरा प्रभु ज्ञाता । मैं किरपिन मेरा साहब दाता ॥
 धरनी मन मानर इक ठाउँ । सो प्रभु जीवो मैं मरिजाउँ ॥

जय लग परम तनु नहिं जाने ।

तब लग भरम भूत नहिं भाजे, करम कींच लपटाने ॥
 सहस नाम कहि कहा भयो मन, कोटि कहत न अघाने ।
 भूले भरम भागवत पढ़ि के, पूजत फिरत पखाने ॥

का गिरि कंदर मंदर माहें, कंद मूरि खनि खाने ।
कहा जो बरष हजार रह्यो तन, अंत बहुरि पछिताने ॥
दानि कबीसुर सरसुती, रंक होहु भा राने ।
प्रेम प्रतीत अमिय परचे विनु, मिले न पद निरबाने ॥
मन बच करम सदा निसिबासर, दूजो ज्ञान न ध्याने ।
धरनी जन सतगुरु सिर ऊपर, भक्त बछल भगवाने ॥

एक धनी धन मोरा हो ॥ टेक ॥

काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा ।
काहू के मनि मानिक मोती, एक धनी धन मोरा हो ॥
राज न हरै जरै न अगिन तें, कैसहु पाय न चोरा हो ।
खरचत खात सिरात कबहिं नहिं, भुइं घाट घाट नहिं छोरा हो ॥
नहिं संदूक नहिं भुइं खनि गाड़ी, नहिं पटि घालि मरोरा हो ।
नैन के ओभल पलकन राखों, सांभ दिवस निसि भोरा हो ॥
जब धन लै मनि बेचन चाहे, तीनि हाट टकटोरा हो ।
कोई बस्तु नाहिं ओहि जागे, जो मोलजं सो थोरा हो ॥
जा धन तें जन भये धनी बहु, हिंदू तुरुक करोरा हो ।
सो धन धरनी सहजहिं पायो, केवल सतगुरु के निहोरा हो ॥

राग टोड़ी

जब मेरो यार मिले दिलजानी, होइ लवलीन करौं मेहमानी ।
हृदय कमल बिच आसन सारी, ले सरधा जल चरन खटारी ॥
हित के चंदन चरचि चढ़ायो, प्रीति के पंखा पवन डोलायो ।
भाव के भोजन परसि जेंवायो, जो उबरा सो जूठन पायो ॥
धरनी इत उत फिरहिं न मोरे, सन्मुख रहहिं दोऊ को जोरे ।

करता राम करै सोइ होय ।

कल बल छल बुधि ज्ञान सयानप, केटि करै जो कोय ॥
देई तदवा सेवा करिके, मरम भुकै नर लोय ।
आवत जात मरत औ जनमत, करम कांठ अरुभोय ॥
काहे भवन तलि मेष बनायो, ममता मैल न भोय ।
मन मवास चपरि नहिं तोडेउ, आस फांस नहिं छोय ॥
सतगुरु चरन सरन सब पायो, अपनी देंह बिलोय ॥
धरनी धरनि फिरत जेहि कारन, धरहिं मिले प्रभु सोय ॥

राग गौरी

सुमिरौ हरि नामहि चौरै टेक ॥

चक्रहु चाहि चलै चित चंचल, मूल मता गहि निस्चल केरे ॥
पांचहु ते परिचै करु प्रानी, काहे के परत पचीस कै भौरे ।
जौ लागि निरगुन पंथ न सूझै, काज कहा महि मंडल दौरे ॥
सबद अनाहद लखि नहिं आवै, चारो पन चलि ऐसहिं गौरे ।
ज्यो तेली के बैल बिचारा, घरहिं में कोस पचासक भौरे ॥
दया धरम नहिं साधु की सेवा, काहेसे सो जनमें घर चौरै ।
भरनीदास तासु बलिहारी, जूझ तजौ जिन्ह सांचहिं घोरै ॥

राग कल्याण

जाके गुरुचरनन चित लागा ।

ताके मन की भरम भुलानो, धंधा धोखा भागा ॥
सो जन सोवत अवचकही में, सिंह सरीखे जागा ।
धनि सुत जन धन भवन न भावत, धावत बन बैरागा ॥
हरखित हंस दसा चलि आयो, दुरिगयो दुरमत कागा ॥
पाचहुं के परपंच न लागै, केटि करै जौ दागा ॥
सांच अमल तहं झूठ न झांके, दया दीनता पागा ।
सत्त सुकृत्त संतोष समानो, ज्यौं सूई मध धागा ॥
ले मन पवन उरष को धावै, उपचु सहज अनुरागा ।
घरनी प्रेम गगन जन कोई, सोइ जन सूर सुभागा ॥

राग केदार

अजहु न गुरुचरनन चित दैहौ ॥ टेक ॥

नाना जोनि भटकि भ्रम आये, अथ कय प्रेम तीरथहिं न्हैहौ ॥
बड कुल विभव भरम जनि भूलों, प्रभु पैहौ जब दास कहैहौ ।
एह संगति दिन दस की दसा है, कथि कथि पढ़ि पढ़ि पार न पैहौ ॥
करम भार सिर तें नहिं उतरै, खंड खंड महि मंडल पैहौ ।
बिनु सतगुरु सतलोक न सूझै, जनमि जनमि मरि मरि पछितैहो ॥
भरनी ह्वैहौ तबही सांचे, सतगुरु नाम हृदय ठहरैहौ ॥

राग बिहागरा

जग में सोई जीवन जीया ।

जाके उर अनुगग ऊपजो, प्रेम पियाला पीया ॥
कमल उलटो भर्म छूटो, अजप जप जपिया ।

जनु अंधारे भवन भीतर, बारि राखे दिया ॥
 काम क्रोध समोदियो, जिन्ह घरहि में घे किया ।
 माया के परिपंच जेते, सकल जानो छिया ॥
 बहुत दिन के बहुत अरझा, सहजहीं सुरभिया ।
 दास धरनी तुमसु बलि बलि, भूजियो जिन्ह बिया ॥

राग पंजर

तुहि अवलंब हमारे हो ।

भावै पगुनांगे करो, भावै तुरय सवारे हो ॥
 जनम अनेकन बादि गौ, निजु नाम बिसारे हो ।
 अब सरनागत रावरी, जन करत पुकारे हो ॥
 भवसागर बेरा परो, जल भांभ मंभारे हो ।
 संतत दीनदयाल हो, करे पार निकारे हो ॥
 धरनी मन बच कर्मना, तन मन धन वारे हो ।
 अपना बिरद निबाहिये, नहिं बनत बिचारे हो ॥

प्रभु तो बिनु को रखवारा ॥ टेक ॥

हौं अति दीन अधीन अकर्मि, बाउर बैल बिचारा ।
 तू दयाल चारो जुग निस्चल, केटिन्ह अधम उधारा ॥
 अब के अजस अवर नहिं लागे, सरबस तोहिं बढ़ाई ।
 कुल मरजाद लोक लजा तजि, गह्यो चरन सिर नाई ॥
 मैं तन मन धन तो परवारो, मूरख जानत खयाला ।
 न्याउर बेदन बांभ न बूझे, बिनु दागे नहिं छाला ॥
 तुलसी भूषन भेष बनायो खवन सुन्यो मरजादा ।
 धरनी चरन सरन सब पायो; छुटिहैं बाद बिबादा ॥

प्रभु तू मेरो प्राणि पियारा ॥ टेक ॥

परिहरि तोहि अवर जो जाचै, तेहि मुख छीया छारा ।
 तो पर वारि सकल जग डारौं, जौ बसि होय हमारा ॥
 हिंदू के राम अल्लाह तुरुके, बहु बिधि करत बखाना ।
 दुहुँ के संगम एक जहां, तहवां मेरो मन माना ॥
 रहत निरंतर अंतरजामी, सब घट सहज समाया ।
 जोगी पंडित दानि दसो दिसि, खोजत अंत न पाया ॥
 भीतर भवन भयो उंजियारी, धरनी निरखि सोहाया ।
 जा निति देस देसांतर धावो, सो घटहीं लखि पाया ॥

पलटू

पलटूदास के जीवन संबंधी ज्ञातव्य बातें बहुत कुछ खोज करने पर भी अभी तक नहीं जानी जा सकी हैं। इनके सगे भाई पलटूप्रसाद जी ने (जिनका संसारी नाम कुछ और ही था) अपने 'भजनावली' नाम की पुस्तक में इनका कुछ वृत्तांत दिया है जिससे केवल इतना जाना जा सका है कि इनका जन्म फैजाबाद जिले के नागपुर-जलालपुर नामक गाँव में एक काँदू बनियाँ के कुल में हुआ था। इनके जीवनकाल के संबंध में केवल यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि ये अवध के नवाब शुजाउद्दौला के समय में (ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में) विद्यमान थे। इनके गुरु एक बाबा जानकीदास जी थे जिनसे इन्होंने अपने पुरोहित गोविंद जी के साथ दीक्षा ली थी। लाला सीताराम जी का कहना है कि इन्होंने इन्हीं गोविंद जी से ही, जो कि भीखा साहिब शिष्य थे, दीक्षा ली थी।

पलटू जी ने अपने जीवन का अधिकांश अयोध्या में ही बिताया था और वहाँ इनका अखाड़ा अभी तक विद्यमान है। इनके अंतकाल के संबंध में कहा जाता है कि अयोध्या के वैरागियों ने इनके उपदेशों से चिढ़ कर इन्हें जीता जला दिया था पर यह जगन्नाथ जी में पुनः प्रगट हुए और वहाँ से कुछ समय बाद अंतर्धान हो गए। इस सिलसिले में नीचे दिया हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

अवध पुरी में जरि मुए, दुष्टन दिया जराइ ।

जगन्नाथ की गोद में, पलटू सूते जाइ ॥

इनकी कविताओं का एक बड़ा संग्रह बेलवेडियर प्रेस से तीन भागों में प्रकाशित हुआ है जिसमें ३५३ पृष्ठ और प्रायः १००० पद्य हैं। प्रस्तुत संग्रह उसी से किया गया है।

इनकी रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध इनकी कुंडलियाँ हैं। इनकी रचनाओं को ध्यान से रखने से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने कबीर का भावापहरण बहुत किया है। इनके अनेक पदों में कबीर के ही विचार और भाव कुछ विस्तार से कहे हुए जान

पड़ते हैं। और फिर पुनरुक्ति दोष इनकी कविता में बहुत आया है। अन्य संत कवियों से इनको विशेषता इस बात में है कि शांत के अतिरिक्त वीर और शृंगार रस की छटा भी यत्र तत्र इनकी कविता में दिखाई पड़ती है। वीर रस पर तो चरनदास जी ने भी कविता की है और ओज गुण लाने में कदाचित् यह पलटू से अधिक सफल भी हुए हैं पर शृंगारी कवियों का प्रभाव शायद इन्हें छोड़ कर अन्य किसी संत कवि पर नहीं पड़ा है। पौराणिक भक्ति की व्याख्या और नीति के उपदेश इनके भी उतने ही अच्छे और प्रभावशाली हुए हैं जितने चरनदास जी के।

इनकी भाषा बहुत परमार्जित और सुबोध है और अधिकतर संत कवियों की भांति ये भाषा तथा छंद आदि की कविता के वाह्य रूप के संबंध में असावधान नहीं थे।

पलटू

शब्द

फूटि गया असमान सबद की धमक में ।
लगी गगन में आग सुरति की चमक मैं ॥
सेसनाग औ कमठ लगे सब काँपने ।
अरे हाँ पलटू सहज समाधि कि दसा खबर नहि आपने ॥

आरस

जो कोइ चाहे नाम तो अनाम है ।
लिखन पढ़न में नहि निश्चलुर काम है ॥
रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते ।
अरे हाँ पलटू गैव दृष्टि से संत नाम बह देखते ॥

कुंडलिया

खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार ।
बीती जात बहार संवत लगने पर आया ॥
लीजै डफ़ बजाय सुभग मानुष तन पाया ।
खेलो घूँघट खेलि लाज फागुन में नाहीं ॥
जे कोइ करिहै लाज काज ना सुपनेहुँ माहीं ।
प्रेम की माट भराय सुरति की कर पिचकारी ॥
ज्ञान अवीर बनाय नाम की दीजै गारी ।
पलटू रहना है नहीं सुपना यह संसार ।
खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार ॥

कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान ।
सो ध्यानी परमान सुरत से अंडा सेवै ॥
आपु रहै जल माहिं सूखे में अंडा देवै ।
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै ॥
कर छोड़े मुख बचन चित्त कलसा में लावै ।
फनि मनि धरै उतरि आप चरने को जावै ॥
बह गाफिल ना पढ़ै सुरत मनि माहिं रहावै ।

पलटू सब कारज करै सुरत रहे अलगान ॥
कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान ॥

माया की चक्की चलै पीसि गया संसार ।
पीसि गया संसार बचै ना लाख बचावे ॥
दोऊ पट के बीच कोऊ ना साबित जावै ।
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे ।
तिरगुन डारै भीक पकरि के सबै निकारे ॥
दुरमति बड़ी सयानि सानि कै रोटी पोवै ।
करम तवा में धारि सेंकि कै साबित होवै ॥
तृस्ना बड़ी छिनारि जाइ उन सब घर घाला ।
काल बड़ा बरियार किया उन एक निवाला ॥
पलटू हरि के भजन बिनु कोऊ न उतरै पार ।
माया की चक्की चलै पीसि गया संसार ॥

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत ।
चाला जात बसंत कंत ना घर में आए ॥
धृग जीवन है तोर कंत बिन दिवस गँवाये ।
गर्ब गुमानी नारि फिरै जोवन की माती ॥
खसम रहा है रुठि नहीं तू पठवै पाती ।
लगै न तेरो चित्त कंत के नाहि मनावै ॥
का पर करै शिंगार फूल की सेज बिछावै ।
पलटू ऋतु भरि खेलि ले फिर पछितै है अंत ।
क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत ॥

प्रेम

प्रेम बान जोगी मारल हो कसकै हिया मोर ।
जोगिया कै लालि लालि अँखिया हो जस कँवल कै फूल ॥
हमरी सुख चुनरिया हो दूनों भये तूल ।
जोगिया कै लेउं मिर्गल्लवा हो आपन पट चीर ॥
दूनों कै सियब गुदरिया हो होइ जावै फकीर ।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो ताकिन्हि मोरी ओर ॥
चितवन में मन हरि लियो है, जोगिया बड़ चोर ।
गंग जमुन के बिचवां हो, बहै फिरि नीर ॥

तेहिं ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर ।
जोगिया अमर भरै नहिं हो पुजवल मेरी आस ॥
कर लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास ॥

साहिब के दास कहाय यारो,
जगत की आस न राखिये जी ।
समरथ स्वामी की जब पाया,
जगत से दीन न भाखिये जी ॥
साहिब के घर में कौन कमी,
किस बात की अतै आखिये जी ।
पलटू जो दुख सुख लाख परै,
बहि नाम सुधा रस चाखिये जी ॥
चितवनि चलनि मुसकानि नवनि,
नहिं राग द्वेष हार जीत है जी ।
पलटू छिमा संतोष सरल,
तिनकौ गावै सुति नीति है जी ॥

पूरब पुन भये प्रगठ सतसंगति के बीच परी ।
आनंद भये जब संत मिले वही सुभ दिन बहि सुभ घरी ॥
दरसन करत त्रय ताप मिटे बिन कौड़ी दाम मैं जाय तरी ।
पलटू आवागवन छूटा, चरनन की रज सीस घरी ॥

कुंडलिया

पेय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय ॥
आपुइ गई हिराय कवन अब कहै सँदेसा ।
जेकर पिय मैं ध्यान भई वह पिय के भेसा ॥
आगि माहिं जो परै सोऊ अगनी है जावै ।
भुंगी कीट के मेंटि आपु सम लेइ बनावै ॥
सरिता बहि के गई सिंधु में रही समाई ।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सकी आई ॥
पलटू दिवाल कहकहा मत कोउ भाँकन जाय ।
पिय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय ॥

रेखता

बिना सतसंग न कथा हरिनाम की,
बिना हरिनाम ना मोह भागै ।

मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलैगी,
 मुक्ति बिनु नहिं अनुराग लागै ॥
 बिना अनुराग के भक्ति न होयगी,
 भक्ति बिनु प्रेम उर नाहिं जागै ।
 प्रेम बिनु राम ना राम बिनु संत ना,
 पलटू सतसंग बरदान माँगै ॥

जिन दिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय ॥
 तिन तिन चले छिपाय प्रगट में होय हरकत ।
 भीड़ भाड़ से डरै भीड़ में नहीं बरकत ॥
 धनी भया जब आप मिली हीरा की खानी ।
 ठग है सब संसार जुगत से चलै अपानी ॥
 जो हैं रहते गुप्त सदा वह मुक्ति में रहते ।
 उन पर आवै खेद प्रगट जो सब से कहते ॥
 पलटू कहिये उसी से जो तन मन दै लै जाय ।
 जिन जिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय ॥

अरिल

काम क्रोध बसि कीहा नींद औ भूख को ।
 लोभ मोह बसि कीहा दुख औ सुख को ॥
 पल में कीस हजार जाय यह डोलता ।
 अरे हाँ पलटू वह ना लागा हाथ जौन यह बोलता ॥

आठ पहर की मार बिना तरवार की ।
 चूके सो नहिं ठाँव लड़ाई धार की ॥
 उस ही से यह बनै सिपाही लाग का ।
 अरे हाँ पलटू पड़ै दाग पर दाग पंथ बैराग का ॥

कुंडलिया

काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।
 ताकन को ढब नाहिं ताकन की गति है न्यारी ॥
 इकटक लेवै ताकि सोई है पिय की प्यारी ।
 ताके नैन मिरोरि नहीं चित अंतै ठारै ॥
 बिन ताके केहि काम लाख कोउ नैन संवारै ।

ताके में है फेर फेर काजर में नाही ॥
भंगि मिली जो नाहिं नफा क्या जोग के माहीं ।
पलटू सनकारत रहा पिया को खिन खिन माहिं ॥
काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।

रेखना

नाचना नाचु तो खेलि घूँघट कहै ।
खेलि कै नाचु संसार देखै ॥
खसत रिभाव तो ओट को छोड़ि दे ।
भर्म संसार को दूरि फेंकै ॥
लाज किसकी करै खसम से काम है ।
नाचु भरि पेट फिर कौन छेंकै ॥
दास पलटू कहै तुहीं सुहागिनी ।
सोव सुख सेज तू खसम एकै ॥

सुंदरी पिया की पिया को खोजती ।
भई बेहोस तू पिया के कै ॥
बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गई ।
रटत ही पिया पिया एक एकै ॥
सती सब होत हैं जरत बिनु आगि से ।
कठिन कठोर वह नाहिं भाँकै ॥
दास पलटू कहै सीस उतारि के ।
सीस पर नाचु जो पिया ताकै ॥

भूलना

केतिक जुग गये वीतिं माला के फेरते ।
छाला परि गये जीभ राम के ढेरते ॥
माला दीजै डारि मनै को फेरना ।
अरे हाँ पलटू मुंह के कहै न मिलै दिलै बिच हेरना ॥

अरिल

जीवन है दिन चारि भजन करि लोजिये ।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिये ॥
संतहि से सब होइ जो चाहै सो करै ।
अरे हाँ पलटू संग लगे भगवान संत से बे डेरै ॥

कुंडलिया

दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान ।
 भक्ति दई तेहि जान नाम पर पकरयो मोकहँ ॥
 गिरा परा धन पाय छिपायौ मैं ले आंकहँ ।
 लिखा रहा कुछ आन कर्म में दीन्हा आनै ॥
 जानौ महीं अकेल कोऊ दूसर नहि जानै ।
 पाछे भा फिर चेत देय पर नाहीं लीन्हा ॥
 आखिर बड़े की चूक जोई निकसा सोई कीन्हा ।
 पलटू मैं पापी बड़ा भूल गया भगवान ॥
 दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान ।

अरिल

माता बालक कहैं राखती प्रान है ।
 फनि मनि धरै उतारि ओही पर ध्यान है ॥
 माली रच्छा करै सींचता पेड़ ज्यों ।
 अरे हां पलटू भक्त संग भगवान गऊ औ बच्छ त्यों ॥

पलटू साहिब

धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय ।
 चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी ॥
 चल सतगुरु के घाट भरा जहं निर्मल पानी ।
 चादर भई पुरानि दिनों दिन बार न कीजै ॥
 सतसंगत में सौंद ज्ञान का साबुन दीजै ।
 छूटै कलमल दाग नाम का कलप लगावै ॥
 चलिये चादर ओढ़ि बहुर नहिं भव जल आवै ।
 पलटू ऐसा कीजिये मन नहिं मैला होय ॥
 धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय ।

नाम

मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान ।
 पियत निकारै जान मरै की करै तयारी ॥
 सो वह प्याला पियै सीस को धरै उतारी ।
 आंख मूँदि कै पियै जियन की आसा त्यागै ॥

फिरि वह होवै अमर मुये पर उठि कै जागै ।
 हरि से वे हैं बड़े पियो जनि हरि रस जाई ॥
 ब्रह्मा बिस्नु महेस पियत कै रहे डेराई ।
 पलटू मेरे बचन को ले जिज्ञासू मान ॥
 मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान ।
 दीपक बारा नाम का महल भया उजियार ॥
 महल भया उजियार नाम का तेज बिराजा ।
 सब्द किया परकास मानसर ऊपर छाजा ॥
 दसो दिसा भई सुद्ध बुद्ध भई निर्मल साची ।
 घुटी कुमति की गांठि सुमति परगट होय नाचै ॥
 होत छतीसो राग दाग तिर्गुन का छूटा ।
 पूरा प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा ॥
 पलटू अधियारी मिटी बाती दीन्हीं टार ।
 दीपक बारा नाम का महल भया उजियार ॥
 हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर ।
 लै लै भेट अमीर नाम का तेज बिराजा ॥
 सब कोऊ रगरै नाक आइ कै परजा राजा ।
 सकलदार मैं नहीं नीच फिर जाति हमारी ॥
 गोड़ धोय षट करम बरन पावै लै चारी ।
 बिन लसकर बिन फौज मुलुक मैं फिरी दुहाई ॥
 जन महिमा सतनाम आपु में सरस बढ़ाई ।
 सतनाम के लिहे से पलटू भया भीर ॥
 हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर ।
 सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत ॥
 तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावैं ।
 जो कोई आवै जरतमधुर मुख बचन सुनावैं ॥
 धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी ।
 कामल अति मृदु बैन बज्र को करते पानी ॥
 रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगंध लगावैं ।
 तीन ताप मिट जाय संत के दरसन पावैं ॥
 पलटू ज्वाला उदर की रहैं न मिटै तुरंत ।
 सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत ॥

हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय ।
 जन की सही न जाय दुर्वासा की क्या गत कोन्हा ॥

भुवन् चतुर्दस फिरै सबै दुरियाय जो दीन्हा ।
 पाहि पाहि कर परै जबै हरि चरनन जाई ॥
 तब हरि दीन्ह जवाब मोर बस नाहि गुसाई ।
 मोर द्रोह करि बचै करौं जन द्रोहक नासा ॥
 माफ करै अंबरीक बचोगे तब दुर्वासा ।
 पलटू द्रोही संत कर इन्है सुदर्शन खाय ॥
 हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय ।

पाखंडी

पिसना पीसै रांड री पिउ पिउ करै पुकार ।
 पिउ पिउ करै पुकार जगत को प्रेम दिखावै ॥
 कहवै कथा पुरान पिया को तनिक न भावै ।
 खिन रोवै खिन हँसै ज्ञान की बात बतावै ॥
 आप न रीझै भाँड और को बैठि रिझावै ।
 सुनै न वा की बात तनिक जो अंतर ज्ञानी ॥
 चाहै मेटा वीव चलै ना सुपथ रहानी ।
 पलटू ऊपर से कहै भीतर भरा बिकार ॥
 पिसना पीसै रांड री पिउ पिउ करै पुकार ।

पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक ।
 सन असंत है एक काट के जल में सारै ॥
 कूचै खँचै खाल उपर से मुँगरा मारै ।
 तेकर बटि के भाँज भाँजि कै बरता रसरा ॥
 नर की बाँधै मुसुक बाँधते थउ और बल्लरा ।
 अमरजाल फिर होय बभावै जलचर जाई ॥
 खग मृग जीवा जंतु तेही में बहुत बभाई ।
 जिउ दै जिउ संतावते पलटू उनकी टेक ॥
 पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक ।
 बिसवा किये सिंगार है बैठी बीच बजार ॥
 बैठी बीच बजार नजारा सब से मारै ।
 बातें मीठी करै सबन की गाँठ निहारै ॥
 चोवा चंदन लाइ पहिरि के मलमल खासा ।
 पँचभतरी भई करै औरन की आसा ॥
 लेइ खसम को नाँव खसम से परिचै नाहीं ।
 केचि पडन को नाँव सभन को ठगि ठगि खाही ॥

पलटूँ तेकर बात है जेकरे एक भतार ।
विस्वा किये सिंगार है बैठी बीच बजार ॥

हवा हिरिस पलटूँ लगी नाहक भये फकीर ।
नाहक भये फकीर पीर की सेजा नहीं ॥
अपने मुँह से बड़े कहावें सब से जाहीं ।
धमधूसर होइ रहै बात में सब से लड़ते ॥
लाम काफ वो कहै इमान को नाहीं डरते ।
हमहीं हैं दुरबेस और ना दूसर कोई ॥
सब को देहिं मुराद यकीन से ओकरे होई ।
मन मुरीद होवै नहीं आप कहावें पीर ॥
हवा हिरिस पलटूँ लगी नाहक भये फकीर ।

जौं लगि फाटै फिकिर न गई फकीरी खोय ।
गई फकीरी खोय लगी है मान बढ़ाई ॥
मोर तोर में परा नाहिं छूटी दुचिताई ।
दुख सुख संपति बिपति सोच दोऊ की लागी ॥
जीवन की है चाह मरन की डेर नहिं त्यागी ।
कौड़ी जिव के संग रैन दिन करै कल्पना ॥
दुष्ट कहै दुख देइ मित्र को जानै अपना ।
पलटूँ चिंता लगी है जनम गँवाये रोय ॥
जौं लगि फाटै फिकिर ना गई फकीरी खोय ।

चितावनी

धूआं का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत ।
ज्यों बालू की भीत ताहि को कौन भरोसा ॥
ज्यों पक्का फल डारि गिरत से लगै न दोसा ।
कच्चे घले ज्यों नीर पानी के बीच बतासा ।
दारु भीतर अग्नि जिवन की ऐसी आसा ॥
पलटूँ नर तन जात है घास के ऊपर सीत ॥
धूआं का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत ।

यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग ।
सुनहु मुसाफिर लोग भेंट फिर बहुरि न होना ॥

को तुम को हम आय मिले सपने में सोना ।
 हिल मिल दिन दस रहे ताहि को सोच न कीजै ॥
 कोऊ है धिर नाहि दोस ना हमको दीजै ।
 अहिर बाँधि के गाय एक लेहडे में आनी ॥
 कूवां की पनिहारि गई ले घर घर पानी ।
 पलटू मछुरी आम ज्यों नदी नाँव संजोग ॥
 यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग ।

आग लगी लंका दहै उनचासौं बही बयार ।
 उनचासौं बही बयार ताहि को कौन बचावै ॥
 घरे के प्रानी रहे सोऊ आगी गुहरावै ।
 फूटी घर की नारि सगा भाई अलगाना ॥
 बड़े मित्र जो रहे भये सब सत्रु समाना ॥
 कंचन को सब नगर रती को रावन तरसै ॥
 दिया सिंधु ने थाह ऊपर से परवत बरसै ।
 पलटू जेहि ओर राम हैं तेहि ओर सब संसार ॥
 आग लगी लंका दहै उनचासौं बही बयार ।

ज्यों ज्यों सूखे ताल हैं त्यों त्यों मीन मलीन ।
 त्यों त्यों मीन मलीन जेठ में सूख्यो पानी ॥
 तीनों पन गये बीति भजन का मरम न जानी ।
 कँवल गये कुम्हिलाय हंस ने किया पयाना ॥
 मोन लिया कोउ मारि ठाँव डेला चिटराना ।
 ऐसी मानुष देह वृथा में जात अनारी ।
 भूला कौल करार आप से काम बिगारो ॥
 पलटू बरस औ मास दिन पहर घड़ी पल छीन ।
 ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यों मीन मलीन ॥

की तौ इक डौरै रहै की दुह में इक मर जाय ।
 दुह में इक मर जाय रहत है दुविधा लागी ॥
 सुचित नहीं दिन रात उठत बिरहा की आगी ।
 तुम जीवो भगवान मरन है मेरो नीका ॥
 तुम बिन जीवन धिक्क लगै कारिख की टीका ।
 की तुम आवो लेव इहां की प्रान अपना ॥
 दोऊ को दुख होय हंस जोड़ी अलगाना ।

कह पलटू स्वामी सुनो चिन्ता सही न जाय ॥
कौ तौ इक ठौर रहै की दुइ में इक मर जाय ।

आसिक का घर दूर है पहुँचे बिरला कोय ।
पहुँचे बिरला कोय होय जो पूरा जोगी ॥
बिंद करै जो छार नाद के घर में भोगी ।
जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै ॥
ऐसा जो केइ होइ सोई इन बातन लागै ।
पुरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु बस्तर पानी ॥
ऐसे पर ठहराय सोई महबूब बखानी ।
पलटू आप लुटावही काला मुँह जब होय ॥
आसिक का घर दूर है बिरला पहुँचे कोय ।

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ।
छोड़ि देतु है प्रान जहाँ जल से बिलगावै ॥
देइ दूध में डारि रहै ना प्रान गँवावै ।
जा के वही अहार ताहि के का लै दीजै ॥
रहै न कोटि उपाय और सुख नाना कीजै ।
यह लीजै दृष्टांत सकै सो लेइ बिचारी ॥
ऐसो करै सनेह ताहि को मैं बलिहारी ।
पलटू ऐसी प्रीति कर जल और मीन समान ॥
जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ।

ध्यान

जैसे कामिनि के विषय कामी लावै ध्यान ।
कामी लावै ध्यान रैन दिन चित्त न टारै ॥
तन मन धन मर्जद कामिनि के ऊपर वारै ।
लाख कोऊ जो कहै कहा ना तन्निक मानै ॥
बिन देखे ना रहै वाहि को सरवस जानै ।
लेय वाहि के नाम वाहि की करै बड़ाई ॥
तनकि बिसारै नाहि कनक ज्यों किरपिन पाई ।
ऐसी प्रीति अब दीजिए पलटू को भगवान ।
जैसे कामिनि से विषय कामी लावै ध्यान ॥

घट मठ

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ॥
 साहिब तेरे पास याद कर होवै हाजिर ।
 अंदर घसि कै देखु मिलेगा साहिब नादिर ॥
 मान मनी हो धना नूर तब नजर में आवै ।
 बुरका डारै टारि खुदा बाखुदा दिखरावै ॥
 रुह करै मेराज कुफ़र का खेलि कराबा ।
 तीसौ रोज रहै अंदर में सात रिकाबा ॥
 लाभकान में खूब को पावै पलटूदास ।
 साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ॥
 खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग ॥
 घरही लागा रंग कीन्ह जब संतन दाया ।
 मन में भा विस्वास छूटि गइ सहजै माया ॥
 वस्तु जो रही हिरान ताहि का लगा ठिकाना ।
 अब चित चलै न इन उत आपु में आपु समाना ॥
 उठती लहर तरंग हृदय में सीतल लागे ।
 मरम गई है सोय बैठि के चेतन जागे ॥
 पलटू खातिर जमा भइ सतगुरु के परसंग ।
 खोजत खोजत मरि गये घर ही लाला रंग ॥

सूरमा

संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ॥
 तरकस बाँधे मोह ज्ञान दल मारि हटाई !
 मारि पाँच पञ्चीस दिहा गढ़ आगि लगाई ॥
 काम क्रोध को मारि कैद मैं मन को कीन्हा ।
 नव दरवाजे छोड़ि सुरत दसए पर दीन्हा ॥
 अनहद बाजै दूर अटल सिंहासन पाया ।
 जीव भया संतोष आय गुरु नाम लखाया ॥
 पलटू कफ़न बाँधि कै खेंचो सुरति कमान ।
 संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ॥
 लागी गौंसी सबद की पलटू मुआ तुरंत ॥
 पलटू मुआ तुरंत खेत के ऊपर जाई ।
 सिर पहिले उडि रुंड से करै लड़ाई ॥
 तन में तिल तिल घाव परदा खुलि लटकत जाई ।

हेफ खाइ सब लोग लड़ै यह कठिन लड़ाई ॥
 सतगुरु मारा तीर बीच छाती में मेरी ।
 तीर चला होइ पवन निकरि गा तारु फोरी ॥
 कहने वाले बहुत हैं कथनी कथै बेअंत ।
 लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत ॥

पतिव्रता

पतिव्रता को लच्छन सब से रहे अधीन ॥
 सब से रहे अधीन टहल वह सब की करती ।
 सास ससुर औ भसुर ननद देवर से डरती ॥
 सब का पोषन करै सभन की सेज बिछोवै ।
 सब को लेय सुताय पास तब पिय के जावै ॥
 सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी ।
 ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी ॥
 पलटू बोलै मोठे बचन भजन में है लौलीन ।
 पतिव्रता को लच्छन सब से रहै अधीन ॥

सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥
 जरै पिया के साथ सोई है नारि सयानी ।
 रहै चरन चित लाय एक से और न जानी ॥
 जगत करै उपहास पिया का संग न छोड़ै ।
 प्रेम की सेज बिछाय मेहर की चादर ओढ़ै ॥
 ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग बिजासा ।
 मारै भूख पियास आदि संग चलती स्वासा ॥
 रैन दिवस बेहोस पिया के रंग में राती ।
 तन की सुधि है नहीं पिया संग बोलत जाती ॥
 पलटू गुरु परसाद से किया पिया के हाथ ।
 सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥

उपदेस

जाकी जैसी भावना तासे तस ब्यौहार ।
 तासे तस ब्यौहार परसपर दूनौं तारी ॥
 जो जेहि लाइक होय सोई तस ज्ञान बिचारी ।
 जो कोइ डारै फूल ताहि को फूल तयारी ॥

जो कोइ गारी देत ताहि को हाजिर गारी ।
जो कोइ अस्तुति करै आपनी अस्तुति पावै ॥
जो कोइ निंदा करै ताहि के आगे आवै ।
पलटू जस में पीव का वैसे पीव हमार ॥
जाकी जैनी भावना तासे तस न्योहार ।

तो कहं कोई कलु कहै कीजै अपनो काम ।
कीजै अपनो काम जगत को भूकन दीजै ॥
जाति बरन कुल खोय संतन को मारग लीजै ।
लोक बेद दे छोड़ि करै कोउ कितनौं हाँसी ॥
पाप पुन दोउ तजौ यही दोउ गर की फांसी ।
करम न करिहौ एक मरम कोउ लाख दिखावै ॥
टरै न तेरी टेक कोटि ब्रह्मा समुझावै ।
पलटू तनिक न छोड़िहौ जिउ कै संगै नाम ॥
तो कहँ कोऊ कलु कहै कीजै अपनो काम ।

मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम ।
और मौज किहि काम मौज जो ऐसी आवै ॥
आठौ पहर अनन्द भजन में दिवस बितावै ।
ज्ञान समुद्र के बीच उठत है लहर तरंग ॥
तिरबेनी के तीर सुरसती जमुना गंगा ।
संत सभा के मध्य शब्द की फड जब लागै ॥
पुलकि पुलकि गलतान प्रेम में मन को पागै ।
पलटू रहै बिबेक से छूटै नहिं सतनाम ॥
मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम ।

ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय ।
त्यों त्यों गरुई होय सुनै संतन की बानी ॥
ठोप ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी ।
रस रस बाढ़े प्रीति दिनों दिन लागन लागी ॥
लगत लगत लगि जाय भरम आपुइ से भागी ।
रस रस सो चलै जाय गिरौ जो आतुर धावै ॥
तिल तिल लागै रंग भंगि तब सहजे आवै ।
भक्ति पीढ पलटू करै धीरज धरै जो केय ॥
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय ।

हस्ती बिनु मारै मरै करै सिंघ को संग ॥
 करै सिंघ को संग सिंघ की रहनी रहना ।
 अपनो मारा खाय नहीं मुरदा को गहना ॥
 नहिं भोजन नाहिं आस नहीं इद्री को तिष्टा ।
 आठ सिद्धि नौ निद्धि ताहि को देखत विष्टा ॥
 दुष्ट मित्र सब एक लगै ना गरमी पाला ।
 अस्तुति निंदा त्यागि चलत है अपना चाला ॥
 पलटू भलूठा ना टिकै जब लगि लगै न रंग ।
 हस्ती बिनु मारै मरै करै सिंघ को संग ॥

पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय ।
 मित्र न कीजै कोय चित दै बैर बिसाहै ॥
 निस दिन होय बिनास और वह नाहिं निबाहै ।
 चिंता बाढै रोग लगा छिन छिन तन छीजै ॥
 कम्हर गरुआ होय ज्यों ज्यों पानी से भीजै ।
 जोग जुगत की हानि जहाँ चित अंतै जावै ॥
 मक्ति आपनी जाय एक मन कहुँ लगावै ।
 राम मिताई ना चलै और मित्र जो होय ॥
 पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय ।

भेद

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग ।
 तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती ॥
 छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती ।
 सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै ॥
 बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै ।
 निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहि माहीं ॥
 ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं ।
 पलटू जो कोइ सुनै ताके पूरे भाग ॥
 उलटा कूवा गगन में तिसमें जरै चिराग ।

बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥
 मगन भया मन मोर महल अठवें पर बैठा ।

जहं उठै सोहंगम शब्द शब्द के भीतर पैठा ॥
 नाना उठै तरंग रंग बुल्लु बहा न जाई ॥
 चौंद सुरज छिप गये सुप्रमना सेज बिछाई ॥
 छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी ॥
 दसवाँ द्वारा फोडि जोति बाहर हैं जागी ॥
 पलटू धारा तेल की मेलत हैं गया भोर ॥
 बंसी वाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥

चढ़े चौमहले महल पर कुंजी आवे हाथ ।
 कुंजी आवे हाथ शब्द का खोलै ताला ॥
 सात महल के बाद मिलै अठए उजियाला ।
 बिनु कर बाजै तार नाद बिनु रसना गावे ॥
 महा दीप इक बरै दीप में जाय समावे ।
 दिन दिन लागै रंग सफाई दिल का अपने ॥
 रस रस मतलब करै सिताबी करै न सपने ।
 पलटू मालिक तुही है कोई न दूजा साथ ॥
 चढ़े चौमहले महल पर कुंजी आवे हाथ ।

चौंद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात ।
 नहीं दिवस नहिं रात नाहिं उतपति संसारा ॥
 ब्रह्मा विस्नु महेस नाहिं तब किया पसारा ।
 आदि ज्योति नैकुंठु सुन्य नाहीं कैलासा ॥
 सेस कमठ दिगपाल नाहिं धरती आकासा ।
 लोक बेद पलटू नहीं कहौ मैं तबकी बात ॥
 चौंद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात ।

भंडा गड़ा है जाय के हृद बेहृद के पार ।
 हृद बेहृद के पार तूर जहँ अनहृद बाजै ॥
 जगमग जोति जड़ाव सीस पर छत्र विराजै ।
 मन बुधि चित रहे हार नहीं कोउ वह घर पावै ॥
 सुरत शब्द रहै पार बीच से सब फिरि आवै ।
 बेद पुरान की गम्म सबै ना उहवां जाई ॥
 तीन लोक के पार तहां रोसन रोसनाई ।

पलटू ज्ञान के परे है तकिया तहां हमार ॥
भंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार ।

जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख ।
मोहिं पड़ा है देखि नदी इक बड़ी है गहिरी ॥
ता में धारा तीन बीच में सहर बिलौरी ।
महल एक अंधियार बरै तहँ गैब की बाती ॥
पुरुष एक तहँ रहै देखि छवि वाकी माती ।
पुरुष अलापै तान सुना मैं एक ठो जाई ॥
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई ।
पलटू पुरुष परान वह रंग रूप नहिं रेख ॥
जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख ।

अद्वैत

जल से उठत तरंग है जल ही माहि समाय ।
जल ही माहिं समाय सोई हरि सोई माया ॥
अरुभा बेद पुरान नहीं काहू सुरभाया ।
फूल मंहे ज्यो बास काठ में आग छिपायी ॥
दूध मंहे घिउ रहै नीर घट माहिं लुकानी ।
जो निर्गुन से सर्गुन और न दूजा कोई ॥
दूजा जो कोई कहै ताहि को पातक होई ।
पलटू जीव और ब्रह्म से भेद नहीं अलगाया ॥
जल से उठत तरंग है जल ही माहिं समाया ।

उलटवाँसी

गंगा पाछे को बही मछरी बही पहार ।
मछरी बही पहार चूल्ह में फंदा लाया ॥
पुखरा भीटै बाँधि नीर में आग छिपाया ।
अहिरिनि फेकै जाल कुहारिनि भैंस चरावे ॥
तेली के मरिगा त्रैल बैठि के धुबइनि गावै ।
महुवा में लागा दाख भाँग में भया लुबाना ॥
साँप के बिल के बीच जाय के मूस लुकाना ।

पलटू संत बिबेकी बुझिहैं सब्द सम्हार ॥
गंगा पाछे को बही मछरी चढ़ी पहार ।

खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ।
सिर की गई बलाय बहुत सुख हम ने माना ॥
लागे मंगल होन जून लागे सदियाना ।
दीपक बरै अकास महल पर सेज बिछाया ॥
सूतौं महीं अकेल खबर जब मुए की पाया ।
सूतौं पाँव पसारि भरम की डोरी टूटी ॥
मने कौन अब करै खसम बिनु दुविधा छूटी ।
पलटू सोई सुहागिनी जियतै पिय को खाय ।
खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ॥

माया

नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ।
आपुइ नागिनि खाय नागिन से कोऊ ना बाँचे ॥
नेजा धारी संभु नागिनि के आगे नाचे ।
सिंगी श्रृषि को जाय नागिनि ने बन में खाई ॥
नारद आगे पड़े लहर उनहूँ को आई ।
सुर नर मुनि गनदेव सभन की नागिन लीलै ॥
जोगी जती औ तपी नहीं काहू को ढीलै ।
संत बिबेकी गरुड़ हैं पलटू देखि डेराय ॥
नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ।

कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग ।
नागिनि के परसंग जीव के भच्छुक सोई ॥
पहरू की जै चोर कुसल कहवां से होई ।
रुई के घर बीच तहां पावक लै राखै ॥
बालक आगे जहर राखि करिके वा चाखै ।
कनक धार जो होय ताहि ना अंग लगावै ॥
खाया चाहै खीर गाँव में सेर बसावै ।
पलटू माया से डरै करै भजन में भंग ॥
कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग ।

अज्ञानता

घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जायं ।
 मुरदा पूजन जायें भीति को सिरदा नावें ॥
 पान फूल औ खांड जाइ के तुरत चढ़ावें ।
 ताल कि माटी आनि ऊँच के बाँधिनि चौरी ॥
 लोपि पोति कै धरिनि पूरी औ बरा कचौरी ।
 पीयर लूगार पहिरि जाय के बैठिनि बूढ़ा ॥
 भरमि अभुवाई मांगत हैं खसी कै मूंडा ।
 पलटू सब घर बाँटि के लै लै बैठे खायें ॥
 घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जायं ।

जगजीवन साहिब

जगजीवनदास

बाबा जगजीवनदास जी बाबा धरनीदास जी के समकालीन माने गए हैं इनकी जन्म तथा मरण तिथि अनिश्चित है। मिश्रबंधुओं तथा पादरी जॉन टामस का अनुमान है कि ये ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में रहे होंगे। किंतु इनके अनुयायी 'सत्तनामी' पंथ वाले इनकी जन्मतिथि माघ सुदी सप्तमी, मंगलवार, सं० १७२७, तथा मरण वैशाख बदी सप्तमी, मंगलवार सं० १८१७ को मानते हैं। ये जाति के चंदेल क्षत्रिय थे और बाराबकी जिले के सरयू तीर के सरदहा गाँव में उत्पन्न हुए थे। पादरी जॉन टामस साहब कदाचित् भ्रम से इन्हें खत्री समझते हैं।

इनके पिता किसान थे और ये भी आरंभ में अपना समय गाय बैल चराने तथा कृषकोचित अन्य कार्यों में बिताते थे। इनके गुरु से दीक्षित होने के संबंध में एक विचित्र कथा प्रसिद्ध है। एक बार इन्हें बैल चराते समय दो संत मिले। इनमें से एक बुल्ला साहब थे और दूसरे गोविंद साहब। इन लोगों ने इनसे चिलम भरने के लिये आग मांगी। ये आग तो लाए ही पर साथ ही इनकी थकावट दूर करने के अभिप्राय से घर का थोड़ा सा दूध भी लेते आए पर मन में डर रहे थे कि पिता जी को अगर मालूम हो गया तो मार पड़ेगी। बुल्ला साहब ने यह कहते हुए दूध ले लिया कि डरो मत हमें दूध पिलाने से तुम्हारे घर का दूध घटा नहीं बल्कि बहुत बढ़ गया होगा। इन्होंने घर जाकर देखा तो सब बर्तन दूध से लबालब भरे हुए पाए। उल्टे पाँव तुरंत उन दोनों का पीछा किया और कुछ दूर जाकर उन्हें पाया भी। उसी समय इन्होंने उनसे अपने को दीक्षित कर लेने का आग्रह किया। उन्होंने कहा इसकी कोई आवश्यकता नहीं हम लोग तो सिर्फ तुम्हें अपने स्वरूप का ज्ञान कराने भर आए थे, तुम उस जन्म के पहुँचे हुए फकीर हो। इतना कह कर उन्होंने एक विचित्र दृष्टि से इनकी ओर देखा और देखते ही इनकी अवस्था बदल गई। पर इतने पर भी इन्होंने कुछ चिह्न देने का बड़ा आग्रह किया। इस पर बुल्ला साहब ने अपने हुक्के से एक काला धागा और गोविंद साहब ने भी अपने हुक्के से एक सफेद धागा निकाल कर दिया जिससे इन्होंने अपनी कलाई पर बाँध लिया। इन्होंने बाद में जब अपना 'सत्तनामी' नामक पंथ चलाया तो उनका प्रधान चिह्न दाहनी कलाई पर यही दोरंगा धागा हुआ जिसे 'आईदू' कहते हैं। कुछ विद्वान् विश्वेश्वर पुरी को इनका गुरु मानते हैं।

इसके बाद इनकी प्रसिद्धि होने लगी जिससे गाँव वाले ईर्ष्यावश इन्हें बड़ा तंग करने लगे। अंत में इनसे तंग आकर ये सरदहा छोड़ कर पास ही के एक दूसरे गाँव काटवा में चले गए। कहते हैं उसी साल सरयू में बाढ़ आई और सरदहा गाँव बह गया।

इसी प्रकार की कई कथाएँ इनके संबंध की प्रसिद्ध हैं। इनके कोई स्वतंत्र ग्रंथ अभी तक हमारे देखने में नहीं आए हैं पर जॉन टामस का कहना है कि उन्हें इनके दो ग्रंथ 'ज्ञानप्रकाश' और 'महाप्रलय' मिले हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह दो भागों में बेलवेडियर प्रेस से निकला है और संग्रहीत पद्य उसी से लिए गए हैं। इनकी शैली की विशेषता है इनकी सरलता और नम्रता। ये दैन्य भाव का परिचय बहुत कराते हैं। इनके पद्यों में भी प्रसाद गुण का प्राधान्य है। इनके बहुत से पद गाने योग्य हैं और बड़े मधुर हैं। इनकी कविता में प्रायः उसी प्रकार की आत्म-नलानि, क्षोभ अपने को घोर पापी समझने का भाव तथा नितांत असहायता के भाव मिलते हैं जैसे तुलसीदास जी ने अपनी विनयपत्रिका में प्रगट किए हैं। इस दृष्टि से यह अन्य संत कवियों से पृथक् कहे जा सकते हैं कि यह सगुणोपासक भक्त कवियों की भांति परमात्मा में सर्वस्व समर्पण कर देने के पक्षपाती हैं। यों तो इनकी रचना में धार्मिक भाव कम है पर जो है वह सूर तुलसी आदि वैष्णव कवियों की विचारधारा के अधिक निकट है। कबीर के विचारों से कदाचित् यह अधिक प्रभावित नहीं हो सके थे।

जगजीवन साहिब

चितावनी

कहाँ गयो मुरली को बजइया, कहाँ गयो रे ॥ टेक ॥
एक समय जब मुरली बजायो, सब सुनि मोहिरह्यो रे ।
जिनके भाग्य भये पूर्वज के, ते वहि संग गह्यो रे ॥
खबरि न कोई केहुँ की पाई, को धौँ कहाँ गयो रे ।
ऐसे करता हरता यहि जग, तेऊ थिर न रह्यो रे ॥
रे नर बौगे तैं कितना है, केहि गनती माँ है रे ।
जगजीवनदास गुमान करहु नहि, सत्त नाम गहिरहु रे ॥

मैं तैं जग त्यागि मन, चलिये सिर नाई ।
नाम जानि दीन हीन, करिये दीनताई ॥
अहंकार गर्व तैं सब गये हैं बिलाई ।
रावन के सीस काटि, राम की दुहाई ॥
जिन जिन गुमान कीन्ह, मारि गर्द ही मिलाई ।
साधि साधि बाँधि प्रीति ताहि पर सहाई ॥
परसहु गुरु सीस डारि, दुनिया बिसराई ।
जगजीवन आस एक, टेक रहिये लगाई ॥

अरे मन देहु ताज मतवारि ।
जे जे आये जगत मँह इहि गये ते ते हारि ॥
नाहि सुमिर्यौ नाम काँ, सब गयो काम विहारि ।
आपु काँ जिन बड़ा जान्यो, काल खायो मारि ॥
जानि आपुहिँ छोड जग, रहि रहौ डोरि सँभारि ।
वैडि कैं चौगान निरखहु, रूप छवि अनुहारि ॥
रहौ थिर सतसग वासी, देहु सकल बिसारि ।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि, लेहिँ सवै संवारि ॥

मन महुँ नाहिँ बूझत कोय ।
नहीं बसि कछु अहै आपन, करै करता होय ॥
कहत मैं तैं सूझि नाहीँ भर्म भूजा सोय ।

पड़े धारा मोह की बसि डारि सर्वस खोय ॥
 करै निंदा साध की, परि पाप बूढ़ैं सोय ।
 अंत फजीहत होहिँगे, पछिताय रहिहैं रोय ॥
 कहाँ समुझि बिचारि के, गहि नाम दृढ़ धर टोय ।
 जगजीवन है रहहु निर्भय, चरन चित्त समोय ॥

होली

कौनि बिधि खेलौं होरी, यहि बन माँ भुलानी ।
 जोगिन हैं अंग भसम चढ़ायो, तनहिँ खाक करि मानी ।
 ढुँढ़त ढुँढ़त मैं थकित भई हों, पिया पीर नहिँ जानी ॥
 औगुन सब गुन एकौ नाहीं, मँगन ना मैं जानी ।
 जगजीवन सखि सुखित होहु तुम, चरनन में लपटानी ॥

बिरह

उनहीं सां कहियो मोरी जाय ।
 ए सखि पैयाँ परि मैं बिनवाँ, काहे हमैं डारिन बिसराय ।
 मैं का करौं मोर बस नाहीं, दीन्ह्यो अहै मोहिं भटकाय ॥
 ए सखि साईं मोहिँ मिलावहु, देखि दरस मोर नैन जुड़ाय ।
 जगजीवन मन मगन होउ मैं, रहौं चरन कमल लपटाय ॥

सखि बाँसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो ।
 घर की गैल बिसरि गइ मोहिं तें, अंग न बस्तु सँभारो ।
 चलत पाँव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत मतवारो ॥
 घर आँगन मोहिं नीक न लागै, सबद बान हिये मारो ।
 लागि लगन मैं मगन वही सौ, लोक लाज कुल कानि बिसारो ॥
 सुस्त दिखाय मोर मन लीन्ह्यो, मैं तौ चहौं होय नहिं न्यारो ।
 जगजीवन छवि बिसरत नाहीं, तुम से कहौं सो इहै पुकारि ॥

अरी मोरे नैन भये बैरागी ।
 भसम चढ़ाय मैं भइँ जोगिनियां, सबै अभूषन त्यागी ।
 तलफि तलफि मैं तन मन जारयो, उनहिँ दरद नहिं लागी ॥
 निनु बासर मोहिं नींद हरी है, रहत एक टक लागी ।
 प्रीति सां नैनन नीर बहतु हैं, पी पी पी विनु जागी ॥
 सेज आय समुझाय बुझावहु, लेंउ दरस छवि मांगी ।
 जगजीवन सखि तृप्त भये हैं, चरन कमल रस पागी ॥

सखी री करौं मैं कौन उपाई ।

मैं तो ब्याकुल निसि दिन डोलौं उनहिं दरद नहिं आई ।
 काह जानि कै सुधि बिसराई कछु गति जानि न जाई ॥
 मैं तो दासी कलपौं पिय बिनु घर आँगन न सुहाई ।
 तलफि तलफि जल बिना मीन ज्यों अस दुख मोहिं अधिकाई ॥
 निर्गुन नाह बाँह गहि सेजिया सूतहि हियरा जुड़ाई ।
 बिन संग सूते सुख नहिं कयहूँ जैसे फूल कुम्हलाई ॥
 है जोगिनि मैं भस्म लगायौं रहिउं नयन टक लाई ।
 पैयां परौं मैं निरखि निरखि कै महिं का देहु मिलाई ॥
 सुरति सुमति करि मिलहिं एक हूँ गगन मंदिल चलि जाई ।
 रहि यहि महल टहल मँह लागी सत की सेज बिछाई ॥
 हम तुम उनके सूति रहहिं संग मिटै सबै दुचिताई ।
 जगजीवन सिव ब्रह्मा बिस्नू मन नहिं रहि ठहराई ॥
 रवि ससि करि कुरबान ताहि छवि पीवो दरस अघाई ।

प्रेम

जोगिया भगिया खवाइल, बौरानी फिरौं दिवानी ।

ऐसे जोगिया की बलि बलि जैहौं जिन्ह मोहिं दरस दिखाइल ।
 नहिं करते नहिं मुखहिं पियावै नैनन सुरति मिलाइल ॥
 काह कहाँ कहि आवत नाहीं जिन्ह के भाग तिन्ह पाइल ।
 जगजीवन दास निरखि छवि देखै जोगिया मुरति मन भाइल ॥

साईं तुम सेाँ लागो मन मोर ।
 मैं तो भ्रमत फिरौं निमुवासर ॥
 चितवौ तनिक कृपा करि कोर ।
 नहिं बिसरावहु नहिं तुम बिसरहु ॥
 अब चित राखहु चरनन ठोर ।
 गुन ऐगुन मन आनहु नाही ॥
 मैं तो आदि अंत को तोर ।
 जग जीवन बिनती कर माँगै ॥
 देहु भक्ति बर जनि कै थोर ।
 ऐसे साईं की मैं बलिहारियाँ री ॥

ऐ सखि संग रँग रस मातिउं देखि रहिउं अनुहरियाँ री ।
 गगन भवन माँ मगन भइउं मैं बिनु दीपक उजियरियाँ री ॥

भलकि चमकि तंह रूप बिराजै, मिटी सकल अंधियारियाँ री ।
काह कहौं कहिबे को नाहीँ लागि जाहि मन मेंहियाँ री ॥
जगजीवन वह जोती निर्मल मोती हीरा बरियाँ री ।

गुरु बलिहारियाँ मैं जाउँ ॥ टेक ॥
डोरि लागी पोढ़ि अब मैं जपहुँ तुम्हरो नाउँ ।
नाहि इत उत जात मनुवाँ, गगन बासा गाउँ ॥
महा निर्मल रूप छबि सत निरखि नैन अन्हाउँ ।
नाहिँ दुख सुख भर्म व्यापै, तप्त नीचे आउँ ॥
मारि आमन बैठि थिर हूँ, काहु नाहिँ डेराउँ ।
जगजीवन निरवान भे, सत सदा संगी आउँ ॥

बिनय

अब की बार तारु मोरे प्यारे, बिनती करि कै कहौं पुकारे ।
नहिँ बसि अहै के तौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि सवारे ॥
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीँ कोई ।
जो तुम चहत करत सो होई, जल थल मँह रहि जोति समोई ॥
काहुक देत हो मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दढ़ाई ।
कहौं तो कछू कहा नहिँ जाई, तुम जानत तुम देत जनाई ॥
जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान के तान बिचारा ।
चरन सीस मैं नाहीँ टारौं, निर्मल मुरति निबीन निहारौं ॥
जगजीवन का अब बिस्वाम, राखहु मत गुरु अपने पास ।

अब मैं कवन गिनती आउँ ।

दियो जबहिँ लखाइ महिँ कहूँ तबहिँ सुमिरौ नाउँ ॥
समुझि ऐसे परत महिँ कहूँ, बसे सरबस ठाउँ ।
अहो न्यारे कहूँ नाहीँ रूप की बलि जाउँ ॥
नाम का बल दियो जेहि कहूँ राखि निर्भय गाउँ ।
काल को डर नाहिँ उहवाँ भला पायो दाउँ ॥
चरन सीसहि राखि निरखी, चाखि दरस अघाउँ ।
जगजीवन गुर करहु दाया, दास तुम्हरा आउँ ॥

प्रभु गति जानि नाहीँ जाइ ।

अहै केतिक बुद्धि केहिँ महँ कहे को गति गाइ ॥
सेम सम्भू थके ब्रह्मा बिस्तु तारी लाइ ।

हे अपार अगाध गति प्रभु केहु नाहीं पाइ ॥
भान गन ससि तीनि चौथौ लियौ छिनहिँ बनाइ ।
जोति एकै कियौ बिस्तर, जहाँ तहाँ समाइ ॥
सीस दैकै कहाँ चरनन, कबहुँ नहिँ बिसराइ ।
जगजीवन के सत्य गुरु तुम, चरनन की सरनाइ ॥

प्रभु जी का बस अहै हमारी ।

जब चाहत तब भजन करावत, चाहत देत बिसारी ॥
चाहत पल छिन छूटत नाहीं, बहुत होत हितकारी ।
चाहत डारि सूखि पल डारत, डारि देत संहारी ॥
कहं लहि बिनय सुनावौ तुम तैं, मैं तौ अहाँ अनारी ।
जगजीवन दास पास रहै चरनन, कबहुँ करहु न न्यारी ॥

साई को केतानि गुन गावै ।

सूक्ति बूक्ति तस आवै तेहि काँ, जेहि काँ जौन लखावै ॥
आपुहि भजत है आपु भजावत, आपु अलेख लखावै ।
जेहि कहँ अपनी सरनहिँ राखै, सोई भगत कहावै ॥
टारत नहीं चरन तैं कबहुँ, नहिँ कबहुँ बिसरावै ।
सूरति खैचि ऐचि जब राखत, जोतिहिँ जोति मिलावै ॥
सतगुरु कियो गुरुमुखी तेहि, काँ दूसर नाहिँ कहावै ।
जगजीवन ते भे संग बासी, अंत न कोऊ पावै ॥

बालक बुद्धि हीन मति मोरो, भरमत फिरौं नाहिँ दृढ़ डोरी ।
सूरति राखौ चरनन मोरी, लगि रहै कबहुँ नहिँ तोरी ॥
निरखत रहौं जाँउ बलिहारी, दास जानि कै नाहिँ बिसारी ।
तुमहिँ सिखाय पढ़ायो ज्ञाना, तब मैं धर्यौ चरन कै ध्याना ॥
साई समरथ तुम हौ मोरे, बिनतो करौं ठाढ़ कर जोरे ।
अब दयाल हूँ दाया कीजै, अपने जन कहँ दरसन दीजै ॥
नाम तुम्हार मोहिँ है प्यारा, सोई भजे घट भा उजियारा ।
जगजीवन चरनन दियो माथ, साहिब समरथ करहु सनाथ ॥

तुम सों यह मन लागा मोरा ।

करौं अरदास इतनी सुनि लीजै, तको तनक मोहिँ कोरा ॥
कहँ लगि ऐगुन कहाँ आपना, कामी कुटिल लोभी औ चोरा ।
तब के अब के बहु गुनाह भे, नाहिँ अंत कळु छोरा ॥
साई अब गुनाह सब भेटहु, चितै आपनी ओरा ।
जगजीवन कै इतनी बिनती दूटै प्रीति न डोरा ॥

साईं मोहिं भरोस तुम्हारा ।

मोरे बस नहिं अहै एकौ, तुमहिं करो निस्तारा ॥
 मैं अज्ञान बुद्धि है नाहीं, का करि सकौ विचारा ॥
 जब तुम लेत पढ़ाय सिखावत, तब मैं प्रकट पुकारा ॥
 बहुतन भवसागर महं बूड़त, तेहिं उबारि कै तारा ॥
 बहुतन काँ जय कष्ट भयो है, तिन कै कष्ट निवारा ॥
 अब तौ चरन की सरनहिं आयीं, गह्योँ मै पच्छ तुम्हारा ॥
 जगजीवन के साईं समरथ, मोहिं बल अहै तुम्हारा ॥

तेरा नाम सुमिर ना जाय ।

नहिं बस कछु मोर आहै, करहुँ कौन उपाय ॥
 जबहिं चाहत हितू करि कै, लेत चरनन लाय ॥
 बिसरि जब मन जात आहै, देत सब बिसराय ॥
 गजब ख्याल अपार लीला, अंत काहु न पाय ॥
 जीव जंत पतंग जग महं, काहु ना बिलगाय ॥
 करौं विनती जोरि दोउ कर, कहत अहौं सुनाय ॥
 जगजीवन गुरु चरन सरन, है तुम्हार कहाय ॥
 चरनन तर दियो माथ, करिये अब मोहिं सनाथ ।

दास करि कै जानो ॥

बूड़ा सब जगतसार सूझै नहिं वार पार ।

देखि नैनन बूझिय हित आनी ॥

सुमति मोहिं देउ सिखाय आनि में न रहि लुभाय ।

बुद्धिहीन भजन हीन सुद्धि नाहिं आनी ॥

सहसफन ते सेस गावैं संकर तेहिं ध्यान लावै ।

ब्रह्मा बेद प्रगट कहै बानी ॥

कहाँ का कहि जात नाहिं जोती वह सर्व माहिं ।

जगजीवन दरस चहै दीजै बरदानी ॥

साहिब अजब कुदरत तोर ।

देखि गति कहि जात नाहीं, केतिक मति है मोर ॥

नचत सब कोउ काछि कछुनी, भ्रमत फिर विन डोर ॥

होत औगुन आप तैं, सब देत साहिब खोर ॥

कौल करि जग पठै दीन्ह्यो, तौन डारथो तोर ॥

करत कपट संत तेतीं, कहैं मोरी मोर ॥

ऐसी जग की रीति आहै, कहा कहिये टेर ॥

जग जीवनदास चरन गुरु के, सुरत करिये पौढ़ ॥

केतिक बूझि का आरति करऊँ, जैसे रखिहहिं तैसे रहऊँ ॥
 नाहीं कलु बसि आई मोरी, हाथ तुम्हारे आई डोरी ॥
 जस चाहौ तस नाच नचावहु, ज्ञान बास करि ध्यान लगावहु ॥
 तुमहिं जपत तुमहीं बिसरावत, तुमहिं चिताई सरन लै आवत ॥
 दूसर कवन एक हौ सोई, जेहिं का चाहौ भक्त सो होई ॥
 जगजीवन करि बिनय सुनावैं, साहिब समरथ नहिं बिसरावै ॥

आरत अरज लेहु सुनि मोरी ।
 चरनन लागि रहै दृढ़ डोरी ॥
 कबहुँ निकट तैं टारहु नाहीं ।
 राखहु मोहिँ चरन की छाहीं ॥
 दीजै केतिक बाग यह कीजै ।
 अथ कर्म मेटि सरन करि लीजै ॥
 दासन दास हूँ कहाँ पुकारी ।
 गुन मोहिँ नहिँ तुम लेहु सँवारी ॥
 जगजीवन का आस तुम्हारी ।
 तुम्हरी छवि मूरति परवारी ॥

होली

यहि जग होरी; अरी मोहिँ तैं खेलि न जाई ।
 साईँ मोहिँ बिसराय दियो है, तब तैं परधौ भुलाई ॥
 सुख परि सुद्धि गई हरि मोरी, चित्त चेत नहिँ आई ॥
 अनहित हित करि जानि विषै महँ रख्यो ताहि लपटाई ॥
 यहि साँचे महँ पाँचौ नाचैं, अपनि अपनि प्रभुताई ॥
 मैं का करौं मोर बस नाहीं राखत हूँ अरुभाई ॥
 गगन मँदिल चल थिर हूँ रहिये ताकि छवि छकि निरथाई ।
 जगजीवन सखि साईँ समरथ, लेहैं सवै बनाई ॥

साध

गऊ निकसि लन जाहों, बाछा उन घर ही माहों ॥
 तून चरहि चित सुत पासा, एहि युक्ति साध जग बासा ॥
 साधु तैं बड़ा न कोई, कहि राम सुनावत सोई ॥
 राम वही हम साधा, रस एक मता औराधा ॥
 हम साध साध हम माहीं कोउ दूसर जानै नाहीं ॥
 जिन दूसर करि जाना, तंहि होइहि नरक निदाना ॥
 जगजीवन चरन चित लावै सो कहि के राम समुभावै ॥

जब मन मगन भा मस्ताना ।

भयो सीतल महा कोमल, नाहि भावै आन ॥
 डोरि लागीं पोढ़ि गुरु तैं, जगत तैं बिलगान ॥
 अहै मता अगाध तिनका, करै को पहिचान ॥
 अहैं ऐसे जगत माँ कोइ, कहत आहैं ज्ञान ॥
 ऐसे निर्मल ह्वे रहे हैं, जैसे निर्मल मान ॥
 बड़ा बल है ताहि के रे, थमा है असमान ॥
 जगजीवन गुरु चरन परि कै, निर्गुन धरि ध्यान ॥

भेद

गगरिया मोरी चित सो उतरि न जाय ॥
 इक कर करवा एक करि उबहनि, बतियाँ कहाँ अरथाय ॥
 सास ननद घर दारुन आहै, तासों जियरा डेराय ॥
 जो चित छुटै गागर फूटै, घर मोरि सासु रिसाय ॥
 जगजीवन अस भक्ती मारग, कहत अहाँ गोहराय ॥

जाके लगी अनहद तान हो, निरबान निरगुन नाम की ॥
 जिकर करके सिखर हेरे, फिकर रारंकार को ॥
 जाके लगी अजपा गगन भलकै, जोति देख निसान की ॥
 मद्ध मुरली मधुर बाजै, बाँए किंगरी सारंगी ॥
 दहिने जे घंटा संख बाजै, गैब धुन भनकार की ॥
 अकह की यह कथा न्यारी, सीखा नाहीं आन है ॥
 जगजीवन प्रानहि सोधि के, मिलि रहे सतनाम है ॥

ज्ञान

आनंद के सिंध में आन बसे,
 तिन को न रख्यो तन को तपनो ।
 जब आपु में आपु समाय गये,
 तब आपु में आपु लह्यो अपनो ।
 जब आपु में आपु लख्यो अपनो,
 तब अपनो ही जाप रह्यो जपनो ।
 जब ज्ञान को भान प्रकास भयो,
 जगजीवन होय रह्यो सपनो ।

उपदेश

अरे मन चरन तें रहु लागि ।

जोरि दुइ कर सीस दैके, भक्ति बर ले माँगि ।
 और आसा भूँठि आहै, गरम जैसे आगि ॥
 परहिगे सो जरहिगे पै, देहु सर्व तियागि ॥
 समौ फिर एहु पाइहै नहिं, सोउ नहिं गहि जागि ॥
 चेतु पाछिल सुद्धि करि कै, दरस रस रहु पागि ॥
 कठिन माया है अपरबल, संग सब के लागि ॥
 मूल तें कोइ बचे बिरले, गगन बैठे भागि ॥

मन में जेहिं लागी जस भाई ।

सो जानै तैसे अपने मन, का सों कहै गोहराई ।
 साँची प्रीति की रीति है ऐसी, राखत गुप्त छिपाई ॥
 भूँठे कहूँ सिखिलेत अहहिँ पढ़ि, जहँ तहँ भगुरा लाई ॥
 लागे रहत सदा रस पागे, तजे अहहिँ दुचित्ताई ॥
 ते मस्ताने तिनहीं जाने, तिनहिँ को देइ जनाई ॥
 राखत सीस चरन तें लागा, देखत सीस उठाई ॥
 जगजीवन सतगुरु की मूरति, मूरति रहे मिलाई ॥

सत्त नाम बिना कहौ, कैसे निस्तरि हौ ॥ टेक ॥
 कठिन अहै मायाजार, जा को नहिं वार पार,
 कहौ काह करिहौ ॥

हो सचेत चौंकि जागु, ताहि त्यागि भजन लागु ;
 अंत भरम परि हौ (२)

डारहि जमदूत फाँसि, आइहिं नहिं रोइ हँसि ,
 कौन धीर धरिहौ (३)

लागहि नहिं कोइ गोहारि लेइहि नहिं कोइ उबारि ,
 मनहिँ रोइ रहिहौ (४)

भगनी सुत नारि भाइ, मातु पितु सखा सहाइ ,
 तिनहिं कहा कहिहौ (५)

काहुक नहिं कोऊ जगत, मनहिं अपने जानु गत ,
 जीवत मरि जाहु दीन अंतर माँ रहि हौ (६)

सिद्ध साध जोगि जती, जाइहि मरि सब कोई ,
 रसना सतनाम गहि रहिहौ (७)

जगजीवनदास रहै, बैठे सतगुरु के पास,
चरन सीस धरि रहिहौ (८)

मन तन खाक करि कै जानु ।
नीच तें है नीच तेहि तें नीच आपुहि मानु ।
त्याग मैं तैं दीन हूं रहु, तजहु गर्व गुमान ।
देतु हौं उपदेस याहै, निरखु सो निर्वान ।
कर्म धागा लाय बाँधा, हिंदु मुसलमान ।
खैचि लीन्हो तोरि धागा, बिरल कोइ बिलगान ।
खाक है सब खाक होइहि, समुझि आपन ज्ञान ।
सबद सत कहि प्रगट भाखौं, रहहि नाम निदान ।
काल को डर नाहिं तिन्ह काँ, चौथ रहि चौगान ।
जगजीवन दास सतगुरु के, चरन रहि लपटान ।

जो कोई घरहि बैठा रहै ।

पाँच सगत करि पचीसौ, सबद अनहद लहै ॥
दीन सीतल लीन मारग, सहज बाहनि बहै ॥
कुमति कर्म कठोर काठहिं, नाम पावक दहै ॥
मारि मैं तैं लाइ डोरी, पवन थामे रहै ॥
चित्त करतंह सुमति साधू, सुरति माला गहै ॥
राति दिन छिन नाहि छूटै, भक्त सोई अहै ॥
जगजीवन कोइ संत बिरला, सबद की गति कहै ॥

महि ते करि न बंदगी जाइ ।

सुद्धि तुमहीं बुद्धि तुमहीं, तुमहिं देत लखाइ ॥
केतनि हीं गनती में केती, कहि न सकौ बनाइ ।
चहे चरन लगाइ राखी, चाहिये विसराइ ॥
देवता मुनि जती सुर सब, रहे तारी लाइ ।
पढ़ें चारिउ बेद ब्रह्मा, गाइ गाइ सुनाइ ॥
भस्म अंग लगाइ संकर, रहे जोति मिलाइ ।
कौन जाने गति तुम्हारी, रहे जहँ जहँ छाइ ॥
जानिये जन आपना मोहि, कबहुँ ना विसराइ ।
जगजीवन पर करहु दाया, तबहिं भक्ति कहाइ ॥

अब मोहिं जानु आपन दास ॥ टेक ॥

सीस चरन में रहे लागी, और करौ न आस !

दियो मोहि उपदेस तुमहीं, आइ तुझरे पास ॥
 लियोढिग बैठाइ के जग, जानि सबै निरास ।
 भला है अस्थान अम्मर, जोति है परगास ॥
 करौं बिनती बहुत बिधि ते, दीजिये विस्वास ।
 गति तुझारी कौन जाने, जगजीवन है दास ॥

बिनती लेहु इतनी मानि ।

कहों का कहि जात नाहीं, कवन कहौं केतानि ॥
 कियो जबहीं दया तुमहीं, लियो संतन छानि ।
 रूप नीक लदाय दीन्ह्यौ, होत लाभ न हानि ॥
 रहत लागे सदा आगे, सब्द कहत बखानि ।
 लागि गा सो पागि गा, पुनि गगन चढ़ि ढहरानि ॥
 निरमलजोति निहारि निरखत, होत अनहद बानि ।
 जगजीवन गुरु की भई दाया, लियो मन महुँ छानि ॥

अब मैं करौं कौन बयान ।

चहो पल में करहु सोई, होय सो परमान ॥
 सहस जिम्या सेस बरनत, कहत वेद पुरान ।
 मोहि जैसी करहु दाया, करहु तेसि बखान ॥
 संतन कांह सिखाइ लीन्ह्यो, कहत सोई ज्ञान ।
 लागि पागि के रहै अंतर, मस्त रहत निरवान ॥
 रहे मिल तुम्ह नहीं न्यारे, कबहुं नहि बिलगान ।
 जगजीवन धरि सीस चरनन, नहीं भावै आन ॥

अब मैं कहौं का कछु ज्ञान ।

बुद्धि हीनं सिद्ध हीनं, हौं अजान हैवान ॥
 ब्रह्म सेस महेस सुमिरत, गहै अंतर ध्यान ।
 संत तंते रहत लागे, कहत ग्रंथ पुरान ॥
 जोति एकै अहै निरमल, करै सबै बयान ।
 जहाँ जैसे भाव आहै, भयो तस परमान ॥
 करौ दया जान आपन, नहीं जानहुं आन ।
 जगजीवनदास सत्य समरथ, चरन रहु लिपटान ॥

अब सुन लीजै इतनी हमारी ।

लागी रहै प्रीति निसि बासर, दास को अपने नाहि बिसारी ॥
 जो मैं चहौं कहि कहं लौं सुनावों, औगुन कर्म बहुत अधिकारी ॥
 सरन चरन की राखि आपनी, यहु कछु मन मैं नाहि बिचारी ॥

काया यहि कर्महिं की आहै, आपु ते नाही जात सँवारी ।
भवसागर हित जानि बूड़ि जग, जेहिं जान्यो तेहिं लियो उबारी ॥
लीजै राखि भाखि कहौं तुम ते, केतिक बात लियो अनगन तारी ।
जगजीवन के साईं समरथ, अपने निकट ते कबहुं न टारी ॥

तुम सों मन लागो है मोरा ।

हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोग ॥
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनंद घनेरा ।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा ॥
रह्यो अजान अब जानि परयो है, जब चितयो एक कोरा ।
अब निर्वाह किये बनि आइहि, लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा ॥
आवा गमन निवारहु साईं, आदि अंत का आहिउ चोरा ।
जगजीवन बिनती करि माँगै, देखत दरस सदा रह्यो तोरा ॥

साईं मोहिं ते सुमिर न जाई ।

पांच अपरबल जोर अहैं एइ, इन ते कछु न बिसाई ॥
निसि बासर कल देहि नहीं एइ, मोहिं औरै राह लगाई ।
जो मैं चहाँ गहाँ तुव चरना, इन छिन छिन भरमाई ॥
साथ सहेली लिये पचीसों, अपन अपन प्रभुताई ।
जो मन आवै सोई ठानै, हठ हटकि देहिं भटकाई ॥
महल मां टहल करै नहिं पावा, केहि विधि आवहुं धाई ।
ऊँचे चढ़त आनि के रोकै, मानहिं नहीं दुहाई ॥
अब कइ दाया जानि आपना, बिनय कै कहउं सुनाई ।
जगजीवन कै इतनी बिनती, तुम सब लेहु बनाई ॥

हम तें चूक परत बहुतेरी ।

मैं तौ दास अहौं चरनन का, हम हूं तन हरि हेरी ॥
बाल ज्ञान प्रभु अहै हमारा, भूँठ साँच बहुतेरी ।
सो औगुन गुन का कहौं तुम तें, भौसागर तें निबेरी ॥
भव तें भागि आयौं तुव सरने, कहत अहौं अस टेरी ।
जगजीवन की बिनती सुनिये, राखौं पत जन केरी ॥

बिनती सुनिये कृपा निधान ।

जानत अहौं जनावत तुमहीं, का करि सकौं बयान ॥
खात पियत जो डोलत बोलत, और न दूसर आन ।
न्यापि रह्यो कहुं चेत सरन करि, काहुं भरम भुलान ॥
माया प्रबल अंत कछु नाही, सो मन समुझि डरान ।

अब तो सरन और ना जानौं करिहौं सो परमान ॥
 सुद्धि बुद्धि कछु नाहीं मोरे, बालक जैसे अजान ।
 मात सुतहि प्रतिपाल करत है, राखत हित करि प्रान ॥
 मैं केतानि कवन गिनती महुँ, गावत बेद पुरान ।
 जगजीवन का आपन जानहु, चरन रहे लिपटान ॥

साईं मैं तुम्हरी बलिहारी ।

कहाँ काह कहि आवत नाहीं, मन तन तुम पर वारी ॥
 देखत अहाँ खरो ताम्रोवर, भलकै जोति तुम्हारी ।
 केहु भरमाय देत माया महुँ, केहु करत हितकारी ॥
 देखत अहहूँ खेलत सब महं को करि सकै बिचारी ।
 करता हरता तुमहीं आहौं, अजब बनी फुलवारी ॥
 दासन दास कै मोहिं जानिये, जानत अहौ हमारी ।
 जगजीवन दियो सीस चरन तर, कबहूँ नाहिं बिसारी ॥

अब मैं कासों कहौं सुनाई ।

केहु घट की छापी नाहीं, जोति रही सब छाई ॥
 तुम ही ब्रह्मा तुमही बिस्नू, सम्भू तुमही कहाई ।
 सक्ती सेस गनेस तुमहीं हौ, दूजा नहिं कहि जाई ॥
 बासा सब महं अहै तम्हारो, नहीं कहुँ बहराई ।
 जानि ऐसी परत मोहिं का, चरन सरन महुँ आई ॥
 दुक्ख दे फिर दुक्ख मेटत, सुक्ख देत अधिकारी ।
 दास आपन जानौ जिनका, तिन के रहौ सहाई ॥
 तुम ही करता तुम ही हरता, सृष्टी तुमहिं बनाई ।
 जगजीवन कै सत्तगुरु तुम, कौन कहै गोहराई ॥

नैना चरनन राखहूँ लाय ।

केती रूप अनूपम आहै, देऊँ सब बिसराय ॥
 राति दिना औ सोवत जागत, मोहीं इहै सोहाय ।
 नहीं पल पल तजौं कबहूँ, अनत नाहीं जाय ॥
 मोरि बस कछु नाहिं है, जब देत तुमहिं बहाय ।
 चहत खैंचि कै ऐंचि राखत, रहत हौं ठहराय ॥
 दियो नाथ सनाथ करि अब, कहत अहाँ सुनाय ।
 जगजीवन के सतगुरु तुम, सदा रहहु सहाय ॥

चेतावनी

अरे मन देहु तजि मतवारि ।

जे जे आये, जगत महं एहि, गये ते ते हारि ॥

नहीं सुमिरथौ नाम कां, सब गयो काम बिगारि ।
 आपु कां जिन बड़ा जान्यो, काल लायो मारि ॥
 जानि आपुहिं छोटे जग, रहि रहौ डोरि सँभारि ।
 बैठि कै चौगान निरखहु, रूप छवि अनुहारि ॥
 रहौ थिर सतसंग बासी, देहु सकल बिसारि ।
 जगजीवन सतगुरु कृपा करि कै, लेहैं सबै सँवारि ॥

अरे मन समुझ कर पहिचान ।

को तें अहसि कहां ते आयसि, काहे मर्म भुलान ॥
 सुधि सँभारि विचार करिकै, बूभलु पाछिल ज्ञान ।
 नाचु एहि दुइ चारि दिन का, अचल नाहीं स्थान ॥
 लोक गढ़ एहु कोट काया, कठिन माया बान ।
 लाग सब कें बचे कोउ नाहिं, हरथो सब का ध्यान ॥
 खबरदार बेखबर हो नहिं, ओट नाम निर्वान ।
 जगजीवन सतगुरु राखि लेहैं, चरन रहु लिपटान ॥

मन तैं काहे का करत गुमान ।

रहहु अधीन नाम वह सुमिरहु, तोहिं सिखावहुँ ज्ञान ॥
 आये जे जे फूलि भूलि गे, फिर पाछे पछितान ।
 फिरि तो कोई काम न आवा, हँगा जवै चलान ॥
 जो आवा सो खाकहिं मिलि गय, उड़ि उड़ि खेह उड़ान ।
 बृथा गयो आय जग जनमें, जो पै नाहीं जान ॥
 सुद्धि सँभारि सँवारि लेहु करि, अधरम बरहु अडान ।
 जगजीवन गुरु चरन गहे रहु, निरगुन तकु निरवान ॥

अरे मन देहु सबै बिसराय ।

दीन है लवलीन करि कै नाम रहु ली लाय ॥
 नाम अमृत जपहु रसना गुप्त अंतर पाय ।
 मैल छूटि कै होय निरमल सुद्धि पाछिल आय ॥
 निर्गुन निहारि निखहु अनत नाहीं जाय ।
 सीस दुइ कर परहु चरनन छूटि नाहीं जाय ॥
 सदा रहहु सचेत हेत लगाइ नहिं बिसराय ।
 जगजीवन परकास मूरति सूरति सुरति मिलाय ॥

दुनिया जानि बूभिल बौरानी ।

भूठै कहै कपट चतुराई, मनहिं न आनहिं कानी ॥
 नहिं डोपत है सत्तनाम कहं, उसे इहिं अभिमानी ।

है विवाद निंदा कहि भाषहिं, तेही पाप ते आगे हानी ॥
जानत हैं मन मानत नाही, बड़े कहावत शानी ।
नवहिं नहिं न साधु ते दीनता, बूड़ि मुए विनु पानी ॥
मैं तै त्यागि अंतर मा सुमिरै, परगट कहौ बखानी ।
जगजीवन साधन ते नय चलु इहै सुख के खानी ॥

मन तैं नाहिं इत उत धाव ।

रटत रहु दुइ अच्छर अंतर, अपथ गैल न जाव ॥
उहां ते निर्विंदु आयो, पिंड बासा गाँव ।
चेति सुद्धि संभार ले तें, चूकु नाही दाव ॥
समुझि फिरि पछिताइ है, परि जोनि बहु डरपाव ।
सत्त सरसौं बाँटि उबटन, अंग अपने लाव ॥
छूटि मैल होय निर्मल, नूर नीर अन्हाव ।
जगजीवन निर्बान होवै, मिटै सब दुखिताव ॥

जग की कही जात नहिं भाई ।

नैनन देखि परखि करि लीन्ह्यो, तऊ न रह्यो चुपाई ॥
आहै साँच भूँठ कहि भाषहिं, भूठेह साँच गोहराइ ।
ताहि पास संताप परंगे, मर्म परे ते जाई ॥
निंदा करत है जान बूझिल के, जहाँ तहाँ कुटिलाई ।
जानत अहै बनाउ ताहि का, देइहि ताहि सजाई ॥
मैं तौ सरन हौं ताहि चरन की, सूरत नहिं विसराई ।
जगजीवन है ताहि भरोसे, कहै सो तैसे जाई ॥

यहु मन गगन मंदिल राखु ।

सबद की चढ़ देखु सीढ़ी, प्रेम रस तहँ चाखु ॥
रहहु दृढ़ करि मारि आसन, मंत्र अजपा भाखु ।
मते गुरुमुख होहु तहवां, जग्त आस न राखु ॥
पाँच बसि बसि बैठि रहि के, मानु कबहुँ न माखु ।
ईस अहहि पचीस इनके, सदा मन हित बाखु ॥
देहु सब विसराइ करि के, एही धंधे लागु ।
जगजीवनदास निरखि करिके, नयन दर्शन मांगु ॥

चरनन में लागी रहिहौं री ॥ टेक ॥

और रूप सब तिरथ बतावै, जल नहिं पैठ नहैहौं री ।
रहिहौं बैठि नयन तें निरखत, अनत न कतहुँ जैहौं री ॥

तुमहीं तें मन लाऊ रहिहौं, और नहीं मन अनिहौं री ।
जगजीवन के सतगुरु समरथ, निर्मल नाम गहि रहिहौं री ॥

चलु चढ़ी अटरिया धाई री ।

महल न टहल करै नहिं पाई, करिये कौन उपाई री ॥
यहं तौ बैरी बहुत हमारे, तिन तें कछु न बिसाई री ।
पांच पचीसल निस दिन संतावहिं, राखा इन अरुभाई री ॥
साईं तौ निकट बैठि सुख विलसहि, जोतिहि जोति मिलाई री ।
जगजीवन दास अपनाय लेहिं बे, नाहीं जीव डेराई री ॥

मन महं जाइ फकीरी करना ।

रहै एकंत तंत में लागा, राग नित्य नहिं सुनना ॥
कथा चरचा पढ़े सुने नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना ।
ना थिर रहै जहां तहं धावै, यह मन अहै हिंडोलना ॥
मैं तैं गर्व गुमान विवादहिं, सबै दूर यह करना ।
सीतल दीन रहै भरि अंतर, गहै नाम की सरना ॥
जल पषान की करै आस नहिं, अहै किल भरमना ।
जगजीवनदास निहारि निरखि के, गहि रहु गुरु की सरना ॥

इत उत आसा देहु त्यागि ।

सत्त सुकृत तें रहहु लागि ॥

मन तुम नाम रटहु रट लाई ।

रहु सचेत नहिं बिसरि जाई ॥

काया भीतर तीरथ कोटि ।

जानि परत नहिं मन की खोटि ॥

ठाढ़े बैठे पग चलाइ ।

तस पौढे चित अनत न जाइ ॥

रात दिवस धुनि छुटे नाहिं ।

ऐसे जपत रहहु मन माहि ॥

गगन पवन गहि करहु पयान ।

तहवां बैठि रहहु निर्बान ॥

गुरु के चरन गहहु लिपटाइ ।

निरखहु सूरति सीस उठाइ ।

या है ब्यापि रहै सब माहिं ।

देखत न्यारा कतहूँ नाहिं ॥

जगजीवन कहि मथि पुरान ।

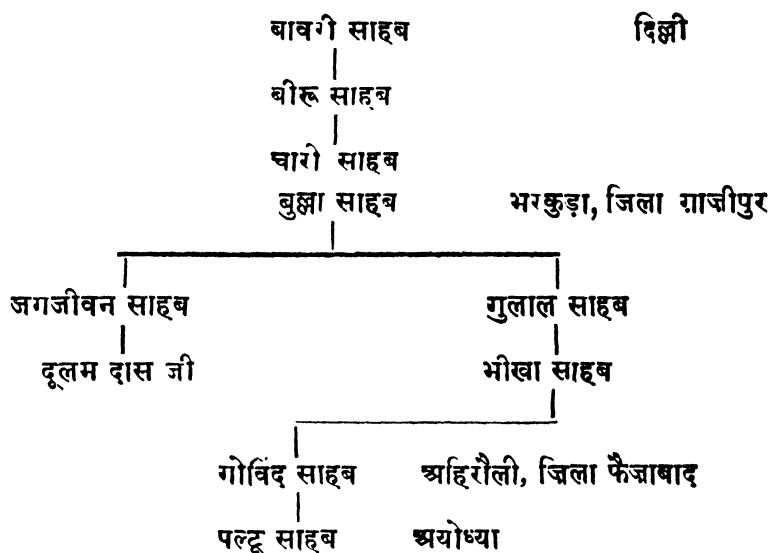
यहि तें सनमत और न आन ॥

भीखा साहिब

भीखादास का जन्म जिला आजमगढ़ के खानपुर बोहना नाम के गाँव में हुआ था । इनका समय निश्चय रूप से नहीं ज्ञात है । कहते हैं कि गाजीपुर जिले के भुरकुड़ा नामक गाँव में इनकी उपस्थिति में ही इनके गुरु गुलाल साहब की लिखी हुई एक हस्तलिखित पुस्तक मौजूद है । इसी ग्रंथ के अनुसार इसकी रचना सं० १७८८ से आरंभ होकर फागुन सुदी ५ वृहस्पतिवार सं० १७९२ में समाप्त हुई । इसी के आधार पर बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'भीखा साहब की बानी' के संपादक का अनुमान है, कि भीखा साहब का समय सं० १७७० से १८२० के बीच में रहा होगा । गुलाल साहब लिखित उक्त ग्रंथ की प्रति अलभ्य है किंतु उपर्युक्त संपादक महोदय का कथन है कि उन्हें दोनों ग्रंथों के मिलान करने पर बहुत से पद समान मिले । जो हो, यह केवल अनुमान मात्र है पर इतना कह सकते हैं कि यह तिथि भीखा के वास्तविक समय से बहुत भिन्न नहीं हो सकती ।

इनकी जीवनी के संबंध में प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था में ही यह गुरु की खोज में काशी चले गए पर वहाँ से निराश होकर लौट रहे थे कि रास्ते में इन्हें गाजीपुर जिले के भुरकुड़ा ग्रामनिवासी महात्मा गुलाल जी का पता चला और इन्होंने वहाँ जाकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया । गुलाल साहब की मृत्यु के बाद इन्हीं को उनकी गद्दी मिली और इसके बाद इन्होंने अपना सारा जीवन भुरकुड़ा में ही बिता दिया । १२ वर्ष की अवस्था में ये वहाँ गए थे और लगभग ५० वर्ष की अवस्था में वहीं इनका स्वर्गवास हुआ । भुरकुड़ा में इनके गुरु गुलाल साहब और दादा गुरु बुल्ला साहब की समाधि के बगल में ही इनकी समाधि भी मौजूद है ।

अन्य संत कवियों की भाँति इन्होंने भी अपना एक पंथ चलाया था और इसके बहुत से अनुयायी अब भी गाजीपुर और बलिया जिलों में मिलते हैं । इनके प्रधान अड्डे भुरकुड़ा और बलिया जिले के बड़े गाँव में हैं । भुरकुड़े में अब भी विजयादशमी के दिन इनकी स्मृति में एक बड़ा भारी मेला होता है । बड़े गाँव के महंत के पास भीखा साहब के गुरु घराने का एक वंश-वृत्त जिसकी नकल 'भीखा-साहब की बानी' में दी गई है । उसी की प्रतिलिपि हम नीचे दे रहे हैं :—



इनके कई ग्रंथों के नाम मिलते हैं जिनमें सबसे प्रसिद्ध 'राम-जहाज' है। प्रस्तुत संग्रह 'संतबानी संग्रह' और 'भीखा साहब की बानी' की सहायता से किया गया है।

इनकी कविता बहुत स्पष्ट होती थी और उसमें प्रसाद गुण का प्राधान्य कहा जा सकता है। विषय इनके वही सद्गुरु, शब्द महिमा, नाम महिमा तथा सृष्टितत्व के विवेचन आदि हैं जिन्हें प्रायः सभी संत कवियों ने अपनाए हैं।

— — —

भीखा साहिब

गुरुदेव

मेरो हित सोइ जो गुरु ज्ञान सुनावै ॥
दूजी दृष्टि दुष्ट सम लागै, मन उनमेख बढ़ावै ।
आतम राम सूझम सरूप, केहि पटतर दै समभावै ॥
सबद प्रकास बिनहिँ जोग बिधि, जगमग जोति जगावै ।
धन्य भाग ता चरन रेनु ले, भीखा सीस चढ़ावै ॥

अनहद शब्द

धुनि बजत गगन महुँ बीना, जँह आपु रास रस भीना ।
मेरी ढोल संख सहनाई, ताल मृदंग नवीना ॥
सुर जँह बहुतै मौज सहज उठि, परत है ताल प्रवीना ।
बाजत अनहद नाद गहागह, धुधुकि धुधुकि सुर भीना ॥
अँगुरी फिरत तार सातहुँ पर, लय निकसत भिन भीना ।
पाँच पचीस बजावत गावत, निर्त चारु छबि दीन्हा ॥
उधटत तननन भितां भितां, कोउ तायेइ येइ तत कीन्हा ।
बाजत ताल तरंग बहु, मानो जंत्री जंत्र कर लीन्हा ॥
सुनत सुनत जिव थकित भयो, मानो हँ गयो सबद अधीना ।
गावत मधुर चढ़ाय उतारत, रुनभुन रुनभुन धूना ॥
कटि किंकिनि पगु नूपुर की छबि, सुरति निरति लौलीना ।
आदि सबद ओंकार उठतु है, अटुट रहत सब दीना ॥
लागी लगन निरंतर प्रभु सो, भीखा जल मन भीना ॥

प्रेम

कहा कोउ प्रेम विसाहन जाय ।

महँग बड़ा गथ काम न आवै, सिर के मोल बिकाय ॥
तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सुहाय ।
तजि आपा आपुहिँ है जीवै, निज अनन्य मुखदाय ॥
यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूँगे गुड़ खाय ।
जानहि भले कहै सो कासों, दिल की दिलहिँ रहाय ॥
बिनु पग नाच नैन बिनु देखै, बिन कर ताल बजाय ।

बिन सखन धुनि सुनै विविध विधि, बिन रसना गुन गाय ॥
 निर्गुन में गुन क्योंकर कहियत, व्यापकता समुदाय ।
 जँह नाहीं तँह सब कुछ दिखियत, अँधरन की कठिनाय ॥
 अजपा जाप अकथ की कथनी, अलख लखन किनपाय ।
 भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय ॥

प्रीति की यह रीति बखानै ।

कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन कमल कर ध्यानौ ॥
 हो चेतन्य विचारि तजो भ्रम, खाँड़ धूर जनि सानौ ।
 जैसे चात्रिक स्वाँत बुंद बिनु, प्राण समरपन ठानौ ॥
 भीखा जेहि तन राम भजन नहिँ, काल रूप तेहि जानौ ।

बिनती

अस करिये साहब दाया ।

कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन माया ॥
 सोवत मोह निसानिस बासर, तुमहीं मोहिं जगाया ।
 जनमत मरत अनेक बार, तुम सतगुरु होय लखाया ॥
 भीखा केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन राया ।

मोहिं राखो जी अपनी सरन ।

अपरम्पार पार नहिं तेरो, काह कहाँ का करन ॥
 मन क्रम बचन आस इक तेरी, होउ जनम या मरन ।
 अबिरल भक्ति के कारन तुम पर, है बाम्हन देउं धरन ॥
 जन भीखा अभिलाख इही, नहिं चहाँ मुक्ति गति तरन ।

प्रभु जी करहु अपनो चेर ।

मैं तो सदा जनम की रिनिया, लेहु लिखि मोहिं केर ॥
 काम क्रोध मद लोभ मोह यह, करत सबहिन जेर ।
 सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे, परे करम के फेर ॥
 सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक, ऐसे ऐसे ठेर ।
 खोजत सहज समाधि लगाये, प्रभु को नाम न नेर ॥
 अपरंपार अपार है साहिब, है अधीन तन हेर ।
 गुरु परताप साध की संगति, छूटे सो काल अहेर ॥
 त्राहि त्राहि सरनागत आयो, प्रभु दरबो यहि बेर ।
 जन भीखा को उरिन कीजिये, अब कागद जिनि हेर ॥

साध महिमा

भजन ते उत्तम नाम फकीर ।

छिमा सील संतोष सरल चित, दरदवंत पर पीर ॥
 कौमल गदगद गिरा सुहावन, प्रेम सुधा रस छोर ।
 अनहद नाद सदा फल पायो, भोग खाँड घृत खोर ॥
 ब्रह्म प्रकास को भेष बनायो, नाम मेखला चोर ।
 चमकत नूर जहूर जगामग, ढाँके सकल सरौर ॥
 रहनि अचल इस्थिर कर आसन, ज्ञान बुद्धि मति धीर ।
 देखत आतम राम उघारे, ज्यों दरपन मधि हीर ॥
 मोह नदी भ्रम भँवर कठिन है, पाप पुन्य दोउ तीर ।
 हरि जन सहजे उतरि गये ज्यों, सूखे ताल को भीर ॥
 जग परपंच करम बहतो है, जैसे पवन रु नीर ।
 गुरु गम सबद समुद्रहिं जावे, परत भयो जल थीर ॥
 केलि करत जिय लहरि पिया संग, मति बड़ गहिर गँभीर ।
 ताहि काहि पटतरो दीजिए, जिन तन मन दियो सीर ॥
 मन मतंग मतवार बड़ो है, सब ऊपर बलबीर ।
 भीखा हीन मलीन ताहि को, छीन भयो जस जीर ॥

रेखता

करो बिचार निर्धार अवराधिये,
 सहज समाधि मन लाव भाई ।
 जब जक्त कि आस तें होहु निरास,
 तब मोच्छ दरबार की खबर पाइ ॥
 न तो भर्म अरु कर्म बिच भोग भटकन लग्यो,
 जरा अरु मरन तन वृथा जाई ॥
 भीखा मानै नहीं कोटि उपदेस सठ ।
 थक्यो बेदान्त जुग चारि गाई ॥

उपदेश

मन तूँ राम से लौ लाव ।

त्यागि के परपंच माया, सकल जगहिं नचाव ॥
 साच की तू चाल गहि ले, झूठ कपट बहाव ।
 रहनि सों लौ लीन है, गुरु ग्यान ध्यान जगाव ॥
 जोग की यह सहज जुक्ति, बिचार कै ठहराव ।
 प्रेम प्रीति सों लागि के घट, सहज हीं सुख पाव ॥

दृष्टि ते' आदृष्टि देखो, सुरति निरति बसाव ।
 आतमा निर्धार निर्भौ, बानि अनुभव गाव ॥
 अचल इस्थिर ब्रह्म सेवो, भाव चित अरुभावा ।
 भीखा फिर नहिं कबहुँ पैहौ, बहुरि ऐसो दाव ॥

मन तुम राम नाम चित धारो ।

जो निज कर अपनी भल चाहो, ममता मोह बिसारो ॥
 अंदर में परपंच बसायो, बाहर मेख सवारो ।
 बहु बिपरीति कपट चतुराई, विन हरि भजन बिकारो ॥
 जप तप मख करि विधि विधान, जततत उदबेग निवारो ।
 विन गुरु लच्छु सुदृष्टि न आवै जन्म मरन दुख भारो ॥
 ग्यान ध्यान उर करहु धरहु दृढ़ि सब्द सरूप बिचारो ।
 कह भीखा लवलीन रहो उत, इत मति सुरति उतारो ॥

जग के करम बहुत कठिनाई ।

तातैं भरमि भरमि जहंड़ाई ॥टेक॥

ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़ करत लड़िकाई ।
 परमारथ तजि स्वारथ सेबहि यह धौं कौन बड़ाई ॥
 बेद बेदांत को अर्थ बिचारहिं, बहु विधि रुचि उपजाई ।
 माया मोह ग्रसित निस बासर, कौन बड़ो सुखदाई ॥
 लेहि बिसाहि काँच को सौदा, सोना नाम गँवाई ।
 अमृत तजि विष अँचपन लागे, यह धौं कौन मिठाई ॥
 गुरु परताप साध कं संगति, करहु न काहे भाई ।
 अंत समय जब काल गरसिहै कौन करौ चतुराई ॥
 मानुष जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई ।
 भीखा को मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई ॥

मन तुम लागिहु सुख सरूपे ॥टेक॥

तन मन धन न्यौछावरि बारो बेगि तजो भव कूपे ॥
 सतगुरु कृपा तहां लावो, जहां छौंह नहिं धूपे ।
 पइया करम ध्यान सों फटको जोग जुक्ति करि सूपे ॥
 निर्मल भयो ज्ञान उंजियारो गंग भयो लखि चूपे ।
 भीखा दिव्य दृष्टि सों देखत सोह बोलत मु पे ॥

समुझि गहो हरि नाम, मन ते समुझि गहो हरि नाम ॥टेक॥

दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपट रहो धन धाम ॥

देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना बेकाम ।
जोग जुक्ति अरु ज्ञान ध्यान तैं, निकट सुलभ नहिं लाम ॥
इत उत की अब आसा तजि के, मिलि रहु आतम राम ।
भीखा दीन कहां लागि बरनै, धन्य घरी वहि जाम ॥

मनुवां नाम भजत सुख लीवा ॥टेक॥

जन्म जन्म के उरभनि पुरभनि समुभत करकत हीया ।
यह तो माया फांस कठिन है का धन सुत वित तीया ॥
सत शब्द तन सागर माहीं रतन अमोलक पीया ।
आपा तजै धँसै सो पावै ले निकसै मरजीया ॥
सुरति निरति लौलीन भयो जब दृष्टि रूप मिलि थीया ।
ज्ञान उदित कल्पद्रुम को तरु जुक्ति जमावो बीया ॥
सतगुरु भये दयाल ततच्छिन करना था सो कीया ।
कहै भीखा परकासी कहिये पर अरु बाहर दीया ॥

कोउ लखि रूप सन्द सुनि आई ॥टेक॥

अविगत रूप अजायब बानी, ता लुवि का कहि जाई ॥
यह तौ सन्द गगन घहरानो, दामिनि चमक समाई ।
वह तौ नाद अनाहद निसदिन, परखत अलख सोहाई ॥
यह तौ बादर उठत चहुँ दिसि, दिवसहिं सूर छिपाई ।
वह तौ सुन्न निरंतर बुधुक्त, निज आतम दरसाई ॥
यह तौ भरतु है बूंद भराभर, गरजि गरजि भरलाई ।
वह तौ नूर जहूर बदन पर, हर दम तूर बजाई ॥
यह तौ चारि मास को पाहुन, कबहुं नाहिं थिरताई ।
वह तौ अचल अमर की जै जै, अनंत लोग जस आई ॥
सत गुरु कृपा उमै बर पायो, सन्वन दृष्टि सुखदाई ।
भीखा सो है जन्म सँघानी, आवहि जाहि न भाई ॥

चैतत बसंत मन चित चैतन्य ।
जोग जुगति गुरु ज्ञान धन्य ॥
उरध पधार्यो पवन घोर ।
दृष्टि पलान्यो पुरुष ओर ॥
उलटि गयो थकि मिटलि दाह ।
पच्छिम दिसि कै खुललि राह ॥
सुन्न मँडल में बैदु जाय ।
उदित उजल छवि सहज पाय ॥

जोति जगामग भरत नूर ।
 ह्मां निसु दिन नौवति वजत तूर ॥
 भलक भनक जिव एक होय ।
 मत प्रान अपान को मिलन सोय ॥
 रह अलख नभ फूल्यो फूल ।
 सोइ केवल आतन राम मूल ॥
 देखत चकित अचरज आहि ।
 जो वह सो यह कहौं काहि ॥
 भीखा निज पहिचान लीन्ह ।
 वह साधिक ब्रह्म सरूप चीन्ह ॥

मन में आनंद फाग उठो री ॥ टेक ॥
 ईगला पिंगला तारा देवे, सुखमन गावत होरी ।
 बाजत अनहद डंक तहां धुनि, गगन में ताल परो री ॥
 सतसंगति चोवा अवीर करि, दृष्टि रूप लै घोरी ।
 गुरु गुलाल जी रंग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री ॥

आनंद उठत भकोरी फगुवा, आनंद उठत भकोरी ॥ टेक ॥
 अनहद ताल पखावज बाजै, मनमत राग मरोरी ।
 काया नगर में होरी खेल्यो, उलटि गयो तेहिं खोरी ॥
 नैनन नूर रंग उमग्यो, चुवत रहत निज ओरी ।
 गुरु गुलाल जी दाया कीन्हों, भीखा चरन लगो री ॥

निगमल हरि को नाम सजीवना ,
 धन सो जन जिन के उर करेऊ ।
 जस निरधन धन पाइ संचतु है ,
 करि निग्रह किरपिनि मति घरेउ ॥
 जल विनु मीन फनी मनि निखत ,
 एकौ घरी पलक नहिं टरेऊ ॥
 भीखा गूंग औ गुड को लेखा ,
 पर कछु कहे बने ना परेऊ ॥

गये चारि सनकादि पिता लोक आदि धाम ,
 किये परनाम भाव भगति दृढ़ायऊ ।
 पूछ्यो हंस प्रीति भाव माया ब्रह्म बिलगाव ,
 विधि जग ब्यौहारी प्रीति उत्तर न आयऊ ।

कियो बहुत समास भयो अरथ न भास ,
हरि हरि सुमिरन ध्यान आरत सुनायऊ ।
प्रभु हँस तन लियो द्विज दरसन दियो ,
भीखा अज सनकादि कर जोरि माथ नायऊ ।

पाप औ पुन को भुलत हीडोलना ,
ऊँच अरु नीच सब देह धारी ।
पाँच अरु तीनि पञ्चीस के बस परो ,
राम को नाम सहजै बिसारी ।
महा कवलेस दुख बार अरु पार नहिं ,
महा मारि जमदूत दें त्रास भारी ।
मन तोहिं धिरकार धिरकार है तोहिं ,
ध्रुग बिना हरि भजन जीवित भिखारी ।

भयो अचेत नर चित्त चिन्ता लग्यो ।
काम अरु क्रोध मद लोभ राते ॥
सकल परपंच में खूब फाजिल हुआ ।
माया मद चाखि मन मगन माते ॥
बढ्यो दीमाग मगरूर हय गज चढ़ा ।
कह्यो नहिं फौज मूरि जाते ।
भीखा यह खाव की लहरि जग जानिये ,
जागि कर देखु सब भूँड नाते ॥
दूजे वह अमल दस्तूर दिन दिन बढ्यो ,
घटा अँधियार उँजियार धाया ।
अर्ध से उर्ध भरि जाय अन्नपा जप्यो ,
चाँद अरु सूर मिलि त्रिकुटि आया ।
भरत जहं नूर जहूर असमान लौं ,
रूह अफताब गुरु कीन्ह दाया ।
भीखा यह सत्त सो ध्यान परवान है ,
सुन्न धुनि जोति परकास छाया ॥

सकल बेकार की खानि यह देंहि है ,
मल दुर्गंध तेहि भरी माही ।
मन अरु पवन यह जोर दोनों बड़े ,
इन को जीत के पार जाहीं ।

जाहि गुरु ज्ञान अनुमान अनुभव करे ,
 भयो आपु आप मिलि नाम पाहीं ।
 भीखा आधार अपार अद्वैत है ,
 समुंद अरु बुंद कोइ और नाहीं ।

जहां तक समुंद दरियाव जल कूप है ,
 लहरि अरु बुंद को एक पानी ।
 एक सूत्रन को भयो गहना बहुत ,
 देखु विचार हेम खानी ।
 पिरथवी आदि घट रचथो रचना बहुत ,
 मितिका एक खुद भूमि जानी ।
 भीखा इत आतमा रूप बहुते भयो ,
 बोलता ब्रह्म चीन्हें सो शानी ।

सो हरि जन जो हरि गुन गैनी ।

मन क्रम बचन तहां लै लावे, गुरु गोविन्द को पैनी ॥
 ता वर होहि दयाल महाप्रभु, जुक्ति बतावैं सैनी ।
 बूझि बिचारि समझि ठहरावत, तुरत भयो चित चैनी ॥
 काम क्रोध मद लोभ पखेरू, टूटि जात तब डैनी ।
 आतम राम अभ्यास लखन करि, जब लेवे निज ऐनी ॥
 ब्रह्म सरूप अनूप की सोभा, नहिं कहि आवत बैनी ।
 भीखा गुरु गुलाल सिर ऊपर, खुंदत है विनु नैनी ॥

देखो प्रभु मन कर अजगूता ॥ टेक ॥

राम को नाम मुधा सम छोड़त विषया रस ले सूता ।
 जैसे प्रीति किसान खेत सों दारा धन औ पूता ॥
 ऐसी गति जो प्रभु पद लावै सोई परम अवधूता ।
 सोई जोग जोगेसुर कहिये जा हिये हरि हरि हूता ॥
 भीखा नीच ऊंच पद चाहत मिलै कवन करतूता ।

मन मोर बड़ अवरेबिया ।

हरि भजि सुख नहिं लेत, मन मोर बड़ अवरेबिया ॥ टेक ॥
 द्रव्य दृष्टि नहिं रूप निरेखत, नूर देत बहु जेबिया ।
 सतगुरु खेत जोति लै बोवल, भीखा जम लियो हिसबिया ॥

मन अनुरागल हो सखिया ॥ टेक ॥

नाहों संगत औ सौ ठकठक, अलख कौन बिधि लखिया ।

जन्म मरन अति कष्ट करम कहं, बहुत कहां लगि भूलखिया
 बिनु हरि भजन के भेष लियो, कहा दिये तिलक सिर तखिया ॥
 आतम राम सरूप जाने विन, होहु दूध के मखिया ।
 सतगुरु सब्दहिं सांचि गहो, तजि भूँठ कपट मुख भखिया ॥
 बिन मिलले सुनले देखले विन, हिया करत सुति अँखिया ।
 कृपा कटाच्छु करो जेहिं छिन, भरि कोर तनिक इक अँखिया ॥
 बन धन सो दिन पहर घरी पल, जब नाम सुधा रस चखिया ।
 काल कराल जजाल डरहिंगे, अविनासी की धकिया ॥
 जन भीखा पिया आपु भइल, उडि गैलि भरम की रखिया ॥

राम नाम भजि ले मन भाई ।

काहि के रोस करहु घर ही में, एकै तुम हमरे पितु भाई ॥
 देखहु सुमति संग के भोयप, छिमा सील संतोष समाई ।
 एकै रहनि गहनि एकै मति, ज्ञान विवेक विचार सदाई ।
 होहु परम पद के अधिकारी, संत सभा महं बहुत बड़ाई ।
 कुमति प्रपंच कुचाल सकल यह, तुम्हरो देखि बहुत मुसकाई ॥
 अब तुम भजहु सहाय समेतो, पांच पचीस तीन समुदाई ।
 तुम अनादि सुत बड़े प्रतापी, छोटे कर्म करि होहि हँसाई ॥
 तुम मोहि कीन्ह हाल की गोदी, इत उत यह भरभाई ।
 तेहिं दुख सुख के अंत कहे की, तन धरि धरि मोहिं बहुत निचाई ॥
 अब अपनी उनमेख तजन की, सपथ करो दृढ़ मोहिं सोहाई ।
 जन भीखा कै कहा मानु अब, मन तोहिं राम के लाख दोहाई ॥

जान दे करौं मनुहरिया हो ॥टेक॥

अनेक जतन करके समझाओं ।

मानत नाहिं गँवरिया हो ॥
 करत करेरी नैन बैन संग ।
 कैसे के उतरब दरिया हो ॥
 या मन तैं सुर नर मुनि थाके ।
 नर बपुरा कित धरिया हो ॥
 पार भइलौं पिव पीव पुकारत ।
 कहत गुलाल भिखरिया हो ॥

हमरो मनुवां बड़ो अनारी ।

साहब निकट न करत चिन्हारी ॥

प्राणायाम न जुक्ति विचारी ।

अजपा जाप न लावै तारी ॥
 खोलै न भ्रम तैं बज्र किवारी ।
 निज सरूप नहिं देखि मुरारी ॥
 प्राण अपान मिलन न सँवारी ।
 गगन गवन नहिं सब्द उचारी ॥
 मुन्न समाधि न चेत बिसारी ।
 यह लालसा उर बड़ी हमारी ॥
 सर्व दान गुरु दाता भारी ।
 जाचक सिष्य सो लेत भिखारी ॥

सब भूला किधौं हमहिं भुलाने ।
 सो न भुला जाके आतम ध्याने ॥
 एब घट ब्रह्म बोलता आही ।
 दुनिया नाम कहाँ मैं काही ॥
 दुनिया लोक वेद मति धाये ।
 हमरे गुरु गम अजपा जापे ॥
 हरिजन जे हरि रूप समावे ।
 घमासान भये सूर कहावे ॥
 कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं ।
 जब लगि साँच भूँठ तन माहीं ॥

रे मन हूँ है कवन गति मेरी ।
 मेरी समझ बूझ होत देरी ॥
 यह संसार आये गति माया लागी धाये ।
 राम नाम नहिं जान्यो मति गति न निवेरी ॥
 भजन करारे आये कबहीं न साँचि गाये ।
 करम कुटिल करे मति गइ तेरी ॥
 भीखा चरनों में लीजै मन माया दूरि कीजै ।
 बार बार मांगै इहै प्रीत लागै तेरी ॥

अधम मन राम नाम पद गहो ।

ताते यह तन धरि निरबहो ॥ टेक ॥

अलख न लखि जाय अजपा न जपि जाय ।
 अनहद के हद नाहीं हो ॥
 कथनी अकथ कवनि विधि होवे
 जहं नाहीं तहं ताही हो ॥

बिन मूल पेड़ फल रूप सोई ।
 निज दृष्टि बिन देखी कहीं ॥
 बिन अकार को रह नूरे हैं ।
 अग्नि बिन भ्रम में दहो ॥
 बोलत है आप माहीं आत्मा है हम नाहीं ।
 अविगति की गति महो ॥
 पूरन ब्रह्म सकल घट व्यापक ।
 आदि अंत भरि पूर रहो ॥
 सतगुरु सत दियो सुरति निरति लियो ।
 जीव मिलि पिय पहुँच हो ॥
 जब भीखा अब कारन छोड़ो ।
 तत्त पदारथ हाथ लहो ॥

उछो दिल अनुमान हरि ध्यान ॥ टेक ॥

भर्म करि भूल्यो आपु आपन ।

अब चीन्हो निज पति भगवान ॥
 मन वच क्रम दढ़ मत परवान ।
 वारो प्रभु पर तन मन प्रान ॥
 सबद प्रकाश दियो गुरु दान ।
 देखन सुनत नैन बिनु कान ॥
 जा को सुख सोई जानत जान ।
 हरि रस मधुर कियो जिन पान ॥
 निर्गुन ब्रह्म रूप निर्वान ।
 भीखा खलओला लग तान ॥

मन चाहत दृष्टि निहारी ।

सुरति निरति अंतर लै जावो निज सरूप अनुहारी ॥
 जाग जुक्ति मिलि परखन लागी पूरन ब्रह्म बिचारी ।
 पुलकि पुलकि आपा महँ चीन्हत देखत छवि उँजियारी ॥
 सुखमन के घर आसन मांडी इंगल पिंगलहिं सुढारी ।
 सुन्न निरंतर साहब आये सब घट सब तें न्यारी ॥
 प्रेम प्रीति तन मन धन अरपो प्रभु जी की बलिहारी ।
 गुरु गुलाल के चरन कमल रज लावत मात भिखारी ॥

चरनदास

चरनदास का जन्म मेवात (अलवर) प्रांत के डेहरा नामक गाँव में भादों सुदी तृतीया, मंगलवार, सं० १७६० में हुआ था। इन के पिता का नाम मुरलोधर जी और माता का नाम कुंजी देवी था। यह लोग प्रसिद्ध दूसर (धूसड़) कुलोत्पन्न थे। इस कुल के संबंध में थोड़ा सा मतभेद है। कुछ दूसर अपने को क्षत्रिय कहते हैं, पर विशेष कर यह कलवार माने जाते हैं। इनके पिता का स्वर्गवास इन के शैशव काल में ही हो गया था। कहा जाता है यह भी एक पहुँचे हुए फ़कीर थे और इनकी मृत्यु के बारे में कहा जाता है कि इनकी मृत्यु किसी ने देखा नहीं। एक दिन भजन के लिये जंगल में जाकर यह यकायक अदृश्य हो गए थे। पिता की मृत्यु के बाद ही चरनदास का मन भी सब ओर से विरक्त सा होकर भगवद्-भक्ति में ही रम गया। कहते हैं १९ वर्ष की अवस्था में जंगल में घूमते हुए इन्हें शुकदेव जी मिले और उन्होंने ही इन्हें दीक्षित किया था और उन्होंने ही इनका नाम चरनदास रक्खा, पहले इन का नाम रणजीत था। इन सब बातों का संक्षिप्त विवरण चरनदास जी ने स्वयं ही अपने निम्नलिखित पद्य में दे दिया है।

डेहरे मेरो जनम नाम रणजीत बखानो ।
 मुरली को सुत जान जात दूसर पहिचानो ॥
 बाल अवस्था माँहि बहुरि दिल्ली में आयो ।
 रमत मिले शुकदेव नाम चर्णदास धरायो ॥
 जोग जुगति कर भक्ति कर ब्रह्मज्ञान दृढ़ कर गह्यो ।
 आतम तन विचार के अजपा ते तनमन रख्यो ॥

गुरु से दीक्षित होने के बाद यह दिल्ली में स्थायी रूप से रहने लगे और वहीं ७९ वर्ष की अवस्था पाकर सं० १८३९ में सुरधाम सिधारे। इनके ५२ प्रधान शिष्य थे और उन की गहियाँ अब तक चल रही हैं। सहजोबाई और दयाबाई नाम की इनकी दो शिष्याएँ भी प्रसिद्ध हैं। ये दोनों ही बहुत पहुँची हुई साध्वी कवि हो गई हैं। इन्होंने अधिक भ्रमण और सत्संग आदि नहीं किया था और न इनकी शिक्षा ही बहुत विस्तृत थी। इन के विचार कबीर के विचारों से मिलते जुलते थे। ढोगियों पाखंडियों तथा भिन्न भिन्न मतों की प्रायः कटु आलोचना इन्होंने भी की है। वेद पुराण तथा स्मृति आदि की निःसारता पर इन्होंने भी कटाक्ष करना उचित समझा है।

नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज (प्रथम भाग पृ० ५८६-७) में इन के ११ ग्रंथों की सूची दी हुई है। परंतु हमारे सामने केवल वेलवेडियर से प्रकाशित 'चरनदास जी की बानी' नामक संग्रह है। इस में लगभग ६०० पद्य हैं और इन्हीं में से प्रस्तुत संग्रह तैयार किया गया है।

चरनदास

अनहद शब्द

जब से अनहद घोर सुनी ॥

इंद्री थकित गलित मन हूवा, आसा सकल भुनी ।
धूमत नैन सिथिल भइ काया, अमल जु सुरत सनी ॥
रोम रोम आनंद उपज करि, आलस सहज भनी ।
मतवारे ज्यों सबद समाये, अंतर भीज कनी ॥
करम भरम के बंधन छूटे, दुविधा बिपति हनी ।
आपा बिसरि जक्त कूं बिसरो, कित रहिं पाँच जनी ॥
लोक भोग सुधि रही न कोई, भूले ज्ञान गुनी ।
हो तहँ लीन चरनहीं दासा, कहै सुकदेव सुनी ॥
ऐसा ध्यान भाग सँ पैये, चढ़ि रहै सिखर अनी ।

चितावनी

कछु मन तुम सुधि राखौ वा दिन की ॥

जा दिन तेरी देह छुटैगी, ठौर बसौये बन की ।
जिन के संग बहुत सुख कीन्हें, मुख ढकि है हैं न्यारे ॥
जम का त्रास होय बहु भांती, कौन छुटावन हारे ।
देहरी लौं तेरी नारि चलैगी, बड़ी पौरि लौं माई ॥
मरघट लौं सब वीर भतीजे, हंस अकेलो जाई ।
द्रव्य गड़े अरु महल खड़े ही, पूत रहैं घर माहीं ॥
जिन के काज पचे दिन राती, सो सँग चालत नाहीं ।
देव पितर तेरे काम न आवैं, जिन की सेवा लावै ॥
चरनदास सुकदेव कहत है, हरि बिन मुक्ति न पावै ।

अरे नर हरि का हेत न जाना ॥

उपजाया सुमिरन के काजे, तैं कछु औरै ठाना ।
गर्भ माहिं जिन रच्छा कीन्हों, हौं खाने कूँ दीन्हा ॥
जठर अग्निन सो राखि लियो है, अंग सँपूरन कीन्हा ।
बाहर आय बहुत सुधि लीन्हों, दसनबिना पय प्यायो ॥
दाँत भये भोजन बहु भौंती, दित सो तोहि खिलायो ।
और दिये सुख नाना बिधि के, समुझि देखु मन माहीं ॥

भूलो फिरत महा गर्वायो, तू कछु जानत नाही ।
तुव कारन सब कुछ प्रभु कीन्हो, तू कीन्हा निज काजा ॥
जग ब्यौहार पगो ही बोलै, तोहि न आवै लाजा ।
अजहूँ चेत उलट हरि सौही, जन्म सुफल कर भाई ॥
चरनदास सुकदेव कहैं यों, सुमिरन है सुखदाई ।

अपना हरि विन और न कोई ॥

मातु पिता सुत बंधु कुटुंब सब, स्वारथ ही के होई ।
या काया कूँ भोग बहुत दै, मरदन करि करि धोई ॥
सो भी छूटत नेक तनिक सी, संग न चाली वोई ।
घर की नारि बहुत ही प्यारी, तिन में नाही दोई ॥
जीवत कहती साथ चलूँगी, डरपन लागी सोई ।
जो कहिये यह द्रव्य आपनी, जिन उज्जल मति खोई ॥
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्रान ले जोई ।
या जग में कोइ हितू न दीखै, मैं समझाऊँ तोई ॥
चरनदास सुकदेव कहैं यों, सुनि लीजै नर लोई ।

बिरह

हमारो नैना दरस पियासा हो ॥

तन गयो सूखि हाय हिये बाढ़ी, जीवत हूँ बोहि आसा हो ।
बिछुरन थारो मरन हमारो, मुख में चलै न प्यासा हो ॥
नीद न आवै रैन बिहावै, तारे गिनत आकासा हो ।
भये कठोर दरस नहि जाने, तुम कूँ नेक न साँसा हो ॥
हमरी गति दिन दिन औरै ही, बिरह बियोग उदासा हो ।
सुकदेव प्यारे रहु मत न्यारे, आनि करो उर बासा हो ॥
रन जीता अपनो करि जानी, निज करि चरनन दासा हो ।

प्रेम

गुरु हमरे प्रेम पियायो हो ॥

ता दिन तैं पलटो भयो, कुल गोत नसायो हो ।
अमल चढ़ो गगनै लगो, अनहद मन छायो हो ॥
तेज पूँज की सेज पै, प्रीतम गल लायो हो ।
गये दिवाने देसड़े, आनंद दरसायो हो ॥
सब किरिया सहजै छुटी, तप नेम भुलायो हो ।
त्रैगुन तैं ऊपर रहूँ, सुकदेव बसायो हो ॥
चरनदास दिन रैन नहिँ, तुरिया पद पायो हो ।

विनती

पतित उधारन विरद तुम्हारो ॥

जो यह बात सौँच है हरि जू, तौ तुम हम कूँ पार उतारो ।
बालपने औ तरुन अवस्था, और बुढ़ापे माहीं ॥
हम से भई सभी तुम जानौ, तुम से नेक छिपानी नाहीं ।
अनगिन पाप भये मनमाने, नखसिख औ गुन धारी ॥
हिरि फिरि कै तुम सरनै आयौ, अब तुम को है लाज हमारी ।
सुभ करमन को मारग छूटो, आलस निद्रा घेरो ॥
एकहि बाग भली बनि आई, जग में कहायो तेरो चेरो ।
दीन दयाल कृपाल बिसंभर, स्त्री सुकदेव गुसाईं ॥
जैसे और पतित धन तारे, चरनदास की गहियो बाहीं ।

राखो जी लाज गरीब निवाज ॥

तुम विन हमरे कौन सँवारे, सबही बिगरे काज ।
भक्त बल्लल हरि नाम कहावो, पतित उधारन हार ॥
करो मनोरथ पूरन जन की, सीतल दृष्टि निहार ।
तुम जहाज मैं काग तिहारो, तुम तज अंत न जाऊँ ॥
जो तुम हरिजू मारि निकासो, और ठौर नहि पाऊँ ।
चरनदास प्रभु सरन तिहारी, जानत सब संसार ॥
मेरी हँसी सो हँसी तुम्हारी, तुम हूँ देखु विचार ।

करौ नर हरि भक्तन को संग ॥

दुख बिसरे सुख होय घनेरी तन मन फाटे अंग ।
है निःकाम मिलो संतनसू नाम पदारथ मंग ॥
जेहि पाये सब पातक नासैं उपजै ज्ञान तरंग ।
जो वे दया करैं तेरे पर प्रेम पिलावैं भंग ॥
जाके अमल दरस हो हरि को नैनन आवै रंग ।
उनके चरन सरन ही लागों सेवा करो उमंग ॥
चरनदास तिनके पग परसन आस करत हैं गंग ।

राग बिहागरा

सुद्धि बुद्धि सब गई खोय री मैं इस्क दीवानी ।
तलफत हूँ दिन रैन ज्यों मछली विन पानी ॥
विन देखे मोहिं कल न परत है देखत आँख सरानी ।

सुधि आये हिय में दव लागै नैनन बरखत पानी ।
जैसे चकोर रटत चंदा को जैसे पपिहा स्वाती ॥
ऐसे हम तलफत पिय दरसन बिरह बिधा यहि भाँती ।
जब ते मीत विछोहा हूवा तब ते कछु न सुहानी ॥
अंग अंग अकुलात सखी री रोम रोम मुरझानी ।
बिन मनमोहन भवन अँधेरी भरि भरि आवै छाती ॥
चरनदास सुकदेव मिलावो नैन भये मोहिं घाती ।

राग सोरठा

हमरा नैना दरस पियासा हो ।
तन गयो सूखि हाय हिये बाढ़ी जीवत हूँ बहि आसा हो ।।
बिछुरन थारो मरन हमारो मुख में चलै न प्रासा हो ।
नौद न आवै रैन विहावै तारे गिनत अकासा हो ॥
भये कठोर दरस नहिं जाने तुम कूँ नेक न सांसा हो ।
हमरी गति दिन दिन औरै ही बिरह बियोग उदासा हो ॥
सुकदेव पियारे मत रहु न्यारे आनि करो उर बासा हो ।
रनजीता अपनी करि जानी निज करि चरनन दासा हो ॥

अँखिया गुरु दरसन की प्यासी ।

इक टक लागी पंथ निहारूँ तन सूँ भई उदासी ॥
रैन दिना मोहिं चैन नहीं है चिंता अधिक सतावै ।
तलफत रहूँ कल्पना भारी निःचल बुधि नहिं आवै ॥
तन गयो सूख हूक अति लागै हिरदै पावक बाढ़ी ।
खिन में लेटी खिन में बैठी घर अँगना खिन ठाढ़ी ॥
भीतर बाहर संग सहेली बातन ही समभावैं ।
चरनदास सुकदेव पियारे नैनन ना दरसावैं ॥

अरे नर परनारी मत तक रे ।

जिन जिन ओर तबी डायन की, बहुतन कूँ गह भखरे ॥
दूध आक को पात कठैया, भाल अगिन की जान ।
सिंह मुछारे विष कारे को, वैसे ताहि पिछानी ॥
खानि नरक की अति दुखदाई, चौरासी भरमावै ।
जनम जनम कूँ दाग लगावै, हरिगुरु तुरत छुटावै ॥
जग में फिर फिर महिमा खोवै, राखै तन मन मैला ।
चरनदास सुकदेव चितावैं, सुमिरौं राम सुहेला ॥

आसावरी

सतगुरु निज पुर धाम बसाये ।

जित के गये अमर हैं बैठे भव जल बहुरि न आये ॥
जोगी जोग जुक्ति करि हारे ध्यानी ध्यान लगावै ॥
हरि जन गुरु की दया बिना यों दृष्टि नहीं दरसावै ॥
पंडित मुंडित चुंडित हूँदैं, पढ़ि सुनि बेद पुरानै ॥
जासूँ वै सब पायो चाहैं सो तौ नेति बखानै ॥
जंगम जती तपी संन्यासी सब हीं वा दिसि धावैं ॥
सुरति निरति की गम जहँ नाहीं वै कहि कैसे पावैं ॥
देस अटपटा बेगम नगरी निगुरे राह न पाया ।
चरनदास सुकदेव गुरु ने किरपा करि पहुँचाया ॥

नट व बिलावल

सो नैना मारे तुरिया तत पद अटके ।

सुरति निरति की गम नहिं सजनी जहां मिलन को लटके ॥
भूलो जगत बकत कछु औरै बेद सुरानन ठठके ।
प्रीति रीति की सार न जानै डोलत भटके भटके ॥
किरिया कर्म भर्म उरफे रे ये माया के भटके ।
ज्ञान ध्यान दोउ पहुँचत नाहीं राम रहीमा फटके ॥
जग कुल रीति लोक मर्यादा मानत नाहीं हटके ।
चरनदास सुकदेव दया सँ त्रैगुन तजि के सटके ॥

राग मलार

सतगुरु भौसागर डर भारी ।

काम क्रोध मद लोभ भँवर जित लरजत नाव हमारी ॥
तिस्ना लहर उठत दिन राती लागत अति भूकभोरी ।
ममता पवन अधिक डरपावैं काँपत है मन मोरा ॥
और महा डर नाना बिधि के छिन छिन में दुख पाऊँ ।
अंतरजामी बिनती सुनिये यह मैं अरज सुनाऊँ ॥
गुरु सुकदेव सहाय करो अब धीरज रहा न कोई ।
चरनदास को पार उतारो सरन तुम्हारी सोई ॥

राग केदारा

अब की तारि देव बलबीर ।

चूक मो सँ परी भारी कुबुधि के संग सीर ॥

भौ सागर को धार तीच्छुन महा गँधीलो नीर ।
 काम क्रोध मद लोभ भँवर में चित न धरत अब धीर ॥
 मच्छु जहँ बलवंत पाँचौ थाह गहिर गँभीर ।
 मोह पवन भुकोर दारुन दूर पैलव तीर ॥
 नाव तौ मँभुधार भरमी हिये बाढ़ा पीर ।
 चरनदास कोउ नाहिं संगो तुम बिना हरि हीर ॥

राग बिलावल

प्रभु जू सरन तिहारी आयो ।

जो कोई सरन तिहारी नाहीं भरम भरम दुख पायो ॥
 औरन के मन देबी देवा मेरे मन तुहि भायो ।
 जब सों सुरति सम्हारी जग में और न सीस नवायो ॥
 नरपति सुरपति आस तुम्हारी यह सुनि के मैं धायो ।
 तीरथ बरत सकल फल त्याग्यौ चरन कमल चित लायो ॥
 नारद मुनि अरु सिव ब्रम्हादिक तेरो ध्यान लगायो ।
 आदि अनादि जुगादि तेरो जस बेद पुरानन गायो ॥
 अब क्यों न बाँह गहो हरि मेरी तुम काहे बिसरायो ।
 चरनदास कहैं करता तूही गुरु सुकदेव बतायो ॥

राग काफ़ी

तुव गुन करूँ बखान यह मोरि बुद्धि कहाँ है ॥ टेक ॥
 चतुर मुखी ब्रम्हा गुन गावैं तिनहुँ न पायौ जान ।
 गुन गावत संकर जब हारे करने लागे ध्यान ॥
 गुन अपार कछु पार न पायो सनकादिक कथि ज्ञान ।
 गुन गावत नारद मुनि थाके सहस मुखन सूँ सेस ॥
 लीला को कछु वार न पायो ना परिमान न भेष ।
 सक्ति घनी अनगिनित तुम्हारी बहुत रूप बहु नावँ ॥
 जबहिं बिचारूँ हिये मैं हारूँ अचरज हेरि हिरावँ ।
 अति अथाह कछु थाह न पाऊँ सोच अचक रहिजावँ ॥
 गुरु सुकदेव थके रनजीता मैं कहु कौन कहाव ।

राग गौरी

अरे नर क्यन भूतन की सेवा ॥ टेक ॥

दृष्टि न आवै मुख नहिं बोलै, ना लेवा ना देवा ॥
 जेहिं कारन धी जोति जलावै, बहु पकवान बनावै ॥
 सो खचै तू अधिक चाव सूँ, वह सुरने नहिं खावै ॥

राति जगावैं भोपा गावैं, भूटै मूंड हिलावैं ।
 कुटुंब सहित तोहिं पैर पड़ावैं, मिथ्या बचन सुनावैं ॥
 ताहि भरोसे जन्म गँवावैं, जीवत मरत न साथ ।
 बड़ भागन नर देही पाई, खोवैं अपने हाथा ॥
 चारि बरन में बुधि का, ऊँच नीच किन होई ।
 जो कोइ झूठी आसा राखै, जगत जायगा सोई ॥
 ताते सत बिस्वास टेक गहि, भक्ति करो हरि केरी ।
 चरनदास सुकदेव कहत हैं, होय मुत्तिल गति तेरी ॥

राग सोरठा

साधो भरमा यह संसारा ॥ टेक ॥
 गति मति लोक बढ़ाई, उरभे कैसे हो छुटकारा ।
 मर्म पड़े नाना विधि सेती, तीरथु बर्त अचारा ॥
 देह कर्म अभिमानी भूले, छूँछ पकरि तत डारा ।
 जोगी जोग जुक्ति करि हारे, पंडित बेद पुराना ॥
 षट दरसन पग आप पुजावैं, पहिरि पहिरि रंग बाना ।
 जानत नाहि आप हमको हैं, को है वह भगवाना ॥
 को यह जगत कौन गति लागै, संभलै ना अज्ञाना ।
 जा कारन तुम इत उत डोलो, ताको पावत नाहों ॥
 चरनदास सुकदेव बतायो, हरि हैं अंतर माहीं ॥

सुनु राम भक्ति गति न्यारी है ।
 जोग जज्ञ संजम अरु पूजा ।
 प्रेम सवन पर मारी है ॥ टेक ॥
 जाति बरन पर जो हरि जाते ।
 तौ गनिका क्यों तारा है ।
 सेवरी सरस करी सुर मुनि ते ।
 हीन कुचील जो नारी है ॥
 दुस्सासन पत खोवन लागेव ।
 सब हीं ओर निहारी है ॥
 होय निरास कृष्ण कहँ टेरी ।
 बाढ़ो चीर अपारी है ॥
 टेली लौंडी कंस राजा का ।
 दीन्ही रूप कनारी है ॥
 एक सौ एक अधिक ब्रजनारी ।

कुबिजा कीन्ही प्यारी है ॥
 पांचो पँडवन जाय सजो है ।
 सगरी सजी सँवारी है ॥
 बाल्मीक दिनकाज न हो तो ।
 बाजो संख मुरारी हो ॥
 सार्धों की सेवा में राचौ ।
 भूप सुरति बिसारी है ॥
 सेना भक्त के कारन हरिजू ।
 वाकी सूरत धारी है ॥
 दास कबीरा जाति जुलाहा ।
 भए संत उपकारी हो ॥
 साखि सुनो रैदास चमारा ।
 सो बाग में उजियारी है ॥
 कनक जनेऊ काढ़ि देखायो ।
 विप्र गये सब हारी है ॥
 अजामील सदना तिरलोचन ।
 नाभा नाम अधारी है ॥
 धना जाट कालू अरु कूवा ।
 बहुत किये भा पारी है ॥
 प्रीत बराबर और न देखै ।
 बेद पुरान बिचारी है ॥
 चरनदास सुकदेव कहत हैं ।
 ता बस आप मुरारी हैं ॥

राग रामकली

चारि बरन सूं हरि जन ऊंचे ।

भये पवित्तर हरि के समिरे तन के उज्जल मन के सूचे ॥
 जो न पतीजै साखि बताऊं सवरी के जूठे फल खाये ।
 बहुत ऋषीसर ह्माई रहते तिन के घर रघुपति नहिं आए ॥
 भिल्लनि पांव दियो सरिता में सुद्ध भयो जल सब कोइ जानै ।
 मंद हुतो सो निरमल हूवो आभमानी नर भयो खिसाने ॥
 बम्हन छत्री भूप हुते बहु बाजो संख सुपच जब आयो ।
 बाल्मीक जब पूरन कीन्ही जै जै कार भयो जस गायो ॥
 जाति बरन कुल सोई नीको जाके होय भक्ति परकास ।
 गुरे सुकदेव कहत हैं तो को हरि जन सेव चरन हीं दास ॥

राग सोरठ व आसावरी

साधू पैज गहै सोइ सूर ।

काके मुख पर नूर है जब बाजै मारु तूर ॥
कलंगी अरु गज गाह बनावै इनका परन दुहेला ।
सावंत भेख बनाय चलत हैं यह नहिं सहज सुहेला ॥
या बाने को नेम यही है पग धरि फिरि न उठावै ।
जो कुछ होय सो आगेहिं आगे आगे हीं को धावै ॥
रन में पैठि भडाभड़ि खेलै सन्मुख सस्तर खावै ।
खेत न छोड़ै ह्राई जूझै तबहीं सोभा पावै ॥
चरनदास बाना संतन का तौले सीस चढ़ावै ।

साधौ टेक हमारी ऐसी ।

कोटि जतन करि छूटे नाहीं कोऊ करी अब कैसी ॥
यह पग धरो सँभाल अचल होइ बोल चुके सोइ बोले ।
गुरु मारग में लेन न देनो अब इत उत नहिं डोलै ॥
जैसे सूर सती अरु दाता पकरी टेक न टारै ।
तन करि धन करि मुख नहिं मोड़ै धर्म न अपनो हारै ॥
पावक जारो जल में बोरो दूक दूक करि डारो ।
साध सँगति हरि भक्ति न छोड़ूँ जीवन प्रान हमारो ॥
पैज न हारूँ दाग न लागे नेक न उतरे लाजा ।
चरनदास मुकदेव दया से सब विधि सुधरै काजा ॥

राग सोरठा

जो नर इक छत भूप कहावै ।

सत्त सिंहासन ऊपर बैठे जत ही चँवर दुरावै ॥
दया धर्म दोउ फौज महा लै भक्ति निसान चलावै ।
पुन्न नगारा नौबत बाजै दुरजन सकल हलावै ॥
पाप जलाय करै चौगाना हिंसा कुबुधि नसावै ।
मोह मुकद्दम काढ़ि मलुक सूँ ला वैराग बसावै ॥
साधन नायब जित तित भेजे दै दै संजम साथा ।
राम दोहाई सिगरे फेरै कोइ न उठावै माथा ॥
निरभय राज करै निश्चल है गुरु मुकदेव सुनावै ।
चरनदास निश्चै करि जानौ बिरला जन कोइ पावै ॥

राग मलार

चहुँ दिस भिलमिल भलक निहारी ।

आगे पीछे दहिने बायें तल ऊपर उँजियारी ॥
दृष्टि पलक त्रिकुटी है देखै आसन पद्म लगावै ॥
संजम साथै दृढ़ आराधै जब ऐसी सिधि पावै ॥
बिन दामिनि चमकार बहुत हीं सीप बिना लर मोती ।
दीप मालिका बहुत दरसावै जगमग जगमग जोती ॥
ध्यान फलै तब नभ के माहीं पूरन हो गति सारी ।
चाँद धने सूरज अनकी ज्यों सूरभर भरिया भारी ॥
यह तौ ध्यान प्रतच्छु बतायौ सरथा होय तो कीजै ।
कहि सुकदेव चरन ही दासा सो हम सूँ सुनि लीजै ॥

राग सोरठ

अबधू ऐसी मदिरा पीजै ।

बैठि गुफा में यह जग विसरै चंद सूर सम कोजै ॥
जहां कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल पर जारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाहै भक्ति खुमारी ॥
माता है करि ज्ञान खडग लै काम क्रोध कूं मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुविधा सकल बिडारै ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधा रस निज पुर पहुँचै सोई ।
प्रमर होय अमरा पद पावै आव गवन न होई ॥
सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
चरनदास रनजीत भये जब आनंद आनंद सूझा ॥

राग बिहागरा

साधो निंदक मित्र हमारा ।

निंदक कूं निकटे ही राखों होन न देउं नियारा ॥
पाछे निंदा करि अघ धोवै सुनि मन मिटै बिकारा ।
जैसे सोना तापि अग्नि में निरमल करै सोनारा ॥
घन अहरन कसि हीरा निबटै कीमत लच्छु हजारा ।
ऐसे जॉचत दुष्ट संत कूं करन जगत उँजियारा ॥
जोग जज्ञ जस पाप कटन हितु करै सकल संसारा ।
बिन करनी मम कर्म कटिन सब मेटै निंदक प्यारा ॥
सुखी रहो निंदक जग माहीं रोग नहीं तन सारा ।

हमरी निंदा करने वाला उतरै भव निधि पारा ॥
निंदक के चरनों की अस्तुति भाखों बारम्बारा ॥
चरनदास कहैं सुनियो साधो निंदक साधक भारा ॥

राग सोरठा

साधो होनहार की बात ।
होत सोई जो होनहार है का पै मेटी जात ॥
कोटि सयानप बहु विधि कीन्हें बहुत तके कुसिलात ।
होनहार ने उलटी कीन्हीं जल में आग लगात ॥
जो कुछ होय होतवता मोंडी जैसी उपजै बुद्धि ।
होनहार हिरदै मुख बोलै बिसरि जाय सब मुद्धि ॥
गुरु सुखदेव दया सूं होनी धारि लई मन माहिं ।
चरनदास सोचै दुख उपजै समझे सूं दुख जाहिं ॥

राग परज

जिन्हें हरि भक्ति पियारी हो ।
मात पिता सहजैं छूटैं छूटैं सुत अरु नारी हो ॥
लोक भोग फीके लगैं सम अस्तुति गारी हो ।
हानि लाभ नहिं चाहिये सब आसा हारी हो ॥
जग सूं मुख मोरै रहैं करैं ध्यान मुरारी हो ।
जित मनुवा लागी रहै भइ घट उजियारी हो ॥
गुरु सुखदेव बताइया प्रेमी गति भारी हो ।
चरनदास चारो बेद सूं और कछू न्यारी हो ॥

गुरु हमरे प्रेम पियायो हो ।
ता दिन तैं पलटो भयो कुल गोत नसायो हो ॥
अमल चढ़ो गगने लगो अनहद मन छायो हो ।
तेज पुंज की सेज पै प्रीतम गल लायो हो ॥
गये दिवाने देसड़े आनद दरसायो हो ।
सब किरिया सहजै छूटी तप नेम भुलायो हो ॥
त्रंगुन तैं ऊपर रहूं सुखदेव बसायो हो ।
चरनदास दिन रैन नहिं तुरिया पद पायो हो ॥

राग सोरठ

भाई रे समझ जग व्यवहार ।
जब ताई तेरे धन पराक्रम करै सब हीं प्यार ॥

अपने सुख कूं सबहि चाहैं मित्र सुत अरु नारि ।
 इनहीं तो अप बस कियो है मोह बेड़े डारि ॥
 सबन तो कूं भय दिखायो लाज लकुटी मार ।
 बाजीगर के बांदरा ज्यों फिरत घर घर दुवार ॥
 जबै तो को विपत्ति आवै जरा कोर विकार ।
 तबै ते सूं लाज मानैं करैं ना तेरि सार ॥
 इनकी संगति सदा दुख है समझ मूंड गंवार ।
 हरि प्रीतम कूं सुमिरि ले कहैं चरनदास पुकार ॥

राग बिहागरा

ये सब निज स्वारथ के गरजी ।

जग में हेत न कर काहू सूं अपने मन को बरजी ॥
 रोपै फंद घात बहु डारैं इन ते रहु डरता जी ।
 हिरदे कपट बाहर मिठ बोलैं यह छल हैगी कहा जी ॥
 दुख सुख दर्द दया नहि बूझै इनसे छुटावो हरि जी ।
 सौगँद खाय भूँठ बहु बोलैं भवसागर कस तर जी ।
 बैरी मित्र सबै चुनि देखे दिल के महरम कहँ जी ।
 इनको दोष कहा कहा दीजै यह कलजुग की भर जी ॥
 दुनिया भगल कुटिल बहु खोटी देखि छाती मेरी लरजी ।
 चरनदास इनकूं तजि दीजै चल बस अपने घर जी ॥

राग आसावरी

साधो राम भजै ते सुखिया ।

राजा परजा नेमी दाता सबहीं देखे दुखिया ॥
 जो कोई धनवत जगत में राखत लाख हजार ।
 उनकूं तौ संसय है निसि दिन घंटत बढ़त व्यौहारा ॥
 जिनके बहु सुत नाती कहिये और कुटुंब परिवारा ।
 वे तो जीवन मरन के काजै भरत रहैं दुख भारा ॥
 नेमी नेम करत दुख पावैं कर स्नान सबेरा ।
 दाता कूं देबे का दुख है जब मंगतौ ने घेरा ॥
 चारि बरन में कोउ न देखे जाके चिंता नाहीं ।
 हरि की भक्ति बिना सब दुख है समझ देख मन माहीं ॥
 सत संगति अरु हरि सुमिरन भरि सुकदेवा गुरु कहिये ।
 चरनदास बिपदा सब तजि के आनंद में नित रहिया ॥

राग सोरठ

अब घर पाया हो मोहन प्यारा ॥ टेक ॥
 लखो अचानक अज अबिनासी उघरि गये दग तारा ।
 भूमि रह्यो मेरे आँगन में टरत नहीं कहूँ टारा ।
 रोम रोम हिय माहीं देखो होत नहीं छिन न्यारा ।
 भयो अचरज चरनदासन पै ये खोज कियो बहुबारा ॥

राग आसावरी

हे मन आतम पूजा कीजै ।
 जितनी पूजा जग के माहीं सब हुत को फल लीजै ॥
 जो जो देहों ठाकुर द्वारे तिन में आप धिराजै ।
 देवल में देवत है परगट आछी विधि सू राजै ॥
 त्रैगुन भवन सँभारि पूजिये अनरस होन न पावै ।
 जैसे कूँ तैसा ही परसै प्रेम अधिक उपजावै ॥
 देवता द्रष्टि न आवै धोखे कूँ सिर नावै ।
 आदि सनातन रूप सदा हों मूरख ताहि न ध्यावै ॥
 घट घट सूभै कोइ इक बूभै गुरु सुकदेव बतावै ।
 चरनदास यह सेवन्ह कीन्है जीवन मुक्ति फल पावै ॥

जब सू मन चंचल घर आया ।
 निर्मल भया मेल गये सगरे तीरथ ध्यान जो न्हाया ॥
 निर्बासा है आनंद पाये या जग सूँ मुख मोड़ा ।
 पांचौ भई सहज बस मेरे जब इनका रस छोड़ा ॥
 भय सब छूटै अब को लूटै दूजी आस न कोई ।
 सिमिटि सिमिटि रहा अपने माहिं सकल विकल नहिं होई ॥
 निज मन हुआ मिटिगम दूआ को बैरी के मीता ।
 बंधु मुक्ति का संसय नाहीं जन्म मरन की चीता ॥
 युगल सुकदेव भेव मोहि दोनों जब सूँ यह गति साधी ।
 चरनदास सूँ ठाकुर हुए बुटि गये बाद विवादी ॥

हम तो आतम पूजा धारी ।

समझि समझि कर निश्चय कीन्ही, और सबन पर भारी ॥
 और देवल जहं धुंधली पूजा, देवल दृष्टि न आवै ॥
 हमरा देवत परगट दीखै बोलै चालै खावै ।

जित देखौं तित ठाकुरद्वारे करौं जहां नित सेवा ॥
 पूजा की विधि नीके जानौं, जासूँ परसन देवा ।
 करि सन्मान अस्नान कराऊँ, चंदन नेह लखाऊँ ॥
 मीठे बचन पुष्प सोइ जानो हूँ करि दीन चढ़ाऊँ ।
 परसन करि करि दरसन पाऊँ बार बार बलि जाऊँ ॥
 चरनदास सुखदेव बतावैं, आठ पहर सुख पाऊँ ॥

सवैया

आदिहुँ आनंद, अंतहुँ आनंद,
 मध्यहुँ आनंद, ऐसे हिं जानी ।
 बंधहुँ आनंद, मुक्तिहुँ आनंद,
 आनंद ज्ञान, अज्ञान पिछानी ।
 लेटेहुँ आनंद बैठेहुँ आनंद,
 डोलत आनंद, आनंद आनी ।
 चरनदास बिचारि, सबै कुछ आनंद,
 आनंद छाड़ि के, दुख न ठानी ।

कवित्त

मंदिर क्यों तिआगे अरु भारै क्यों गिरिवर कूं,
 हरि जी कूं दूर जानि कल्पै क्यों बावरे ।
 सब साधन बतायो बतायो अरु चारि बेद गायो,
 आपन कूं आप देखि अंतर लव लाव रे ।
 ब्रम्ह ज्ञान हिये धरौ बोलते की खोज करौ,
 माया अज्ञान हरौ आपा विसराव रे ।
 जैहै जब आप धाप कहा पुत्र कहा पाप,
 कहैं चरनदासजू निश्चल घर आव रे ।

रैदास जी

संत कवियों में रैदास जी का एक विशेष स्थान है। ये जाति के तो चमार थे पर इन की भक्ति बहुत उच्च कोटि की थी और कविता भी ये बड़ी मधुर करते थे। इनकी जन्मतिथि अज्ञात है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह कबीर साहब के समकालीन और स्वामी रामानंद के शिष्य थे। साथ ही यह भी प्रसिद्ध है कि मीरा बाई ने इन से दीक्षा ली थी और मीरा बाई तुलसी दास के समकालीन थीं। जो विद्वान् इन्हें कबीर के समकालीन बतलाते हैं उनका कहना है कि मीरा बाई ने नहीं चित्तौड़ की भाली रानी ने इन से दीक्षा ली थी। सब कुछ किंवदंती के आधार पर है। ऐसी अवस्था में कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। और फिर यह भी किंवदंती है कि रैदास जी १२० वर्ष जिए थे। ऐसी अवस्था में इन का शैशव में कबीर और वृद्धावस्था में मीरा बाई दोनों से साक्षात्कार होना संभव है।

कहा जाता है कि ये पूर्व जन्म में ब्राह्मण आर स्वामी रामानंद के शिष्य थे, पर इन्होंने किसी बात से चिढ़ कर इन्हें शाप दिया कि जा तू चमार के यहाँ जन्म ले। इसी शाप के फल स्वरूप काशी के राघू बनियाँ के यहाँ उस की स्त्री घुरबिनियाँ के गर्भ से इन का जन्म हुआ। जन्म के बाद ही स्वामी रामानंद ने स्वयं जाकर इन का नाम 'रविदास' रक्खा और इन्हें दीक्षित किया।

ये अधिकतर काशी में ही रहे और इन की प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई यद्यपि जात्याभिमानी ब्राह्मण पद पद पर इन का अपमान और विरोध करने में कभी नहीं चूकते थे।

इन के मुख्य ग्रंथ 'रैदास जी की बानी' और 'रैदास जी के पद' हैं। इन के बहुत से पद आदि ग्रंथ में भी संगृहीत हैं। भक्तिरस के अतिरिक्त इन की कविता में अच्छी काव्य कला का परिचय भी मिलता है। इस से स्पष्ट है कि संत समागम के सिवा उन्होंने साहित्यिक शिक्षा और अभ्यास में भी परिश्रम किया होगा।

रैदास जी

साधु

आज दिवस लेउँ बलिहारा ।
मेरे गृह आया राम का प्यारा ॥ टेक ॥
आँगना बँगला भवन भयो पावन ।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ॥
करूँ डंडवत चरन पखारूँ ।
तन मन धन उन ऊपरि वारूँ ।
कथा कहूँ अरु अर्थ विचारै ॥
आप तरै औरन को तरै ।
कह रैदास मिलै निज दास ॥
जनम जनम कै काटै पास ॥

चितावनी

कहु मन राम नाम सँभारि ।
माया के भ्रम कहाँ भूल्यो, जाहुगे कर भारि ॥ टेक ॥
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सुत नहिं नारि ।
तोर उतँग सब दूरि करिहूँ, देहिंगे तन जारि ॥
प्राण गये कहो कौन तेरा, देखि सोच बिचारि ।
बहुरि येहि कलि काल नाहीं, जीति भावै हारि ॥
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारि ।
कहरैदास सत वचन गुरु के, सो जिवतैं न बिसारि ॥

प्रेम

साँची प्रीति हम तुम सग जोड़ी, तुम सँग जोड़ि अवर सँग तोड़ी ।
जो तुम बादर तो हम मोरा, जो तुम चंद हम भये चकोरा ॥
जो तुम दीवा तो हम बाती, जो तुम तीरथ तो हम जात्री ।
जहाँ जाउँ तहँ तुम्हरी सेवा, तुमसा ठाकुर और न देवा ॥
तुम्हरे भजन कटे भय फाँसा, भक्ति हेतु गावै रैदासा ।

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला ॥ टेक ॥
हे रे कलली तैं क्या कीया, सिरका सातैं प्याला दिया ॥

कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवन हारे का सिर लेऊँ ॥
चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई ॥
सहज सुन्न में भाठी सरवै, पीवै रैदास गुरुमुख दरवै ॥

अब कैसे छुटै नाम रट लागी ॥ टेक ॥
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी ।
जाकी अँग अँग बास समानी ॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा
जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती ।
जाकी जोति बरै दिन राती ॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा ।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा ।
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

जो तुम तोरौ राम मै नहिं तोरूँ ।
तुम सों तोरि कवन सों जोरूँ ॥ टेक ॥
तोरथ बरत न करूँ अँदेसा ।
तुम्हरे चरन कमल क भरोसा ॥
जहँ जहँ जाऊँ तुम्हरी पूजा ।
तुम सा देव और नहिं दूजा ॥
मैं अपनो मन हरि सों जोर्योँ ।
हरि सों जोरि सबन से तोर्योँ ॥
सब ही पहर तुम्हारी आसा ।
मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥

विनय

नर हरि चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी ॥ टेक ॥
तू मोहि देखै हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई ॥
तू मोहि देखै तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना ॥
गुन सब तोर मोर सब अबगुन, कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सौ, कैसे करि निस्तारा ॥
कह रैदास कृष्ण करुनामय, जै जै जगत अधारा ॥

रामा हो जग जीवन मोरा ।
 तूँ न बिसारी मैं जन तोरा ॥ टेक ॥
 संकट सोच पोच दिन राती ।
 करम कठिन मोरि जाति कुजाती ॥
 हरहु बिपति भावै करहु सो भाव ।
 चरन न छुँडौं जाव सो जाव ॥
 कह रैदास कछु देहु अलंवन ।
 बेगि मिलौ जनि करौ बिलंवन ॥

उपदेश

परिचै राम रमै जो कोई, या रस पर से दुविधि न होई ॥ टेक ॥
 जे दीसे ते सकल बिनास, अनदीठे नाहीं बिसवास ।
 बरन कहंत कहैं जे राम, सो भगता केवल निःकाम ॥
 फल कारन फूलै बनराई, उपजै फल तब पुहुप विलाई ।
 ज्ञानहिं कारन करम कराई, उपजै ज्ञान तो करम नसाई ॥
 बट न बीच जैसा आकार, पसर्यो तीन लोक पासार ।
 जहां न उपजा तहाँ बिलाइ, सहज सुनि में रह्यो लुकाइ ॥
 जे मन बिदै सोई बिद, अमा समय ज्यों दीसै चंद ।
 जल में जैसे तूँबा तिरै, परिचै पिंड जीव नहिं मरै ॥
 सो मन कौन जो मन को खाइ, बिन छोर तिरलोक समाइ ।
 मन की महिमा सब कोइ कहै, पंडित सो जो अनतै रहै ॥
 कह रैदास यह परम बैराग, राम नाम किन जपहु सभाग ।
 घृत कारन दधि मथैं सयान, जीवन मुक्ति सदा निरवान ॥



मलूक दास

बाबा मलूक दास जी का जन्म लाला सुंदर लाल खत्री के यहाँ बैशाख कृष्ण ५ सं० १६३१ में कड़ा जिला इलाहाबाद में हुआ था। इनके संबंध की जो कथाएँ प्रसिद्ध हैं इन में सब से मार्के की बात यह है कि इन को परमात्मा के साक्षात् दर्शन हुए थे। इनकी मृत्यु १०८ वर्ष की अवस्था में हुई थी। इनकी गढ़ियाँ कड़ा, जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नैपाल और काबुल तक में स्थापित हैं। इनके संबंध की सब बातों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह अपने समय में बड़े ख्यातनामा संत रहे होंगे। यह औरंगजेब के समय में विद्यमान थे और इनके किए हुए बहुत से लोकोत्तर कार्य भी प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि एक बार इन्होंने एक डूबते हुए शाही जहाज के पानी के ऊपर उठा कर बचा लिया था और रुपयों का तोड़ा गंगा जी में तैरा कर कड़े से इलाहाबाद भेजा था। यह संसार के सब काम छोड़ कर हरिभजन में मग्न रहना ही एक मात्र कर्त्तव्य समझते थे और अपने शिष्यों आदि को भी यही उपदेश देते थे। निम्नलिखित दोहा जिसे आलसी लोग हमेशा ज़बान पर रखते हैं, इन्हीं का है—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम॥

इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—रत्नखान और ज्ञानबोध। ये निर्गुण मार्ग का उपदेश देते थे और हिंदू तथा मुसलमान सभी को समान रूप से उपदेश देते थे। कदाचित् इसी कारण इनकी भाषा में अरबी फ़ारसी आदि के शब्द काफी बड़ी संख्या में मिलते हैं। इनकी भाषा यों तो पूरबी हिंदी है पर बोल चाल के ढंग की खड़ी बोली का पुस्तक भी पर्याप्त है। कहीं कहीं साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की रचना भी देखने में आ जाती है। इनकी सर्वोत्तम कविताएँ आत्मबोध, वैराग्य, तथा प्रेम पद हैं।

बाबा मलूकदास

तेरा मैं दीदार दिवाना ।

घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूँ, सुन साहिब रहिमाना ॥
हुवा अलमस्त खबर नहीं तन की, पीया प्रेम पियाला ।
ठाढ़ होऊँ तो गिरि गिरि परता, तेरे रँग मतवाला ॥
खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदाजादा ।
नेकी की कुलाह सिर दीये, गले पैरहन साजा ॥
तौजी और निमाज न जानूँ, ना जानूँ धरि रोजा ।
बाँग जिकिर तबही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा ॥
कहूँ मलूक अब कजा न करिहौँ, दिलही सेँ दिल लाया ।
मक्का हज्ज हिये में देखा, पुरा मुरसिद पाया ॥

दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा ।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा ॥
प्रेम पियाला पीबते, बिसरे सब साथी ।
आठ पहर यों भूमते, ज्यों माता हाथी ॥
उनकी नजर न आवते, कोइ राजा रंक ।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते हैं निहसंक ॥
साहिब मिल साहिब भये, कछु रही न तमाई ।
कहूँ मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई ॥

बिनय

अब तेरी सरन आयो राम ।

जबै सुनिया साध के मुख, पतित पावन नाम ॥
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम ।
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम ॥

दीन दयाल सुने जब तैं तब तैं, मन में कछु ऐसी बसी है ।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ, तुम्हरे हित की पट खैचि कसी है ॥
तेरो ही आसरो एक मलूक, नहीं प्रभु सेँ कोउ दूजो जसी है ।
ए हो मुरार पुकार कहाँ अब, मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है ॥

दीन-बंधु दीनानाथ, मेरी तन हरिये ॥टेक॥
 भाई नाहिँ बंधु नाहिँ, कुटुम परिवार नाहिँ ।
 ऐसा कोई मित्र नाहिँ, जाके ढिग जाइये ॥
 सोने की सलैया नाहिँ, रूपे का रुपैया नाहिँ ।
 कौड़ी पैसा गांठि नाहिँ, जासे कछु लीजिये ॥
 खेती नाहिँ बारी नाहिँ, बनिज ब्यौपार नाहिँ ।
 ऐसा कोई साहु नाहिँ, जा सों कछु माँगिये ॥
 कहत मल्लूक दास, छोड़ दे पराई आस ।
 राम धनी पाइके, अब का की सरन जाइये ॥

उपदेश

ना वह रीझै जप तप कीन्है, ना आतम को जारे ।
 ना वह रीझै धोती नेती, ना काया के पखारे ॥
 दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी ।
 अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी ॥
 सदै कुसवद बाद हू त्यागै, छाड़ै गर्ब गुमाना ।
 यही रीझ मेरे निरंकार की कहत मल्लूक दिवाना ॥

माया

हम से जनि लागै तू माया ।
 धोरे से फिर बहुत होयगी, सुनि पैहैं रघुराया ॥
 अपने में है साहिब हमरा, अजहूँ चेतु दिवानी ।
 काहू जन के बस परि जैहौ, भरत मरहुगी पानी ॥
 तर है चितै लाज करु जन की, डार हाँथ की फाँसी ।
 जन तें तेरो जोर न लहि है, रच्छुपाल अविनासी ॥
 कहै मल्लूका चुप करु ठगनी, औगुन राखु दुराई ।
 जो जन उबरै राम नाम कहि, तातें कछु न बसाई ॥

मिश्रित

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
 दास मल्लूका यों कहै, सब के दाता राम ॥
 जहाँ जहाँ दुख पाइया, गुरु को थापा सोय ।
 जबहीं सिर टक्कर लगै, तब हरि सुमिरन होय ॥
 आदर मन महत्तव सत, बालापन को नेह ।

ये चारो तब ही गये, जबहिँ कहा कलु देह ॥
 प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय ।
 जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥
 मानष बैठे चुप करे, कदर न जानै कोय ।
 जबहीं मुख खोलै कली, प्रगट बास तब होय ॥
 सब कलियन में बास है, बिना बास नहिँ कोय ।
 अति सुनिन में पाइये, जो कोई फूली होय ॥

माँस अहार

पीर सभन की एक सी, मूरख जानत नाहिँ ।
 काँटा चूमे पीर है, गला काट कोउ खाय ॥
 कुँजर चींटी पसू नर, सब में साहिब एक ।
 काटै गला खुदाय का, करै सुरमा लेख ॥
 सब कोउ साहिब बंदते, हिन्दू मुसलमान ।
 साहिब तिनको बंदता, जिस का ठौर इमान ॥

मूर्तिपूजा, तीर्थ

आतम राम न चीन्ह ही, पूजत फिरै पषान ।
 कैसेहु मुक्ति न होइगी, कोटिक सुनो पुरान ॥
 किरतिम देव न पूजिए, ठेस लगे फुटि जाय ।
 कहै मलूक सुभ आतमा, चारो जुग ठहराय ॥
 देवल पूजै कि देवता, की पूजै पाहाड़ ।
 पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ॥
 हम जानत तीरथ बड़े, तीरथ हरि की आस ।
 जिनके हिरदे हरि बसै, कोटि तिरथ तिन पास ॥
 संध्या तर्पन सब तजा, तीरथ कबहुँ न जाउँ ।
 हरि हीरा हिरदे वसै, ताही भीतर न्हाउँ ॥
 मक्का मदीना द्वारिका, बद्री और केदार ।
 बिना दया सब भूठ है, कहै मलूक बिचार ॥
 राम राय घट में बसै, ढूँढ़त फिरैं उजाड़ ।
 कोइ कासी कोई प्राग में, बहुत फिरैं भ्रम मार ॥

मन

कोई जीति सकै नहीं, यह मन जैसे देव ।
 याके जीते जीत है, अब मैं पायो मेव ॥

तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह ।
ता का क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह ॥

गुरुदेव

जीती बाजी गुरु प्रताप तैं, माया मोह निवार ।
कह मल्लूक गुरु कृपा तैं, उतरा भवजल पार ॥
सुखद पंथ गुरुदेव यह, दीन्हो मोहिँ बताय ।
ऐसी ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय ॥
भ्रम भागा गुरु वचन सुनि, मोह रहा नहिँ लेस ।
तब माया छल हित किया, महा मोहनी भेस ॥
ताको आवत देखि कै, कही बात समुझाय ।
अब मैं आया गुरु सरन, तेरो कछु न बसाय ॥
मल्लूका सोई पीर है, जो जानै पर पीर ।
जो पर पीर न जानही, सो काफिर बे पीर ॥
बहुतक पीर कहावते, बहुत करत हैं भेस ।
यह मन कहर खुदाय का, मारै सो दुरबेस ॥
जीवहुँ ते प्यारे अधिक, लागौं मोहीं राम ।
बिन हरि नाम नहीं मुझे, और किसी से काम ॥
कह मल्लूक हम जबहिँ तैं, जीन्ही हरि की ओट ।
सोवत हैं सुख नींद भरि, डारि मरम की पोट ॥
राम नाथ एकै रती, पाप के कोटि पहाड़ ।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार ॥
धर्महिँ का सौदा भला, दाया जग ब्योहार ।
राम नाम की हाट लै, बैठा खोल किवार ॥
साहिब मेरा सिर खड़ा, पलक पलक सुधि लेइ ।
जबहीं गुरु किरपा करी, तबहिँ राम कछु देइ ॥
मोदी सब संसार है, साहिब राजा राम ।
जापर चिट्ठी ऊतरै, सोई खरचै दाम ॥

प्रेम

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैं ।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥
कठिन पियाला प्रेम का, पियै जो हरि के हाथ ।
चारो जुग माता रहै, उतरै जिय के साथ ॥

बिना अमल माता रहै, बिन लस्कर बलवंत ।
 बिना विलायत साहिबी, अंत माँहि बेअंत ॥
 रात न आवै नोदड़ी, थरथर काँपे जीव ।
 ना जनुँ क्या करैगा, जालिम मेरा पीव ॥
 मलूक सु माता सुंदरी, जहाँ भक्त औतार ।
 और सकल बाँझ भई, जन मे खर कतवार ॥
 सोई पूत सपूत है, (जो) भक्ति करै चित लाय ।
 जरा मरन तें छूटि परै, अजर अमर है जाय ॥
 सब बाजे हिरदे बजै, प्रेम पखावज तार ।
 मंदिर दूढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार ॥
 करै पखावज प्रेम का, हृदे बजावै तार ।
 मनै नचावै मगन है, तिस का मता अपार ॥
 जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि न सुनाव ।
 अंतरजामी जानि है, अंतर गत का भाव ॥

दया

दुखिया जनि कोई दूखवै, दुखए अति दुख होय ।
 दुखिया रोई पुकारि है, सब गुड़ माटी होय ॥
 हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान ।
 दास मलूका यों कहै, अपना सा जिव जान ॥
 जे दुखिया संसार में, खोवो तिन का दुख ।
 दलिद्वर सौँप मलूका को, लोगन दीजै सुख ॥
 दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन ।
 तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥
 सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार ।
 जिन पर आतम चीन्हिया, तेही उतरे पार ॥

साधू

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय ।
 कहै मलूक जँह संत जन, तहाँ रमैया जाय ॥
 भेष फकीरी जे करै, मन नहि आवै हाथ ।
 दिल फकीर जे हो रहै, साहिब तिनके साथ ॥

चितावनी

गर्ब भुलाने देह के, रचि रचि बाँधे पाग ।
 सो देही नित देखि के, चौच सँवारे काग ॥

उतरे आइ सराय में, जाना है बड़ कोह ।
 अटक आकिल काम बस, ली भठियारी मोह ॥
 जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोरि ।
 कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोरि ॥
 इस जीने का गर्व क्यां, कहाँ देह की प्रीति ।
 बात कहत ढह जात है, बारु की सी भीत ॥
 मलूक कोटा भाँभरा, भीत परी भहराय ।
 ऐसा कोई ना मिला, (जो) फेर उठावै आय ॥
 देही होय न आपनी, समुक्ति परी है मोहिँ ।
 अबहीं तें तजि राख लूँ, आखिर तजि है नेहिँ ॥

बिनय

नमो निरंजन निरंकार, अविगत पुरुष अलेख ।
 जिन संतन के हित धरयो, जुग जुग नाना भेष ॥
 हरि भक्तन के काज हित, जुग जुग करी सहाय ।
 सो सिव सेस न कहि सकै, कहा कहाँ मैं गाय ॥
 राम राय असरन सरन, मोहिँ आपन करि लेहु ।
 संतन सँग सेवा करौं, भक्ति मजूरी देहु ॥
 भक्ति मजूरी दीजिये, की जै भवजल पार ।
 बोरत है माया मुक्ते, गहे बाँह बरियार ॥

सुभिरन

सुभिरन ऐसा कीजिये, दूजा लग्यै न काय ।
 ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय ॥
 माला जपों न कर जपों, जिम्हा कहाँ न राम ।
 सुभिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥

दयाबाई

दया बाई महात्मा चरनदास जी की शिष्या थीं। प्रसिद्ध संत कवयित्री सहजो बाई भी इन्हीं की शिष्या और दया बाई का गुरुबहिन थीं।

दया बाई अपने गुरु की सजातीय थीं अर्थात् धूसर कुल में ही इनका भी जन्म हुआ था। कुछ विद्वानों का तो कथन है कि चरनदास जी के ही वंश में उनका जन्म हुआ था। इन का जन्म सं० १७५० और १७७५ के बीच माना जाता है। इन के प्रथम ग्रंथ दयाबोध का रचनाकाल सं० १८१८ है।

इन का मृत्युकाल निश्चित नहीं है। 'विनयमालिका' नामक एक और ग्रंथ दयाबाई का रचा हुआ माना जाता है परंतु कुछ लोगों को इस के दयाबाई द्वारा लिखित होने में संदेह है। इस संदेह का कारण यही है कि लेखक या लेखिका ने अपना नाम एक जगह (सुमिरन के अंग, साखी नं० ३) 'दया दास' लिखा है। परंतु ग्रंथ की सब बातों पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'दयाबाई' और 'दयादास' एक ही व्यक्ति रहे होंगे। 'दया बोध' और विनयमालिका दोनों की भाषा और लेखनप्रणाली एक ही ढंग की है। दोनों ही ने गुरु के रूप में महात्मा चरनदास जी का गुणगान किया है। और फिर दोनों ही की विचार-धारा और कथनप्रणाली आदि में इतनी समानता है कि दोनों को भिन्न भिन्न लेखकों की कृति मानना कठिन है।

दया बाई को कविता बहुत सरल, सुबोध और मधुर है। विचार स्पष्ट और भाव स्वाभाविक हैं। उन में जटिलता कहीं नहीं आने पाई है। निम्नलिखित पद्य 'संतबानी-संग्रह' और 'दया बाई की बानी' से लिए गए हैं।

दयावाई

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहीं होवै ॥
गुरु बिन चौरासी मग जोवै ॥
गुरु बिन राम भक्ति नहीं जोगै ।
गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै ॥
गुरु ही दीन दयाल गुसाईँ ॥
गुरु सरनै जो कोई जाई ॥
पलटै करै काग सँ हंसा ।
मन की मेटत है सब संसा ॥
गुरु है सब देवन के देवा ।
गुरु की कोउ न जानस भेवा ॥
करुना सागर कृपा निधाना ।
गुरु हैं ब्रम्ह रूप भगवाना ॥
दै उपदेस करै भ्रम नासा ।
दया देत सुख सागर बासा ॥
गुरु की आहि निसि ध्यान जो करिये ।
विधिवत सेवा में अनुसरिये ॥
तन मन सुँ आशा में रहिए ।
गुरु अज्ञा बिन कछू न करिये ॥

गरीबदास जी*

चितावनी

सुनिये संत सुजान, गरब नहिं करना रे ॥
चार दिनों की चिहर बनी है, आखिर तो कूँ मरना रे ॥
तू जीने मेरि ऐसी निभेगी, हरदम लेखा भरना रे ॥

* जीवनकाल १७७४-१८३५ । जन्म और संतसंग स्थान-मौजा छुडानी, जिला रोहतक (पंजाब) । जाति और आश्रम-जाट, गृहस्थ । गुरु-कबीर साहब ।

बाइस बरस की अवस्था में इन्होंने अपनी सत्रह हजार साक्षी और चौपाई के ग्रंथ की रचना आरंभ की जिसके कुछ चुने हुए अंश संतबानी संग्रह में छपे हैं और उसी से ये पद लिये गये हैं । स्थानाभाव से इनका अधिक परिचय नहीं दिया जा सका ।

खायले पीले बिलसले हंसा, जोरि जोरि नहिँ धरना रे ॥
दास गरीब सकल में साहिब, नहीं किसी सूँ अड़ना रे ॥

सारगहनी

मन मगन भया जब क्या गावै ॥

ये गुन इंद्री दमन करेगा, वस्तु अमोली सो पावै ॥
तिरलोगी की इच्छा छाड़ै, जग में बिचरै निदावै ॥
उलटी सुलटी निरति निरंतर, बाहर से भीतर लावै ॥
अधर सिंघासन अविचल आसन, जहँवाँ सुरति ठहरावै ॥
त्रिकुटी महल में सेज बिछी है, द्वादस अंतर छिप जावै ॥
अजर अमर निज मूरत सूरत, ओअं सोहं दम ध्यावै ॥
सकल मनोरथ पूरन साहिब, बहुरि नहीं भौजल आवै ॥
गरीबदास सतपुरुष बिदेही, साँचा सतगुरु दरसावै ॥

उपदेश

मग पूछत हैं परतीत नहीं, नादी बादी भगड़ा ठानै ।
मुगता जगता नहिँ राह लहैं, नहिँ साध असाध कूँ जानता हैं ॥
देवल जाही मसजिद माहिँ, साहिब का सिरजा भानत हैं ॥
पंडित काजी डोबी बाजी, नसिँ नीर खीर कूँ छानत हैं ॥
चेतन का गल काटत हैं, धर पत्थर पाहन मानत है ॥
कहै दास गरीब निरास चले, धिरकार जनम नर लानत है ॥

राम सुमिर राम सुमिर, राम सुमिर लै रे ।
जम और जहान जीत, तीन लोक जै रे ॥
इन्द्री अदालत चोर, पकड़ो मन अहिरे ।
अनहद टंकेर घोर, सुनै क्यूँ न बहिरे ॥
सुरत निरतनाद बिद, मन पवना गहि रे ।
उनमुनी अलेल रूप, निराकार लहि रे ॥
धनुष ध्यान मार बान, दुरजन से फहिरे ॥
देखत के सीत कोट, भरम बुर्ज ढहि रे ॥
साच से प्रीत कीन, झूठा मन महि रे ।
कहत है गरीबदास, कुटिल बचन सहि रे ॥

जाति पाँति भेद खंडन ॥

कैसे हिन्दू तुरक कहाया, सबही एकै द्वारे आया ॥
 कैसे ब्राम्हन कैसे सूद्र, एकै हाड़ चाम तन गूद ॥
 एकै बिंद एक भग द्वारा, एकै सब घट बोलनहारा ॥
 कौम छतीस एकही जाती, ब्रम्ह बीज सब उत्पत्ती ॥
 एकै कुल एकै परिवारा, ब्रम्ह बीज का सकल पसारा ॥
 ऊँच नीच इस विधि है लोई, कर्म कुकर्म कहावै दोई ॥
 गरीबदास जिन नाम पिछाना, ऊँच नीच पद ये परमाना ॥

सहजो बाई

सहजो बाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित दूसर कुल में उत्पन्न हुई थीं। प्रसिद्ध दूसर कुलोत्पन्न महात्मा चरनदास जी इनके गुरु और दया बाई इनकी गुरु बहिन थीं। इनके जीवन चरित्र के संबंध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। केवल इतना कहा जा सकता है कि ये सं० १८०० में विद्यमान थीं।

सभी संत कवियों की भाँति इनके संबंध के भी कुछ चमत्कार प्रसिद्ध हैं। इनकी रचना से इतना अवश्य स्पष्ट है कि इनकी गुरुभक्ति और हरिभक्ति बड़ी गंभीर और सच्ची थी और इनके भाव बड़े कोमल, मधुर और हृदयग्राही होते थे। इनकी भाषा भी बहुत स्वच्छ और सरल है।

इनका एक मात्र ग्रंथ 'सहज प्रकाश' प्राप्त है। इनके कुछ फुटकर पदों का संग्रह 'संतबानी संग्रह' में भी है और इन्हीं दोनों से निम्नलिखित पद्य लिए गए हैं।

सहजो बाई

गुरुदेव

हमारे गुरु पूरन दातार ।

अभय दान दीनन को दीन्हे, किये भवजल पार ॥

जन्म जन्म के बंधन काटे, जन्म को बंध निवार ॥

रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियौ अपार ॥

देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावन हार ॥

तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उजियार ॥

सब दुख गंजन पातक भंजन, रंजत ध्यान विचार ॥

साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार ॥

आनंद रूप सरूप भई है, लिपत नहीं संसार ॥

चरन दास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारंवार ॥

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ, गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ ॥

हरि ने जन्म दियो जग माहीं, गुरु ने आवागवन छुटाहीं ॥

हरि ने पाँच चोर दिये साथी, गुरु ने लई छुटाय अनाथा ॥

हरि ने कुटुंब जाल में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी ॥

हरि ने रोग भोग उरभायो, गुरु जोगी करि सबै छुटायौ ॥

हरि ने कर्म भर्म भरमायौ, गुरु ने आतम रूप लखायौ ॥

हरि ने मोखूँ आप छिपायौ, गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥

फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये, गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥

चरन दास पर तन मन वारूँ, गुरु को न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ ॥

चित्तावनी (१)

पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय ॥

पीव मिलन की ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय ॥

रहिये ना पड़ि सोइ, बहुरि नहिँ मनुखा देही ॥

आपन ही कूँ खोजु, मिलै तब राम सनेही ॥

हरि कूँ भूले जो फिरै, सहजो जीवन छार ॥

मुखिया जब ही होयगो, सुमिरैगो करतार ॥

(२)

चौरासी भुगती घना, बहुत सही जममार ॥

भरमि फिरे तिहुँ लोक में, तहू न मानी हार ॥

तहू न मानी हार, मुक्ति की चाह न कीन्ही ॥
 हीरा देही पाइ मोल माटी के दीन्ही ॥
 मूरख नर समझै नहीं, समझाया बहु बार ॥
 चरनदास कहै सहजिया सुमिरै ना करतार ॥

प्रेम

मुकट लटक अटकी मन माहीं ।

निरत नटवर मदन मनोहर, कुंडल भलक पलक बिथुराई ॥
 नाक बुलाक हलत मुकाहल, होठ मटक गति भौंह चलाई ॥
 ठुमक ठुमक पग धरत धरनि पर, बाँह उठाय करत चतुराई ॥
 झुनक झुनक नूपुर झनकारत, ततायेई थेई रीझ रिझाई ॥
 चरनदास सहजो हिये अंतर, भवन करौ जित रहौ सदाई ॥

विनय

हम बालक तुम माय हमारी, पल पल मोहिं करो रखवारी ॥
 निस दिन गोदी ही में राखो, इत वित बचन चितावन भाखो ॥
 बिषै ओर जाने नहिं देवो, ढरि ढरि जाऊँ तो गहि गहि लेवो ॥
 मैं अनजान कछू नहिं जानूँ, बुरी भली को नहिं पहिचानूँ ॥
 जैसी तैसी तुमहीं चीन्हेव, गुरु हूँ ध्यान खिलौना दीन्हेव ॥
 तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ, नाम तुम्हारी अमृत पीऊँ ॥
 दृष्टि तिहारी ऊपर मेरे, सदा रहूँ मैं सरनै तेरे ॥
 मारौ झिड़कौ तौ नहिं जाऊँ सरकि सरकि तुमहीं पै आऊँ ॥
 चरनदास है सहजो दासी, हो रच्छक पूरन अविनासी ॥

अब तुम अपनी ओर निहारो ।

हमरे औगुन पै नहिं जावो, तुमहीं अपनी बिरद सम्हारो ॥
 जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गाई ॥
 पतित उधारन नाम तिहारो, यह सुन के मन दृढ़ता आई ॥
 मैं अज्ञान तुम सब कछू जानो, घट घट अंतर जामी ॥
 मैं तो चरन तुम्हारे लागी, हौ किरपाल दयालहि स्वामी ॥
 हाथ जोरि के अरज करत हौँ, अपनाओ गहि बाँहीं ॥
 द्वार तिहारे आय परी हौँ, पौष गुन मो में कछू नाहीं ॥
 चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ ॥
 लगन लगी और प्रान अड़े हैं, तुमको छोड़ि कहो कित जाऊँ ॥

उपदेश

सो बसंत नहिँ बार बार, तैं पाई मानुष देह सार ॥
 यह औसर विरथान खोव, भक्तिबीज हिये धरती बोव ॥
 सत संगत की सींच नीर, सतगुरु जी सों करौं सीर ॥
 नीकी बार बिचार देव, परन राखि या कूँ जु सेव ॥
 रखवारी करु हेत देत, जब तेरी होवै जैत जैत ॥
 खोट कपट पंछी उड़ाव, मोह प्यास सबही जलाव ॥
 संभलै बाडी नऊ अंग, प्रेम फूल फूलै रंग रंग ॥
 पुहुप गूँध माला बनाव, आदि पुरुख कूँ जा चढ़ाव ॥
 तौ सहजो बाई चरनदास, तेरे मन की पुर व सकल आस ॥

दरिया साहब
(बिहार वाले)

दरिया साहब का जन्म मुकाम धरकंधा जिला आरा में हुआ था इनके पिता का नाम पीरन शाह था जो कि उज्जैन के एक बड़े प्रतिष्ठित खत्री थे। पर इनकी माँ दर्जिन थी। इनके पूर्वपुरुषों के अधिकार में बकसर के पास जगदीश पुर में एक रियासत भी थी।

इनकी जन्मतिथि अनिश्चित है पर मरणतिथि इनके मुख्य ग्रंथ 'दरिया सागर' के अंत में सं० १८३७ भादों बदी चौथ दी हुई है। दरियापंथियों के अनुसार ये १०६ वर्ष तक जीवित रहे, और इस हिसाब से इनका जन्म सं० १७३१ में माना जाना चाहिए।

ये कबीर के अवतार माने जाते हैं। कहते हैं शैशव काल में ही साक्षात् भगवान इनके सम्मुख प्रगट हुए थे और इनका नाम दरिया रक्खा था। विवाहित होने पर भी १५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने वैराग्य ले लिया था और स्त्रीसंग से सदा विरत रहे।

इनके अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं जिनमें मुख्य 'दरियासागर' और 'ज्ञानबोध' है। इनके विचार कबीर के विचारों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। वेद पुराण, जाति पाँति, मंदिर मस्जिद मूर्ति पूजा नमाज तथा तीर्थ, व्रत, रोजा आदि को ये भी ढोंग और पाखंड समझते थे और इनकी कटु आलोचना किया करते थे। इन्होंने अपना एक अलग पंथ चलाया था जिसके कुछ रस्म रवाज मुसलमानों से मिलते जुलते हैं।

प्रस्तुत संग्रह के पद्य 'संतबानी संग्रह' और 'दरिया सागर' की सहायता से लिए गए हैं।

दरिया साहब (मारवाड़ वाले)

दरिया साहब, मारवाड़ वाले का जन्म मारवाड़ प्रांत के जैतारन नामक गाँव में एक मुसलमान के कुल में सं० १७३३ में और अगहन सुदी पूर्णों सं० १८१५ को इनका स्वर्गवास हुआ। इनके माता पिता धुनियाँ जाति के मुसलमान थे जैसे कि इनके निम्नलिखित पद से स्पष्ट है—

‘जो धुनियाँ तौ भी मैं राम तुम्हारा,
अधम कमीन जाति मति हीना,
तुम तो हौ सिरताज हमारा।

सात वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई थी और तब से ये मेड़ते में अपने नाना कमीच के यहाँ रहने लगे थे। उस समय मारवाड़ के राजा बख्शसिंह जी थे जिनको इन्होंने अपना एक शिष्य भेज कर एक असाध्य बीमारी से मुक्त किया था।

इनके गुरु बीकानेर के खियान्सर नामक गाँव के रहने वाले प्रेम जी नाम के साधु थे। कहते हैं इन्हीं दरिया साहब के संबंध में दादू ने सौ वर्ष पहले यह भविष्यवाणी की थी—

देह पड़ताँ दादू कहै सौ बरसाँ इक सन।
रैन नगर में परगटै, तारै जीव अनंत ॥

स्मरण रहे बिहार के धरकंधा गाँव वाले दरिया साहब इनसे बिल्कुल भिन्न थे।

इनकी बानियों का संग्रह बेलवेडियर प्रेस ने दरिया साहब (मारवाड़ वाले) की बानी नाम से प्रकाशित किया है और प्रस्तुत संग्रह इसी की सहायता से तैयार किया गया है।

दरिया साहिब (विहार वाले)

विनय

मैं जानहुँ तुम दीन दयाल ।
तुम सुमिरे नहिँ तपत काल ॥
ज्यों जननी प्रतिपाले सूत ।
गर्भ बास जिन दियो अकूत ॥
जठर अग्नि तैं लियो है काढ़ि ।
ऐसी बाकी ठवरि गाढ़ि ॥
गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह ।
परघट जग में तेहि गति दीन्ह ॥
गरबी मारेउ गैब बान ।
संत को राखेउ जीव जान ॥
जल में कुमुदिन इन्दु अकास ।
प्रेम सदा गुरु चरन पास ॥
जैसे पपिहा जल से नेह ।
बुन्द एक बिस्वास तेह ॥
स्वर्ग पताल मृत मंडल तीनि ।
तुम ऐसो साहिब मैं अधीन ॥
जानि आयो तुम चरन पास ।
निज मुख बोलेउ कहेउ उदास ।
सत पुरुष बचन नहिँ होहिँ आन ।
बलु पूरब से पच्छिम उगहिँ भान ॥
कह दरिया तुम हमहिँ एक ।
ज्यों हारिल की लकड़ी टेक ॥

अब की बार बकस मोरे साहिब ।
तुम लायक सब जोग हे ॥
गुनह बकसि हौ सब भ्रम नसि हौ ।
रखि हौ आपन पास हे ॥
अछै बिगछि तरि लै बैठे हो ।
तहवाँ धूप न छाँह हे ॥
चाँद न सुरज दिवस नहिँ तहवाँ ।

नहिं निनु होत बिहान हे ॥
 अमृत फल मुख चाखन दैहौ ।
 सेज सुगंधि सुहाय हे ॥
 जुग जुग अचल अमर पद दैहौ ।
 इतनी अरज हमार हे ॥
 भौसागर दुख दारुन मिटि है ।
 छुटि जैहै कुल परिवार हे ॥
 कह दरिया यह मंगल मूला ।
 अनूप फुलै जहाँ फूल हे ॥

बिरह

अमर पति प्रीतम काहे न आवो ।
 तुम सतवर्ग हौ सदा सुहावन, किमि नहिँ उर गहि लावो ॥
 बरषा विविधि प्रकार पवन अति, गरजि धुमरि घहरावो ।
 बुन्द अखंडित मंडित महि पर, छुटा चमकि चहुँ जावो ॥
 भौंगुर भनकि भनकि भनकारहि, बान बिरह उर लावो ।
 दादुर मोर सोर सघन बन, पिय बिनु कछु न सुहावो ॥
 सरिता उमड़ि घुमड़ि जल छावो, लघु दिर्घ सब बढ़ियावो ।
 धाके पंथ पथिक नहिँ आवत, नैनन में भरि लावो ॥
 केहि पूछौ पछितावत दिल में, जो पर होइ उड़ि धावो ।
 जो पिय मिलै तो मिलौ प्रेम भरि, अमि भाजन भरि लावो ॥
 है बिस्वास आस दिल मेरे, फिरि दृग दर्सन पावो ।
 कह दरिया धन भाग सुहागिनि, चरन कंवल लपटावो ॥

अनहद

होरी सद संत समाज संतन गाइया ।
 बाजा उमंग भाल भनकारा, अनहद धुन घबराइया ॥
 भरि भरि परत सुरंग रंग तहँ, कौतुक नभ में छाइया ॥
 राग रुबाव अघोर तान तहँ, भिन भिन जंतर लाइया ।
 छवो राग छत्तीस रागिनी, गंधर्व सुर सब गाइया ॥
 पाँच पचीस भवन में नाचहि, भर्म अवीर उड़ाइया ॥
 कह दरिया चित चंदन चर्चित, सुंदर मुभग सुहाइया ॥

प्रेम

तुम मेरो साईं मैं तेरो दास, चरन कंवल चित मेरो बास ।
 पल पल मुमिरौ नाम सुबास, जीवन जग में देखो दास ॥

जल में कुमुदिन चंद अकास, छाड़ रहा छवि पुहुप बिलास ।
उन मुनि गगन भया परगास, कह दरिया मेटा जम त्रास ॥

भेद

मानु सबद जो कर बिबेके ।
अगम पुरष जहँ रूप न रेख ॥
अठदल कँवल सुरति लौ ।
अजपा जापि के मन समुभाय ॥
भँवर गुफा में उलटि जाय ।
जगमग जोति रहे छवि छाया ॥
अंक नाल गहि खँच सूत ।
चमके बिजुली मोती बहुत ॥
सेत घटा चहुँ ओर घनघोर ।
अजरा जहवाँ होय अजोर ॥
अमिय कँवल निज करो बिचार ।
चुवत बुंद जहँ अमृत धार ॥
छव चक्र खोजि करा बिवास ।
मूल चक्र जहँ जिव को बास ॥
काया खोजि जोगी भुलान ।
काया बाहर पद निरवान ॥
सतगुर सबद जो करै खोज ।
कहै दरिया तब पूरन जोग ॥

उपदेश (१)

भीतरि मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है ॥
अवगति मुरति महल के भीतर, वा का पंथ न जोवै है ॥
जुगुति बिना कोई भेद न पावै, साधु संगति का गोवै है ॥
कह दरिया कुटने बे गीदी, सीम पटक का रोवै है ॥

(२)

पेड़ को पकर तब डारि पालौ मिलै ।
डारि गहि पकर नहिं पेड़ यार ॥
देस दिब दृष्टि असमान में चंद्र है ।
चंद्र की जोति अनगिनित तार ॥
आदि औ अंत सब मध्य है मूल में ।

मूल में फूल धौं केति डारा ॥
 नाम निर्गुन निलेंप निर्मन वरै ।
 एक से अनंत सब जगत सारा ॥
 पढ़ि बेद कितेश बिस्तार बक्ता कथै ।
 हारि बेचून वह नूर न्यारा ॥
 निर्वैच निर्बान निःकर्म निःमर्म वह ।
 एक सर्वज्ञ सत नाम प्यारा ॥
 तजु मान मनी करू काम के काबु यह ।
 खोजु सतगुरु भरपूर मूरा ॥
 असमान कै खुंद गरकाव हूआ ।
 दरियाब की लहरि कहि बुहुरि मूरा ॥

मिश्रित

सत सुकृत दूनो खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि ।
 उरध उरध दूनो मचवा हो, इंगला पिंगला भ्रुकभोरि ॥
 कौन सखी सुख बिलसै हो, कौन सखी दुख साथ ।
 कौन सखिया सुहागिनी हो, कौन कमल गहि हाथ ॥
 सत सनेह सुख बिलसै हो, कपट करम दुख साथ ।
 पिया मुख सखिया सुहागिनि हो, राधा कमल गहि हाथ ॥
 कौन भुलावै कौन भूलहिं हो, कौन बैठलि खाट ।
 कौन पुरुष नहिं भूलहिं हो, कौन रोकै बाट ॥
 मन रे भुलावै जिव भूलहिं हो, सक्ति बैठलि खाट ।
 सत्त पुरुष नहिं भूलहिं हो, कुमति रोकै बाट ॥
 सुर नर मुनि सब भूलहिं हो, भूलहिं तीनि देव ।
 गनपति फनपति भूलाहिं हो, जोगि जती सुकदेव ॥
 जीव जंतु सब भूलहिं हो, भूलहिं आदि गनेस ।
 कल्प कोटि लै भूलहिं हो कोइ कहै न सँदेस ॥
 सत्त सन्द जिन पावल हो, भये निर्मल दास ।
 कहै दरिया दर देखिय हो, जाय पुरुष के पास ॥

गुलाल साहब

गुलाल साहब जगजीवन साहब के समकालीन और गुरुभाई थे और इनका जीवन काल सं० १७५० से १८०० तक माना जाता है। यह जाति के खत्री और घर के गृहस्थ जमींदार थे। ये गाजीपुर जिले के भरकुड़ा नामक स्थान में रहते थे और वहीं इन्होंने भीखा साहब को दीक्षा दी थी। इन के (गुलाल साहब) के गुरु प्रसिद्ध संत बुल्ला साहब थे जिन का असली नाम बुलाकी राम था।

इन का कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिला है केवल इनके कुछ स्फुट पद्यों का संपादन बेलवेडियर प्रेस से 'गुलाल साहब की बानी' नाम से हुआ है और निम्न लिखित पद्य उसी से संगृहीत हुए हैं। यारी साहब की शिष्यपरंपरा में गुलाल साहब ही सब से अच्छे कवि कहे जा सकते हैं। यों तो क्रमशः इस शिष्यपरंपरा में ज्ञान की महिमा कम तथा भक्ति और प्रेम की महिमा बढ़ती हुई प्रतीत होती ही है पर गुलाल साहब की कविता में तो प्रेमावेश बहुत ही बढ़ गया है और इसी से इनकी कविता अधिक सरस हो गई है। कुछ आत्मानुभव के पद भी इनकी रचना में बड़े सुंदर बन पड़े हैं।

गुलाल साहिब

नाम

नाम रस अमरा है भाई, कोउ साथ संगति ते' पाई ॥
बिन घोटे बिन छाने पीवै, कौड़ी दाम न लाई ॥
रंग रंगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई ॥
छुके छाकये पगे पगाये, भूमि भूमि रस लाई ॥
बिमल बिमल बानी गुन बोलौ, अनुभव अमल चलाई ॥
जहँ जहँ जावै थिर नहिँ आवै, खोल अमल लै धाई ॥
जल पत्थल पूजन करि मानत, फोकट गाढ़ बनाई ॥
गुरु परताप कृपा ते' पावै, घट भरि प्याल फिराई ॥
कहे गुलाल मगन है बैठे, भगि है हमरि बलाई ॥

अनहद शब्द

रे मन नामहिँ सुमिरन करै ।

अजपा जाप हृदय लै लावो, पाँच पचीसो तीन मरै ॥
अष्ट कमल में जीव बसतु है, द्वादश में गुरु दरस करै ॥
सेरह ऊपर बानि उठतु है, दुइ दल अमी भरै ॥
गंगा जमुना मिली सरसुती, पदुम भलक तहँ करै ॥
पछिम दिसा है गगन मँडल में, काल बली सों लरै ॥
जम जीतो परम पद पायो, जोती जग मग बरै ॥
कह गुलाल सोइ पूरन साहिब, हर दम मुक्ति करै ॥

प्रेम

जो पै कोई प्रेम को गाहक होई ।

त्याग करै जो मन की कामना, सीस दान दै सोई ॥
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति जोई ॥
हर दम हाजिर प्रेम पियाला, पुलकि पुलकि रस लेई ॥
जीव पीव महँ पीव जीव महँ, बानी बोलत सोई ॥
सोई सभन महँ हम सबहन महँ, बूझत बिरला कोई ॥
बा की गती कहा कोई जानै, जो जिय साचा होई ॥
कह गुलाल वे नाम समाने, मल भूले नर लोई ॥

अबिगत जागल हो सजनी ।
 खोजत खोजत सतगुरु पावल ॥
 ताहि चरनवाँ चितवा लागल हो सजनी ॥
 सौँझि समय उठि दीपक बारल ।
 कटल करमवा मनुवाँ पागल हो सजनी ॥
 चललि उबटि बाट छुटलि सकल घाट ।
 गरज गगनवा अनहद बाजल हो सजनी ॥
 गइली अनँदपुर भइली अगम सूर ।
 जितली मैदनवाँ नेजवा गाइल हो सजनी ॥
 कहे गुलाल हम प्रभुजी पावल,
 फरल लिलरवा पपवा भागल हो सजनी ॥

आनँद बरखत बुंद सुहावन ।
 उमँगि उमँगि सतगुरु वर राजित, समय सुहावन भावन ॥
 चहुँ ओर घनघोर घटा आई, सुन्न भवन मन भावन ।
 तिलक तत्त बेदी पर झलकत, जगमग जोति जगावन ॥
 गुरु के चरन मन मगन भयो जब, बिमल बिमल गुन गावन ।
 कहे गुलाल प्रभु कृपा जाहि पर, हर दम भादों सावन ॥

बिनय

प्रभु जी बरषा प्रेम निहारो ।
 ऊठत बैठत छिन नहिं बीतत, याही रीति तुम्हारो ॥
 समय होय असमय होवै, भरत न लागत बारो ।
 जैसे प्रीति किसान खेत सों, तैसो है जन प्यारो ॥
 भक्त बच्छल है बान तिहारो, गुन औगुन न बिचारो ।
 जहँ जँह जावँ नाम गुन गावत, जम को सोच निवारो ॥
 सोवत जागत सरन धरम यह, पुलकित मनहिं बिचारो ।
 कह गुलाल तुम ऐसो साहिब, देखत न्यारी न्यारो ॥

भेद

मन मधुकर खेलत बसंत ।
 बाजत अनहद गति अनंत ॥
 बिगसत कलम भयो गुँजार ।
 जोति जगामग करि पसार ॥

निरखि निरखि जिय भयो अनंद ।
 बाभल मन तब परल फंद ॥
 लहरि लहरि बहै जोति धार ।
 चरन कमल लन मिलो हमार ॥
 आवै न जाइ मरै नहि जीव ।
 पुलकि पुलकि रम अमिय पीव ॥
 अगम अगोचर अलख नाथ ।
 देखत नैनन भयो सनाथ ॥
 कह गुलाल मोरी पुजलि आस ।
 जम जीयो भयो जोति बाम ॥

उलटि देखो, घट में जोति पमार ।
 बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार ॥
 पैठि पताल सूर ससि बांधौ, साधौ त्रिकुटी द्वार ।
 गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ॥
 इंगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर मुख धार ।
 सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै भनकार ॥
 सोह डोरी मूल गहि बांधो, मानिक बरत लिलार ।
 कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भँडार ॥

उपदेश

अवधू निर्मल ज्ञान विचारो ।
 ब्रह्म सरूप अखंडित पूरन, चौथे पद सां न्यारो ॥
 ना वह उपजै ना वह बिनसै, ना भरमै चौरासी ॥
 है सतगुरु सतपुरुष अकेला, अजर अमर अविनासी ॥
 ना बाके बाप नहीं बाके माता, बाके मोह न माया ॥
 ना बाके जोग भोग बाके नाहीं, ना कहँ जाय न आया ॥
 अद्भुत रूप अपार बिराजै, सदा रहै भरपूरा ॥
 कहै गुलाल सोई जन जानै, जाहि मिलै गुरु सारा ॥

हरि नाम न लेहु गँवारा हो ।
 काम क्रोध में रटत फिरत है, कबहुँ न आप सँभारा हो ॥
 आपु आपन कै सुधि नहि जानहुँ, बहुत करत बिस्तारा हो ॥
 नेम धरम ब्रत तिरथ करतु है, चौरासी बहु धारा हो ॥
 तसकर चोर बसहि बट भीतर, मूसहि सहन भँडारा हो ॥

सन्यासी बैरागी तपसी, मनुषां देत पछारा हो ॥
धंधा धोख रहत लपटाने, मोह रतो संसारा हो ॥
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी, जग तें भयो निरारा हो ॥

मन तूँ हरि गुन काहे न गावै ।

तातें कोटिन जनम गँवावै ॥

घर में अमृत छोड़ि कै, फिरि फिरि मदिरा पावै ।
छोड़हु कुमति मूढ़ अब मानहु, बहुरि न ऐसो दावै ॥
पाँच पचीस नगर के बासी, तिनहिं लिये सँग धावै ।
बिन पर उड़त रहै निसि बासर, ठौर ठिकान न आवै ॥
जोगी जती तपी निर्बानी, कपि ज्यों बाँधि नचावै ।
सन्यासी बैरागी मौनी, धै धै नरक मिलावै ॥
अबकी बार दाव है मेरो, छोड़ों न राम दुहाई ।
जन गुलाल अवधूत फकीरा, राखों जंजीर भराई ॥

माया

संतो कठिन अपरबल नीरा ।

सब हीं बरलहि भोग कियो है, अजहूँ कन्या क्वारी ॥
जननी है के सब जग पाला, बहु विधि दूध पियाई ॥
सुंदर रूप सरूप सलोना, जोय होइ जग खाई ॥
मोह जाल सों सबहि बभायो, जहँ तक है तन धारी ॥
कल सरूप प्रगट है नारी, इन कहँ चलहु सँभारी ॥
आन ज्ञान सब ही हरि लीन्हो, काहु न आप सँभारी ॥
कहै गुलाल कोऊ कोउ उबरे, सतगुरु की बलिहारी ॥

मिश्रत

मत्तहि डोलवा सतगुरु नावल तहवाँ मनुषां भुलत हमार ।
बिनु डोरी बिनु खंभे फौदल, आठ पहर भनकार ॥
गावहु सखियाँ हिँडोलवा हो, अनुभौ मंगलचार ॥
अब नहिँ अवना जवना हो, प्रेम पदारथ भइल निनार ॥
कुटत जगत कर भुलना हो, दास गुलाल मिलो है यार ॥

बुल्ला साहब

यारी साहब के दो शिष्य बुल्ला साहब और केशवदास हुए। बुल्ला साहब जाति के कुनबी थे और इनका असली नाम बुलाकी राम था। इनका सत्संग स्थान भरकुड़ा जिला गाजीपुर था। इनका समय सं० १७५०-१८२५ तक बतलाया जाता है। प्रसिद्ध संत गुलाल इन्हीं के शिष्य थे। गुलाल साहब बसहरि जिला गाजीपुर के क्षत्रिय जमींदार थे और गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही इन्होंने संतों के सत्संग से पूरा लाभ उठाया था। कहते हैं कि इनके गुरु बुलाकी राम साहब पहले इन्हीं के यहाँ हलवाई का काम करते थे, परंतु एक दिन जब ये खेत में गए तो बुलाकीराम को हल छोड़ कर ध्यान में मग्न देखा और क्रोध में आकर इन्हें एक लात मारी जिससे ये चौंक पड़े और इनके हाथ से दही छलक पड़ा। यह आश्चर्यमयी घटना देख कर बड़े आग्रह से गुलाल साहब ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि मैं साधुओं को भोजन कराकर दही परस रहा था कि इतने ही में तुमने लात मारी और मेरे हाथ से दही गिर पड़ा। गुलाल ने जाँच कराई तो यह घटना सच निकली और तभी से यह उनके (बुलाकीराम) के शिष्य हो गए जो कि बाद में बुल्ले शाह या बुल्ला साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए।

निम्नलिखित पद 'बानी' से संगृहीत हुए हैं।

बुल्ले शाह

चित्तवर्नी

माटी खुदी करेंदी यार ।

माटी जोड़ा माटी धोड़ा, माटी का असवार ॥
माटी मटी माटो नूँ मारन लागी, माटी दे हथियार ॥
जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हंकार ॥
माटी बाग बगीचा माटी, माटी दी गुलजार ॥
माटी माटी नूँ देखन आई, माटी दी बाहार ॥
हंस खेल फिर माटी होई, पौंदी पाँव पसार ॥
बुल्ले शाह बुभारत बूझी, लाह सिरों मों मार ॥

अब तो जाग मुसाफर प्यारे, रैन घटी लटके सब तारे ॥
आवागौन सराईं डेरे, साथ तयार मुसाफर तेरे ॥

अजे न सुन दा कूच नगारे ॥

करलै आज करन दी बेला, बहुरि न होसी आवत तेरा ॥

साथ तेरा चल चल्ल पुकारे ॥

आपो अपने लाहे दौड़ी, क्या सरधन क्या निर्धन बौरी ॥

लाहा नाम तू लेहु सँभारे ॥

बुल्ले सहु दी पैरी परिये, गफलत छोड़ हीला कुछ करिये ॥

मिरग जतन बिन खेत उजारे ॥

बिरह

कद मिलसी मैं बिरहों सताई नूँ ॥

आप न आवै नाँ लिख भेजे, भट्टि अजे ही लाई नूँ ॥

तैं जेहा कोइ हेर नाँ जाणा, मैं तनि सूल सवाई नूँ ॥

रात दिनें आराम न मैं नूँ, खावे बिरह कसाई नूँ ॥

बुल्ले साह धृग जीवन मेरा, जौँ लग दरस दिखाई नूँ ॥

उपदेश

दुक बूझ कवन छप आया है ॥

इक नुकते में जो फेर पड़ा, तब ऐन गैन का नाम धरा ॥

जब मुरसद नुकता दूर किया, तब ऐनों ऐन कहाया है ॥

तुसीं इलम कितावाँ पढ़ दे हो, के हे उलटे माने कर दे हो ॥
 बेमूजब ऐबें लड़दे हो केहा, उलटा बेद पढ़ाया है ॥
 दुई दूर करो कोई सोर नहीं, हिंदु तुरक कोइ होर नहीं ॥
 सब साधु लखे कोइ चोर नहीं, घट घट में आप समाया है ॥
 ना मैं मुल्ला ना मैं काजी, ना मैं सुन्नी ना है हाजी ॥
 बुक्के साह नाल लाई बाजी, अनहद सबद बजाया है ॥

यारी साहब

यारी साहब जाति के मुसलमान थे और अपने गुरु बीरू साहब की सेवा में दिल्ली में ही रहते थे । बहुत खोज करने पर भी इनके जीवन का कोई सुसंबद्ध वृत्तांत नहीं प्राप्त हो सका है । इनका जीवनकाल सं० १७२५ से १७८० तक माना गया है । इनके गुरुमुख शिष्य बुल्ला साहब हुए जो कि गुलाल साहब के गुरु और भीखा साहब के दादा गुरु थे । इनकी (यारी साहब) बानियों को प्राप्त करने में संतबानी के संपादकों को बड़ी खोज करनी पड़ी थी । बड़ी कठिनाइयों के बाद इनके कुछ पद गाजीपुर तथा बलिया आदि प्रांतों में मिल सके हैं । इनके जो कुछ भी पद्य मिले हैं उनके एक एक शब्द से इनकी आगाध भक्ति और उच्च गति टपकती है ।

अनुमान से इनका जीवन काल सं० १७२५ से १७८० तक माना गया है ।

यारी साहब

भूलना

गुरु के चरन को रज लै कै, दोउ नैन के बिच अंजन दिया ।
तिमिर मेटि उँजियार हुआ, निरंकार पिया को देख लिया ॥
काटि सुरज तहँ छिपे घने, तीनि लोक धनी धन पाइ पिया ।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरि के यारी जुग जुग जिया ॥

अनहद शब्द

सुन्न के मुकाम में बेचून की निसानी है ।
जिकिर रूह सोई अनहद बानी है ॥
अगम के गम्म नाहीं भलक पिसानी है ।
कहै यारी आपा चीन्है सोई ब्रम्हज्ञानी है ॥
झिलमिल झिलमिल बरखै नूर ।
नूर जहूर सदा भरपूर ॥
रुनभुन रुनभुन अनहद बाजै ।
भँवर गुँजार गगन चढ़ि गाजै ॥
रिमझिम रिमझिम बरखै मोती ।
भयो प्रकास निरंतर जोती ॥
निरमल निरमल निरमल नामा ।
कहै यारी तहँ लियो विश्रामा ॥

प्रेम

हैं तो खेलैं पिया संग होरी ।
दरस परस पतिव्रता पिय की, छुबि निरखत भइ बौरी ॥
सो रह कला सँपूरन देखैं, रवि ससि भे इक ठौरी ॥
जब तैं दृष्टि परो अविनासी, लागो रूप ठगौरी ॥
रसना रटत रहत निस बासर, नैन लगे यहि ठौरी ॥
कहै यारी भक्ति करु हरि की, कोई कहै सो कहौ री ॥
बिरहिनी मंदिर दियना बार ॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उँजियार ॥
पान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार ॥

सुखमन सेज परम लत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ॥
गावहु री मिलि आनंद मंगल, यारी मिलि के यार ॥

भेद भूलना

दोउ मूँदि के नैन अंदर देखा, नहिँ चाँद सुरज दिन राति है रे ।
रोसन समा बिनु तेल बाती, उस जोति सेां सबै सिफाति है रे ॥
गोत मारि देखे आदम, कोउ अवर नाहिँ संग साथि है रे ।
यारी कहै तहकीक कीया, तू मलकुल मौत की जाति है रे ॥

जमीं बरखै असमान भीजै, बिन बातिहिँ तेल जलाइये जी ॥
जहाँ नूर तजल्ली बीच है रे, बेरंगी रंग दिखाइये जी ॥
फूल बिना जदि फल होवै, तदि हीरा की लज्जत पाइये जी ॥
यारी कहै यहि कौन बूझै, यह का सो बात जानिये जी ॥

उपदेश

बित बंदगी इस आलम में, खाना तुम्हे हराम है रे ॥
बंदा करै सोइ बंदगी, खिदमत में आठो जाम है रे ॥
यारी मौला बिसारि कैं, तू क्या लागा बे काम है रे ॥
कुछ जीते बंदगी करले, आखिर को गोर मुकाम है रे ॥

गहने के गढ़े तैं कहीं सोनो भी जातु है ।
सोनो बीच गहने और गहने बीच सोन है ॥
भीतर भी सोनो और और बाहर भी सोन दीसै ।
सोनो तो अचल अंत गहने को मीच है ॥
सोन को तो जानि लीजै गहने बरबाद कीजै ।
यारी एक सोनो ता में ऊँच कवन नीच है ॥

कवित्त

आँधरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसो आयो ।
बूझो जिन जैसो तिन तैसाई बतायो है ॥
टकाटोरी दिन रैन हिये हू के फूटे नैन ।
आँधरे को आरसी में कहा दरसायो है ॥
मूल की खबरि नाहिँ जा सेां यह भयो मुलुक ।
वा को बिसारि भाँदू डारै अरुभायो है ॥
आपनो सरूप रूप, आपु माहिँ देखै नाहिँ ।
कहै यारी आँधरे ने हाथी कैसो पायो है ॥

दूलन दास

अधिकांश संत कवियों की भाँति दूलनदास का जीवन वृत्तांत भी अप्राप्य सा है। केवल इतना स्पष्ट है कि यह जगजीवन साहब के गुरुमुख चेले थे और अठारहवीं शताब्दी के पिछले भाग से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वर्तमान थे। यह जाति के सोम वंशीय क्षत्रिय थे और इनका जन्म लखनऊ जिले के समेसी नामक गाँव में एक ज़मींदार के घर हुआ था। आरंभ में बहुत दिन तक ये सरदहा में अपने गुरु जगजीवन से उपदेश ग्रहण करते रहे।

इनकी स्फुट बानियों का एक संग्रह बेलबेडियर प्रेस से संपादित हुआ है और निम्नलिखित पद उसी के आधार पर संगृहीत हुए हैं।

दूलनदास

भेद

देख आयेन मैं तो साईं की सेजरिया ।
साईं की सेजरिया सतगुरु की डगरिया ॥
सबदहि ताला सबदहि कुंजी, सबद की लगी है जंजरिया ।
सबद ओढ़ना सबद बिछौना, सबद की चटक चुनरिया ॥
सबद सरूपी स्वामी आप बिराजै, सीस चरन में धरिया ।
दूलनदाम भजु साईं जग जीवन, अगिन से अहङ्ग उजरिया ॥

साईं तेरो गुप्त मर्म हम जानी ।
कस करि कहौ बखानी ॥

सतगुरु संत भेद मोहि दीन्हा, जग से राखा छानी ।
निज घर का कोउ खोज न कीन्हा करम भरम अटकानी ॥
निज घर है वह अगम अपारा, जहाँ बिराजै स्वामी ।
ताके पैर अलोक अनामी, जा का रूप न नामी ॥
ब्रह्म रूप धरि सृष्टि उपाई, आप रहा अलगानी ।
बेद कितेव की रचन रचाई, दस औतार धरानी ॥
निज माता सेता सोइ राधा, जिन पितु राम सुवामी ।
दोउ मिलि जीवन बुंद छुड़ाया, निज पद में दिया ठामी ॥
दूलनदास के साईं जग जीवन, निज सुत जक्त पठानी ।
मुक्ति द्वार की कुंची दीन्ही, तातें कुलुफ खुलानी ॥

दोहा

दूलन यह मत गुप्त है, प्रगट न करौ बखान ।
ऐसे राखु छिपाय मन, जस बिधवा औधान ॥

“नाम महिमा”

जब गज अरध नाम गुहराये ।
जब लगि आवै दूसरा अच्छर, तब लगि आपुहि धाये ॥
पांय पियादे मे करनामय, गरुणासन विसराये ॥
धाय गजंद गोद प्रभु लीन्हा, आपनि भक्ति दिवाये ॥

मीरा को विष अमृत कीन्हे, चिमल सुजस जग छाये ॥
नामदेव हित कारन प्रभु तुम, मितेक गाय जियायो ॥
भक्त हेत तुम जुग जुग जनमेउ, तुमहिं सदा यह भायो ॥
बलि बलि दूलनदास नाम की, नामहिं तें चित लाये ॥

बाजत नाम नौबति आज ॥

है सावधान सुचित्त सीतल, सुनहु गैव अवाज ॥
सुखकंद अनहद नाद सुनि दुख दुरित क्रम भ्रम भाज ॥
सतलोक बरसे पानि, धुनि निर्बान यहि मन बाज ॥
तोइ चेत चित दै प्रेम मगन, अनंद आरति साज ॥
घर राम आये जानि, भइनि सनाथ बहुरा राज ॥
जग जीवन सतगुरु कृपा पूरन, सुफल में जन काज ॥
धनि भाग दूलनदास तेरे, भक्ति तिलक बिराज ॥

कोइ बिरला यहि बिधि नाम कहै ॥

मंत्र अमोल नाम दुइ अच्छर, बिनु रसना रट लागि रहै ॥
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सुरति धरनि दिढाइ गहै ॥
दिन औ राति रहै सुधि लागी, यहि माला यहि सुभिरन है ॥
जन दूलन सतगुरन बतायो, ताकी नाव पर निब है ॥

मन वहि नाम को धुनि लाउ ।

रटु निरंतर नाम केवल, अवर सब बिसराउ ॥
साधि सूरति आपनो, करि सुवा सिखर चढ़ाउ ॥
पोखि प्रेम प्रतीत तें कहि राम नाम पढ़ाउ ॥
नाम ही अनुराग निसु दिन, नाम के गुन गाउ ॥
बनी तौ का अबहिं आगे और बनी बनाउ ॥
जगजीवन सतगुरुबचन साचे, साच मन माँ लाउ ॥
करु बारन दूलनदास सतमाँ, फिरि न यहि जग आउ ॥

उपदेश

बोल मनुआँ राम राम ॥

सत्त जपना और सुपना, जिकर लावो अष्ट जाम ॥
समुझि बूझि बिचारि देखो, पिंड पिंजरा धूम धाम ॥
बालमांकि हवाल पूछो, जपत उलटा सिद्ध काम ॥
दास दूलन आम प्रभु की, मुक्ति करता सत्तनाम ॥

प्रानी जपि ले तू सत्तनाम ।

मात पिता सुत कुटुम्ब कबीला, यह नहिं आवैं काम ॥
 सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छुदाम ॥
 देना लेना जो कुछ होवै, करि ले अपना काम ॥
 आगे हाट बजार न पावै, कोइ नहिं पावै ग्राम ॥
 काम क्रोध मद लोभ मोह ने, आन बिछाया दाम ॥
 क्यों मतवारा भया बावरे, भजन करो निःकाम ॥
 यह नर देही कामन आवै, चल तू अपने धाम ॥
 अब की चूक माफ नहिं होगी, दूलन अचल मुकाम ॥

चलो चढ़ो मन यार महल अपने ॥

चौक चाँदनी तारे झलकैं, बरनत बनत न जात गने ॥
 हीरा रतन जड़ाव जड़े जहँ, मोतिन कोटि कितान बने ॥
 सुखमन पलंगा सहज बिछौना, सुख सोचो को मेरे मने ॥
 दूलनदास के साईं जगजीवन को आवै जग जग सुपने ॥

जोगी चेत नगर में रहो रे ॥

प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे ॥
 अंतर लाओ नामहिं की धुनि, करम भरम सब धो रे ॥
 सूरत साधि गहो सत मारग, भेद न प्रगट कहो रे ॥
 दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे ॥

बिनय

साईं तेरे कारन नैना भये बैरागी ।

तेरा सत दरसन चहाँ, कछु और न मांगी ॥
 निमु बासर तेरे नाम की, अंतर धुनि जागी ॥
 फेरत हौं माला मनौं, अँसुवन भरि लागी ॥
 पल की तजी इत उक्ति तैं, मन माया त्यागी ॥
 दृष्टि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी ॥
 मदमाते राते मनौं, दाधे बिरह आगी ॥
 मिलि प्रभु दूलनदास के, करु परम सुमागी ॥

साईं हो गरीब निवाज ॥

देखि तुम्हें धिन लागत नाहीं, अपने सेवक कै साज ॥
 मोहिं अस निलज न यहि जग कोऊ, तुम ऐसे प्रभु लाज ॥

और कछु हम चाहत माहीं, तुम्हरे नाम चरन तें काज ॥
दूलनदास गरीब निवाजहु, साईं जगजीवन महराज ॥

सुनहु दयाल मोहिं अपनावहु ॥
जन मन लगन सुधारन साईं मोरि बनै जो तुमहिं बनावहु ॥
इत उत चित्त न जाइ हमारा, सुरत चरन कमल लपटावहु ॥
तब हूँ अब मैं दास तुम्हारा, अब जिनि बिसरौ जिनि बिसरावहु ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, हमहूँ काँ भक्तन माँ लावहु ॥

साईं भजन ना करि जाइ ।
पाँच तसकर संग लागे, मोहिं हरकत धाई ॥
चहत मन सतसंग करनो, अधर बैठि न पाई ॥
चढ़त उतरत रहत छिन छिन, नाहिं तहँ ठहराई ॥
कठिन फाँसी अहै जग की, लियो सबहिं बभाई ॥
पास मन मनि नैन निकटहिं, सत्य गयो भुलाई ॥
जगजीवन सतगुरु करहु दाया, चरन मत लपटाई ॥
दास दूलन बास सत माँ, सुरत नहिं अलगाई ॥

साईं सुनहु बिनती मोरि ।
बुधि बल सकल उपाय हीन में, पाँयन परौं दोऊ कर जोरि ॥
इत उत कतहूँ जाइ न मनुवाँ, लागि रहै चरनन माँ डोरि ॥
राखहु दासहिं पास आपने, कस को सकिहँ तोरि ॥
आपन जानि कै मेटहु मेरे, औगुन सब क्रम भ्रम खोरि ॥
केवल एक हितु तुम मेरे, दुनियाँ भरी लाख करोरि ॥
दूलन दास के साईं जगजीवन, माँगौं सत दरस निहोरि ॥

प्रभु तुम किहेउ कृपा बरियाईं ।
तुम कृपाल मैं कृपा अलायक, समुझि निवजतहु साईं ॥
कूकुर धोये होइ न बाछा, तजै न नीच निचाई ।
बगुल होइ न मानस बासी, बसहिं जे विपै तलाई ॥
प्रभु सुभाउ अनुहार चाहिये, पाय चरन सेवकाई ।
गिरगिट पौरुष करै कहा लागि, दौरि कंडोरे जाई ॥
अब नहिं बनत बनाये मेरे, कहत अहाँ गोहराई ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, समरथ लेहु बनाई ॥

प्रेम

घनि मोरि आज सुहागिनि षड़िया ।

आज मोरे अंगना संत चलि आए, कौन करो मिहमनिया ॥
निहुरि निहुरि मैं अंगना बुहारौ, मातौ मैं प्रेम लहरिया ।
भाव कै भात प्रेम कै फुलका, शान की दाल उतरिया ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलहरिया ।

अब तो अफ़सोस मिटा दिल का, दिलदार दीद में आया है ।
संतो की सुहबत में रह कर, हक़ हादी को सिर नाया है ॥
उपदेस उग्र गहि सत्त नाम, सोइ अष्ट जाम धुनि लाया है ।
मुरशिद की मेहर हुई योकर, मज़बूत जोश उपजाया है ॥
हर वक्त तसौवर में सूरत, मूरत अदर भलकाया है ।
बू अली क़लंदर औ फ़रीद अबरेज वही मत गाया है ॥
कर सिदक सबूरी लामकान, अल्लाह अलख दरसाया है ।
लखि जन दूलन जगजीवन पूर, महबूब मेरे मन भाया है ॥
ज़ाबिन्द ख़ास ग़ैबी हज़ूर, वह दिल अंदर में लाया है ।

हुआ है मस्त मसूरा चढ़ा सूली न छोड़ा हक़ ।

पुकारा इश्कबाजों को अहै मरना यही बरहक़ ॥
जो बोले आशिक़ों यारों, हमारे दिल में है जी शक़ ॥
अहै यह काम सूरों का, लगाये पीर से अब तक ॥
शम्सतबरेज़ की सीक़त, जहाँ में जाहिरा अब तक ॥
निज़ामुद्दीन सुल्ताना, सभी मेटे दुनी के धक़ ॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहें जीते रहे जब तक ॥
हुआ हाफ़िज़ दिवाना भी भये ऐसे नहीं हर यक़ ॥
सुना है इश्क मजनों का, लगी लैला की रहती ज़क़ ॥
जलाकर खाक तन कीन्हा, हुए वह भी उसी माफ़िक़ ॥
दुलनजन को दिया मुरशिद पियाला नाम का थक़थक़ ॥
वही है शाह जगजीवन, चमकता देखिये लक़लक़ ॥

फ़रुना

हमरे तो केवल नाम अधार ।

पूरन नाम काम दुइ अच्छर, अंतर लागि रहै खटकार ॥
दासन पास बसै निमु बासर, सोवत जागत कबहुँ न न्यार ॥

अरध नाम टेरेत प्रभु धाये, आय तुरत गज गाढ़ निवार ॥
 जन मन रंजन सब दुख भंजन, सदा सहाय परम हित प्यार ॥
 नाम पुकारत चीर बढ़ायो, द्रुपदी लज्जा के रखवार ॥
 गौरि गनेस औ सेष रटत जेहिँ, नारद सुक सनकादि पुकार ॥
 चारहु मुख जेहिँ रटत बिधाता, मंत्र राज सिव मन सिंगार ॥

भक्तन रामचरन धुनि लाई ॥

चारिहु जुग गोहारि प्रभु लागे, जब दासन गोहराई ॥
 हिरनाकुस रावन अभिमानी, छिन माँ खाक मिली ॥
 अविचल भक्ति नाम की महिमा, कोऊ न सकत मिटाई ॥
 कोऊ उसवास न एकौ मानहु, दिन दिन की दिनताई ॥
 दूलनदास के साईं जगजीवन, है सतनाम दुहाई ॥

गरीब दास

यारी साहब की शिष्यपरंपरा से अलग परंतु इसी धारा में एक संत महात्मा शरीब दास जी हुए हैं। इनका जन्म बैशाख सुदी १५ सं० १७१४ में रोहतक (पंजाब) के छुड़ानी नामक एक गाँव में एक जाट के वंश में हुआ था। ये कबीर को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही केवल २२ वर्ष की अवस्था में ही एक बड़े ग्रंथ की रचना आरंभ की थी जिसमें सत्रह हजार चौपाई और साखी इनकी और सात हजार कबीर की हैं। इनका शरीर पात ६१ वर्ष की अवस्था में भादों सुदी २ सं० १८३५ में हुआ। उपर्युक्त चौपाइयों और साखियों से चुनकर बेलबेडियर प्रेस से २०५ पृष्ठों का इनका संग्रह प्रकाशित हुआ है जिसमें इनके प्रायः ९५० पद्य हैं। कबीर को ये अपना गुरु तो मानते ही थे अतः स्वभाव ही से इनकी रचना शैली कबीर की रचना शैली से बहुत कुछ मिलती जुलती है। भाव और विचार भी अधिकतर वैसे ही मिलते हैं। परमात्मा और संतों में वही अनन्य भक्ति और आस्था ढोंग और पाखंडर आदि की वही चुटौली आलोचना तथा साधना और परोपकार आदि में वही अखंड विश्वास मिलता है। एक बात में विभिन्नता अवश्य पाई जाती है। इनके पदों में बहुत से पद पुराणों से लिए हुए जान पड़ते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन धर्म ग्रंथों को ये श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे। कबीर की भाँति इनके पदों में वेद पुराण की निंदा नहीं मिलती।

निम्नलिखित पद बेलबेडियर प्रेस के संग्रह से चुने गए हैं।

गरीब दास

भक्ति का अंग

पारस हमरा नाम है लोहा हमरी जात ।
जड़ सेती जड़ पलटिया तुम कूँ केतिक बात ॥
बिना भगति क्या होत है धूँ कूँ पूछे जाहि ।
सवा सेर अन्न पावते अटल राज दिया ताहि ॥
बिना भगति क्या होत है कासी करवत लेह ।
मिटै नहीं मन बासना बहु बिधि भरम सँदेह ॥
भगति बिना क्या होत है भरम रहा संसार ।
रत्ती कंचन पाय नहि रावन चलती बार ॥
संग सुदामा संत थे दारिद्र का दरियाव ।
कंचन महल बकस दिये तंदुल भेंट चढ़ाव ॥

बिनती का अंग

साहब मेरी बिनती सुनरे गरीब निवाज ।
जल की बूँद महल रचा भला बनाया साज ॥
साहब मेरी बिनती सुनिये अरस अवाज ।
मादर पिदर करीम तू पुत्र पिता के लाज ॥
साहब मेरी बिनती कर जोरैँ करतार ।
तन मन धन कुरवान है दीजै मोहिं दीदार ॥
पाँच तत्त के महल में नौ तत का इक और ।
नौ तत से इक अंगम है पारब्रम्ह की पौर ॥
सुरत निरत मन पवन कूँ करो एकत्तर यार ।
द्वादस उलट समोय ले दिल अंदर दीदार ॥
चार पदारथ महल में सुरन निरत मन पौन ।
सिव द्वारा खुलि है जबै दरसैँ चौदह भौन ॥
सील संतोष विवेक बुध दया धर्म इक तार ।
अकल यकीन इमान रख गही बस्तु निज सार ॥
साहब तेरी साहबी कैसे जानी जाय ।
त्रिसरेनू से भीन है नैनों रहा समाय ॥

लै का अंग

लै लागी जब जानिये जग सँ रहै उदास ।
 नाम रटै निर्भय कला हर दर हीरा स्वांस ॥
 लै लागी तब जानिये जग सँ रहै उदास ।
 नाम रटै निरदुंद होय अनहद पुर में बास ॥
 लै लागी तब जानिये हरदम नाम उचार ।
 एकै मन एकै दिसा साँई के दरवार ॥
 लै लागी तब जानिये हर दम नाम उचार ।
 धीरे धीरे होयगा वह अल्लह दीदार ॥

रंखता

अजब महरम मिला ज्ञान अंग है खुला ॥
 परख परतीत सुँ दुंद भागा ॥
 सबद की संघ में फ़ंद मनुवा गया ॥
 बिरह धनघोर में हंस जागा ॥
 अष्ट दल कमल मध जाप जपा चलै ॥
 मूल कुँ बंध बैराट छाया ॥
 रिकुटी तीर बहु नीर नदियां बहै ॥
 सिंध सरवर भरे हंस न्हाया ॥
 खेचरी भूचरी चाचरी उनमुनी ॥
 अकल अगोचरी नाद हेरा ॥
 सुन्न सतलोक कुँ गमन संसा किया ॥
 अगम पुर धाम कछू महबूब मेरा ॥
 अच्छुर की डोर धनघोर में मिल गई ॥
 भेद भेदा में करतार महली ॥
 दास गरीब यह विषम बैराग है ॥
 समझ देखी नहीं बात सहली ॥

बिरह की पीर जस गात गदा नहीं ।
 बोझ पिंजर गया अस्थि सूखा ॥
 जनभुनी रेख धुन ध्यान निःचल भया ।
 पांच जहूद तन ठीक फूँका ॥
 लगेगी दाह जब धाहै देता फिरै ।
 बिरह के अंग में रावता है ॥

पलक आंभू भरै ध्यान बिरहन घरै ।
 प्रेम रस रीत तन धोवता है ॥
 हाड तन चाम गूदा असत गलत है ।
 उगौ गात तन रुई रंगा ॥
 पिंड तन पीन उदीत बैराग है ।
 देत है मद्ध जूँ कूक बंगा ॥
 हंस परमहंस से जा मिला ।
 बिरह बियोग यह जोग जोगी ॥
 दास गरीब जहँ पास प्यासे फिरैं ।
 पीवते सही रस भोग भोगी ॥

बेत

बंदे जान साहब सरवे ।

पिदर मादर आप कादर नहीं बूल परिवार वे ॥
 जल बूंद से जिन साज साजा लहम दरिया नूर वे ॥
 है सकल सरबंग साहब देख निकट न दूर वे ॥
 जिन्द अजूनी बेन मूनो जागता गुरु पीर है ॥
 उलट पटन मेरु चढ़ना लहम दरिया तीर वे ॥
 अजब साहब है सुभान खोज दम का कीन वे ॥
 तिर्कुटी के घाट चढ़कर ध्यान धर दुरबीन वे ॥
 अजब दरिया है हिरंवर परम हंस पिछान वे ॥
 आब खाक न बाद आतिस ना जमीँ असमान वे ॥
 अलख आप सलाह साहब कुर्स कुंज जहूर वे ॥
 अर्स ऊपर महल मालिक दर भिलमिला दूर वे ॥
 मौला करीम अदाय खूंसी धुन सोहंसी जाप वे ॥
 बांग रोउ निमाउ कलमा है सबद गरगाप वे ॥
 निर्भय निहंगम नाद बाजै निरख करटुक देख वे ॥
 अरसी अजूनी जिद जोगी अलख आदि अलेख वे ॥
 मर्दी महल न तासु ये आसन अभी ऐन वे ॥
 पाजी गुलाम गरीब तेरा देखता सुख चैन वे ॥

बंदे देख ले निज मूल वे ।

कला केटी असंख धारा अधर निर्गुन फूल वे ॥
 है अबंध असंग अवगत अधर आदि अनाद वे ॥

कमल मोती जगमगै जहं सुरत निरत समाध वे ॥
 भवन भारी वन सोभा भजो राम रहीम वे ॥
 साहब धनी कूँ याद कर जप अलह अलख करीम वे ॥
 मादर पिदर है संग तेरे बिछुरता नहिँ पलक वे ॥
 कायम कला कुरवान जाँ खालिक बसे है खलक वे ॥
 खालिक धनी है खलक में तूँ भलक पलक समीप वे ॥
 अरस आसन है बिहंगम अधर चसमें जाय वे ॥
 बैराग में इक घाट है उस घाट में इक द्वार है ॥
 उस द्वार में इक देहरा जहँ खूब है इक यार वे ॥
 सुभ है दिलदार साहब दखना नहिँ भूल वे ॥
 गरीब दास निवास नग पर भई सेजां सूल वे ॥

बंदे अधर बेड़ा चलत वे ।

सांच मान सुगंध साहब नहीं करिया लगत वे ॥
 अधर पुहमी अधर छिः गिरवर अधर सरवर ताल वे ।
 अधर नदियाँ बहत वे जहँ अधर हीरे लाल वे ॥
 अधर नौका अधर खेवट अधर पानी पवन वे ।
 अधर चंदा अधर सूरज अधर चौदह भुवन वे ॥
 अधर बागं अधर बेलं अधर कूप तलाव बे ।
 अधर माली कुहकता है अधर फूल खिलाव वे ॥
 अधर बंगला अधर डेवड़ी अधर साहब आप वे ।
 अधर पुर गढ़ हूँट नगरी नाभि नासा माथ वे ॥
 हूँठ हाथ हजूर हासिल अधर पर इक अधर वे ।
 गर बदासं अधर ध्यानी ओढ़ि एके चहर वे ॥

राग कल्याण

कबहुँ न होवै मैला नाम धन कबहुँ न होवै मैला ॥
 चेतन हो कर जड़ कूँ पूजै मूरख मूढर बैला ।
 जिस दगड़े पंडित उठ चालै पीछे पड़ गया गैला ॥
 औघट घाटी पंथ बिकट है जहां हमारी सैला ।
 बिनय बंदगी महेसा कीजै बोक बनै के खेलै ॥
 कूकर सूकर खर कीजैगा छांड सकल बद फैला ।
 घरही कोस पचास परत हैं ज्यूँ तेली के बैला ॥
 पीसत भांग तमाखू पीवै मूरख मुख सँ मैला ।
 सहस इकी सौ छः से दम है निस बासर तूँ लैला ॥

गरीब दास सुन पार उतर गये अनहद नाद धुरैला ।
 घट ही में चंद चकोरा साधो घट ही चंद चकोरा ॥
 दामिनि दमकै घनहर गरजै बोलै दादुर मोरा ।
 सतगुरु गस्ती गस्त फिरावै फिरता ज्ञान ढँढोरा ॥
 अदली राज अदल बादसाही पाँच पचीसो चोरा ।
 चीन्हे सबद सिंह धर कीजै होना गारत गोरा ॥
 त्रिकुटी महल में आसन मोरो जहँ न चलै जम जोरा ।
 दास गरीब भक्त को कीजै हुआ जात है भोरा ॥
 नाम निरंजन नीका साधो नाम निरंजन नीका !
 तीरथ बरत थोथर लागें जप तप संजय फीका ॥
 भजन बंदगी पार उतारै समरथ जीवन जीका ।
 करम कांड ब्योहार करत है नाम अभय पद टीका ॥
 कहा भयो छत्र की छांह चलैया राजपाट दिहली का ।
 नाम सहित वे बतन भक्ता है दर दर मांगै भीखा ॥
 आदि अनादि भक्ति है नौधा सुनो हमारी सीखा ॥
 गरीबदास सतगुरु की सरनै गगन मँडल में दीखा ॥

राग परज

लेखा देना रे धनी का लेखा देना रे ॥ टेक ॥
 रागी राग उचारहीं गावत मुख बैना रे ।
 हस्ती घोड़े पालकी छाँड़ी सब सैना रे ॥
 रोकड़ ढकी धरी रही सब जेवर गहना रे ।
 फूँक दिया मैदान में कुछ लेन न देना रे ॥
 मुगदर मारै सीस में जम किकर दहना रे ।
 उतर चला तागीर हो ज्यूं मरदक सहना रे ॥
 फूला सो कुम्हलात है चुनिया सो दहना रे ।
 चित्रगुप्त लेखा लिया जय कागद पहना रे ॥
 चलिये अब दीवान में सतगुरु से कहना रे ।
 मुसकिल से आसान हो ज्यूं बहुर मरै ना रे ॥
 बोया अपना सब लुनै पकरै हम अहना रे ।
 चरन कलम से ध्यान से छूटै सब पैना रे ॥
 परानन्दना संग है जाके कमधैना रे ।
 गरीबदाम फिर आवही जो अजर जरै ना रे ॥

भजन कर राम दुहाई रे ॥ टेक ॥

जनम अमोला तुझ दिया नर देही पाई रे ।
 देही कूँ या ललचहीं सुर नर मुनि भाई रे ॥
 सनकादिक नारद रटैं चहूँ बेदा गाई रे ।
 भक्ति करै भवजल तरै सतगुरु सिरनाई रे ॥
 मिरगा कठिन कठोर है कहो कहां डहकाई रे ।
 कस्तूरी है नाभ में बाहर भरमाई रे ॥
 राजा बूड़े मान में पंडित चतुराई में ।
 ज्ञान गली में बंक है तन धूर मिलाई रे ॥
 उस साहब कूँ याद कर जिन सौंज बनाई रे ।
 देखत ही हो जाता है परवत से राई रे ॥
 कंचन काया छार होय तन ठरंक जराई रे ।
 मूरख भोंदूँ बावरे क्या मुक्त कराई से ॥
 चमरा जुरहा तर गये और छीपा नाई रे ।
 गनिका चढ़ी विमान में सुर्गापुर जाई रे ॥
 स्योरी मिलनी तर गई और सदन कसाई रे ।
 नीच तरे तो सँ कहुँ नर मूढ़ अन्याई रे ॥
 सबद हमारा साँच है और ऊँट की बाई रे ।
 धुएँ कैसे घौलहार तिहुँ लोक चलाई रे ॥
 कलविष कसमल सब कटै तन कंचन काई रे ।
 गरीबदास निज नाम है नित परवी न्हाई रे ॥

राग बँगला

बंगला खूब बना है जोर जामें सूरजचंद कडोर ॥ टेक ॥

या बंगला के द्वादस दर है मध्य पवन परवाना ।
 नाम भजे तो जुग जुग तेरा नातर होत बिराना ॥
 पांच तत्त और तीन गुनन का बंगला अधिक बनाया ।
 या बंगले में साहब बैठा सतगुरु भेद लखाया ॥
 रोम रोम तरागन दमकै कली कली दर चंदा ।
 सूरज मुखी सबत्तर साजै बांधा परमानंदा ॥
 बंगले में बैकुंठ बनाया सप्त पुरी सैलाना ।
 भुवन चतुरदस लोक बिराजै कारीगर कुरवाना ॥
 या बंगले में जाप होत है ररं कार धुन सेसा ।
 सुर नर मुनि जन माला फेरै ब्रम्हा बिस्नु महेसा ॥

गन गंधर्प गलतान ध्यान में तेंतिस कोट बिराजै ।
 सुर निरन्ती बीना सुनिये अनहद नादु बाजै ॥
 इला पिंगला पेंग परी है सुखमन भूल भुलंती ।
 सुरत सनेही सबद सुनत है राग होत सनरतंती ॥
 पांच पचीसो मगन भये हैं देखो परमानंदा ।
 मन चंचल निहचल भया हंसा मिलै परम सुख सिंघा ॥
 नभ की डोर गगन सँ बांधै तौ इहां रहने पावै ।
 दसो दिसा सँ पवन भुकोरै काहे दोस लगावै ॥
 आठो बदत अलहैया बाजै होता सबद टंकोरा ।
 गरीबदास यूँ ध्यान लगावै जैसे चंद चकोरा ॥

राग आसावरी

मन तू चल रे सुख के सागर ।
 जहाँ सब्द सिंध रतनागर ॥ टेक ॥
 कोट जनम जुग भरमत हो गये ।
 कछू न हाथ लगा रे ॥
 कूकर सूकर खर भया बौरे ।
 कौवा हंस बिगारै ॥
 कोट जनम जुग राजा कीन्हा ।
 मिठी न मन की आसा ।
 भित्तुक हो कर दर दर हांडा ॥
 मिला न निरगुन आसा ॥
 इंद्र कुबेर ईस की पदवी ।
 ब्रम्हा बरनु धर्मराया ॥
 विश्वनाथ के पुर कूँ पहुँचा ।
 बहुर अपूठा आया ॥
 संह जनम जुग मरते हो गये ।
 जीवत कू न मरै रे ॥
 द्वादस मद्ध महल मठ बौरे ।
 बहुर न देह धरै रे ॥
 दोजख भिस्त सबै तैं देखै ।
 राज पाट के रसिया ॥
 तिरलोकी के तिरपत नाहीं ।
 यह मन भोगी खसिया ॥

सतगुरु मिलै तो इच्छा भेटै ।
 पद मिल पदहि समाना ॥
 चल हंसा उमदेश पठाऊँ ।
 जहं आद अमर स्थाना ॥
 चारि मुक्ति जहं चंपी करिहैं ।
 माया हो रहि दासी ॥
 दास गरीब अभय पद परसे ।
 मिले राम अविनासी ॥

संतो मन की माला फेरो, यह मन काहर जात हेरो ॥ टेक ॥
 तीन लोक औ गुवन चतुरदस एक पलक फिर आवै ॥
 बिनहीं पनखों उड़ै पखेरु याका खोज न पावै ॥
 तत की तसबी सुरत सुमिरनी दृढ़ के धागे पोई ।
 हर दस नाम निरंजन साहब यह सुमिरन कर लोई ॥
 किलयं ओअं हिरियं सिरियं सोहं सुरत लगावै ।
 पंच नाम गायत्री गैत्री आतम तत्त बगावै ॥
 रंकार उच्चार अनाहद रोम रोम रस तालं ।
 कर की माला कौन काम जब आतम राम अवदालं ॥
 सुरग पताल सृष्टि में डोलै सर्व लोक सैलानी ।
 यह मन भैरो भूत बितालं यह मन अलख बिनानी ॥
 यह मन ब्रह्मा बिस्नु महेस इंदर बरुन कुबेरं ।
 मन ही धर्मराय है भाई सकल दूत जम जेरं ॥

अवधू तेल न मन का लाहा चीन्हो ज्ञान अगाहा ॥ टेक ॥
 कासी गहन बहन भये प्राणी प्रान नहात है माहा ।
 बिना राम जेानी नहि छूटै भरमै भूल भुलाना ॥
 सहस मुखी गंगा नहि न्हाते खोदें ऊजड़ बाहा ।
 नारद बयास पूछ सुकदे कूं चारो बेद उगाहा ॥
 पंथ पुरातम खोज लिया है चाले अवगत राहा ।
 सुकदे ज्ञान सुना कर संकर का मिटी न मन की दाहा ॥
 दो तपिया गुन तप कू लागै बदे हू हू हाहा ।
 लगा सराप परे भौसागर कीन्हे गज अरु गाहा ॥
 सिव संकर के तिलक किया है नारद सीधा साहा ।
 ब्रह्मादिक ने चोरी रचिया किया गौर का ब्याहा ॥
 इक सौ आठ गये तन परलै बहुर किया निरबाहा ।

सिव के संग गौरजा उधरी मिट गया काल उसाहा ॥
 ज्यूं सरपा की पूंछ पकर करि अंदर उलटा जाहा ॥
 नीर कबीर सिंध सुखसागर पद मिल गया जुलाहा ॥
 हमरा ज्ञान ध्यान नहिं बूझा समझ न परी अगाहा ॥
 दास गरीब पार कस उतरै भेंटा नहीं मलाहा ॥

राग बिलावल

रब राजिक तू महरमी करतार विनानी ।
 अबगत अलख अलाह तू कादिर परवानी ॥
 खालिक मालिक मेहरबां सरबंगी स्वामी ।
 निःचल अचल अगाध तू कुखरत से न्यारा ॥
 गंध पुहुप ज्यूं रम रहा फूला गुलजारा ।
 राम रहीम करीम तू कुदरत से न्यारा ॥
 पूरन ब्रम्ह परम गुरु अकाल अविनासी ।
 सब्द अतीत बिहंगमा किस काल उदासी ॥
 अनुरागी निहतंत कूं तन मन सब अरपूं ।
 सीस करूँ तिस वारने चित चंदन चरचूं ॥
 उस साहब महबूब कूं कर हर दम मुजरा ।
 चित से नेक न बीसरूँ दिल अंदरहुजरा ॥

मतवालों के महल की सूफी क्या पावै ।
 अरस खुरदनी खीर है सतगुरु बतलावै ॥
 सुन्न दरीबेक हाट है जहं अमृत चुवता !
 ज्ञानी घाट न पावहीं खाली सब कबिता ॥
 टां बिकै नहिं मोल कूं जो तुलै न तौला ।
 कूंची सब्द लगाय कर सतगुरल पट खोला ॥
 फूल भरै भाठी सरै जहं फिरै पियाले ।
 नूर महल बेगमपुरा घूमै मतवाले ॥
 त्रिकुटी सिंध पिछान ले तिरबेनी धारा ।
 बेड़े बाट बिहंगमी उतरै भौपारा ॥
 अठसठ तीरथ ताल हैं उस तरवर माहीं ।
 अमर कंद फल नूर के त्रेइ साधू खाहीं ॥

चिता मन कूं चेत रे मुत्ताहल पाया ।
 सतगुर मिलिया जौहरी जिन्ह भेद बताया ॥टेक॥

हीरामनि पारस परस लख लाल नरेसा ।
 मोती जवाहर जौगिया वह दुर्लभ देखा ॥
 काम भे कल बनुच्छु हैं दरबार हमारे ।
 अठ सिधि नौ निधि अगने नित कारज सारे ॥
 राग छुतीसौ कधि सत्रै जहं रास रखीती ।
 ताल तंभूरे तूर हैं अवगत निरबानी ॥
 सुन में बाजै डुगडुगी बरवें पद गावैं ।
 चल हंसा उस देस कूं जो बहुर न आवै ॥
 नूरमहल गुलजार है दिज सब्द समाये ।
 हंसा बहुरि न आवहीं सत लोक सिधाये ॥

मैं अमली निज नाम का मद खूब चुवाया ।

पिया पियाला प्रेम का सिर सांटे पाया ॥ टेक ॥

गन गंधर्व जोधा बड़े कैसे ठहराया ।
 सील खेत जन रंग में सतपुर सर लाया ॥
 पांच सखी नित संग हैं कैसे हैं त्यागी ।
 अमर लोक अनहद नुरते सोई अरागी ॥
 परपंची पाकर लिया विरहे का कंषा ।
 जहं संख पद्म उजियार है भलकत है चंपा ॥
 कुंभ कलाली भर दिया महुंगा मद नीका ।
 और अमल नापाक है सब लागत फीका ॥
 एक रती पावे नहीं बिन सीस चढ़ाये ।
 वह साहब राजी नहीं नर मुंड मुड़ाये ॥
 सजन सुराही हाथ है अमृत का प्याला ।
 हम बिरहिनी बिरहें रंगी कोई पूछै हाला ॥
 चोखा फूल चुवाइयो बिरहिन के ताई ।
 मतवाला महबूब है मेरो अलख गुसाई ॥
 प्रेम पियाला पीय कर मैं भई दिवानी ।
 कहा कहूं उस देस की कुछ अकथ कहानी ॥
 बरवे राग सुनाय कर गल डारी फांसी ।
 गांठ धुली खुलै नहीं साजन अविनासी ॥
 गुभ की बात किस कूं कहूं कोई महरम जानै ।
 अगली पिछली मत गुई बेधी इक तानै ॥

सुन्न सरोवर हंस मन मोती चुग आया ।

अगर दीप सतलोक में ले अनर भराया ॥ टेक ॥

हंस हिरंवर हेत हैं हैरान निसानी ।
 सुख सागर मुक्ता भये मिल बारह बानी ॥
 पिंड अंड ब्रह्मंड से वह न्यारा नादू ।
 सुन्न समझिया बेग रे गये बाद बिबादू ॥
 सतगुर सार जु गाइया धर कूंची ताला ।
 रंग महल में रोसनी घट भया उजाला ॥
 दीपक जोड़ा नूर का ले अस्थिर बाती ।
 बहुर भौ भोजल आवहीँ निरगुन के नाती ॥

ज्ञान तुरंगम पाड़िया ताजी दरियाई ।
 पासर घाली प्रेमी की चित चाबुक लाई ॥टेका॥
 प्रेम धाम से ऊतरे हुक्मी सैलानी ।
 सबद सिंध मेला करें हंसों के दानी ॥
 असंख जुग परलै गये जय के गुन गाऊं ।
 ज्ञान गुरज है दस्त में ले हंस चिताऊं ॥
 सील हमारा सेल है औ छिमा कटारी ।
 तत्त तीर तक मार हूँ कहं जात अनारी ॥
 बुधि हमारी बंदूक है दिल अंदर दारू ।
 प्रेम सपयाला सारका चित चकमक झारू ॥

दरदमंद दरवेस है बेदरद कसाई ।
 संत समागम कीजिये तज लोक बड़ाई ॥ टेक ॥
 डिंभी डिंभ न छोड़हीं मरघट के पूता ।
 घर घर द्वारे फिरत हैं कलजुग के कूता ॥
 डिंभ करें डुंगर चढ़ तप होम अंगीठी ।
 पंच अग्नि पाखंड है यह मुक्ति बसीठी ॥
 पाती तोरे क्या हुआ बहु पान झरोरे ।
 तुलसी बकरा खा गया ठाकुर क्या बौरे ॥
 पीतल ही का थाल है पीतल का लोटा ।
 जड़ मूरत कूं पूजते आवैगा टोटा ॥

नजर निहाल दयाल हैं मेरे अंतरजामी ।
 सोलह कला सपूरना लख बारह बानी ॥
 उलट मेरुडंड चढ़ गये देखो सो देखा ।
 संख केाटि रवि झिलमिलें गिनती नहिं लेखा ॥
 बरन बरन के तेज हैं पंचरंग परेवा ।

मृत कोट असंख है जा मध इक देवा ॥
जाके ब्रह्मा भाङ्ग देत हैं संकर करै पखा ।
सेस तरन चंपी लगै अगमी गढ़ बंका ॥
धरत ऐनक दुरबीन कूं धुन ध्यान लगावै ।
उलट कमल अरसा चढ़ै तब नजरो आवै ॥

सत्त कहन कूं राम हैं दूजा नहिं देवा ॥
ब्रम्हा बिस्न महेस से जा की करते सेवा ॥
जप तप तीरथ थोथरे जा की क्या आसा ।
कोट जग पन दान से जम कटै फांसा ॥
इहां देन उहां लेन हैं यह मिटै न भगरा ।
बिना पंथ की बाट है पावै को दगरा ॥
बिन ही इच्छा देन है सो दान कहावै ।
फल बंछै नहिं तासु का अमरोपुर जावै ॥
सकल दीप नौ खंड के छत्री जिन जीते ।
सो तो पद में ना मिले विद्या गुन चीते ॥

राम कहे मेरे साध कूं दुख मत दीजो कोय ।
साध दुखावै मैं दुखी मेरा आपा भी दुख होय ॥ टेक ॥
हिरनाकुस उदर विदारिया में ही मारा कंस ।
जो मेरे साध कूं आय दुखावै जाका खोऊ बंस ॥
पहुँचूंगा छिन एक में जन अपने के हेत ।
तैंतीस कोट की बन्य छुटाई रावन मारा खेत ॥
बला बधाऊ संत की परगट करिहै मोय ।
गरीबदास जुलहा कहै मेरा साध न दहियो कोय ॥

करो निवेरा रे नरो । जम मांगे बाकी ।
कर जोड़े घर राय खड़े सतगुरु है साखी ॥ टेक ॥
माटी का कलबूत है सतगुरु का साजा ।
उस नगरी डेरा करौ जहं सबद अवाजा ॥
नूर मिलैगा नूर में माटी में माटी ।
कोइक साधू चढ़ गये यस औघट घाटी ॥
रोम रोम में राम है अजपा जप लीजै ।
सुरत सुहंगम डोर गहि प्याला मधु पीजै ॥
जम की फरदी ना चढ़ै सोई जन सूर ।
परसा दास गरीब है जोगेसर पूरा ॥

राग काफी

मन मगन भया जब क्या गावै ॥ टेक ॥

ये गुन इंद्रि दमन करैगा बस्तु अमोली सो पावै ।
 तिरलोकी की इच्छा छाड़े जग में विचरै निरदावै ॥
 उलटी सुलटी निरति निरंतर बाहर से भीतर लावै ।
 अधर सिंहासन अविचल आसन जहं उहां रुसती ठहरावै ॥
 त्रिकुटी महल में सेज बिछी है द्वादस अंदर छिप जावै ।
 अमर अजर निज मूरत सूरत ओअं सोहं दम ध्यावै ॥
 समल मनोहर पूरन साहिब बहुर नहीं भौजल आवै ।
 गरीबदास सतगुरुप विदेही सांचा सतगुरु दरसावै ॥

तारेंगे तहकीक सतगुरु तारेंगे ॥ टेक ॥

घट ही में गंगा घट ही में जमुना ।

घट ही में जगदीस ॥

तुम्हरे ग्याना तुम्हरे ध्याना ।

तुम्हरे तारन की परतीत ॥

मन कर धीरा बांध ले बौरे ।

छांड खेय पिछलों की रीति ॥

दास गरीब सतगुरु का चेलच ।

टारैं जम की रसीत ॥

जल थल साथी एक है रे ।

डंगर डहर दयाल ॥

दसों दिसा के दरसन ।

ना कहैं जोरा काल ॥

देवतीर्थ

काष्ठजिह्वा स्वामी

देवतीर्थ जी काशी के निवासी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। पहले यह शैव थे पर बाद में अयोध्या के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त राम सखे जी के प्रभाव में आकर वैष्णव हो गए थे। उन का शिष्यत्व इन्होंने स्वीकार कर लिया था पर पहले दोनों में बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ था जिस में रामसखे जी का नीचा देखना पड़ा था। इस से विरक्त हो कर देवतीर्थ जी ने अपनी जीभ छिदवा कर उस में लकड़ी की एक सलाई डाल ली थी। तभी से इन का नाम काष्ठजिह्वा स्वामी पड़ गया था। काशी विश्वनाथ के प्रसिद्ध मंदिर की एक सीढ़ी में इनका नाम खुदा हुआ है।

इनकी रचनाओं से सीता-राम की बड़ी अनन्य भक्ति प्रगट होती है और इसी से ये "सीतारमैया" काष्ठजिह्वा स्वामी कहे जाते हैं।

इनके मुख्य ग्रंथ ये हैं— 'विनयामृत' 'रामलगन' 'रामायण' 'परिचर्या', 'वैराग्य प्रदीप' और 'पदावली'। इस अंतिम ग्रंथ की रचना सं० १८९७ में हुई थी। यह काशी के भूतपूर्व महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी (वर्तमान महाराज के पितामह) के गुरु थे और इन के पद अब भी काशी दरबार में गाये जाते हैं।

काष्ठ जिह्वास्वामी

प्रेम

चीखि चीखि चसकन से राम मुधा पीजिये ।
राम चरित सागर में रोम रोम भीजिये ॥
राग द्वेस जग बढ़ाई काहे को छीजिये ।
परदुखन देखत हीं आप सों पसीजिये ।
तोरि तारि खैंचि खांचि स्तुति को नहिं गीजिये ।
जा में रस बनो रहै वही अर्थ कीजिये ॥
बहुत काल संतन के दोऊ चरन भीजिये ॥
देव दृष्टि पाइ बिमल जुग जुग लौं लीजिये ॥

बसो यह सिय रघुवर को ध्यान ।

स्यामल गौर किसोर बयस दोउ, जे जानहुँ की जान ॥
लटकत लट लहरत स्तुति कुंडल गहनन की भूमकान ।
आपुस में हँसि हँसि कै दोऊ, खात खियावत पान ॥
जहँ बसंत नित महमह महकत, लहरत लता बितान ।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग में, अलि कोकिल कर गान ॥
ओहि रहस्य मुख रस को कैसे, जानि सकै अज्ञान ।
देवहु की जहँ मति पहुँचत नहिं, थकि गये वेद पुरान ॥

बिनय

मैं तो मन ही मन पछिताय रह्यो ॥

साज समाज सरस पायहु के, कर से रतन गँवाय रह्यौ ॥
यह नर तन यह काया उत्तम, बिन सतरंग नसाय रह्यौ ।
पढ़्यौ गुन्यौ सिख्यौ औरन को, आप विषय लपटाय रह्यौ ॥
चित्र विचित्र करम को धागा, जनम जनम अरुभाय रह्यौ ।
काहे को कबहुँ यह सुरभूहि दिन दिन अधिक फँसाय रह्यौ ॥
सदा मुक्ति को ज्ञान अगम लखि, गले हार पहिराय रह्यौ ।
जिव को सूत सिवहि से अरुभै, विनती देव सुनाय रह्यौ ॥

उपदेश

समुझ बूझ जिय में बंदे, क्या करना है क्या करता है ।
गुन का मालिक आपै बनता, अरु दोष राम पर धरता है ॥

अपना धरम छोड़ि औरों के, ओछे धरम पकरता है ।
 अजब नसे की गफलत आई, साहिव को नहिं डरता है ॥
 जिनके खातिर जान माल से, बहि बहि के तू मरता है ।
 वे क्या तेरे काम पढ़ेंगे, उनका लहना भरता है ॥
 देव धरम चाहे सो करि ले, आवागमन न टरता है ।
 प्यारे केवल राम नाम से, तेरा मतलब सरता है ॥

कोई सफा न देखा दिल का, साँचा बना झिलमिल का ।
 कोइ बिल्ली कोइ बगुला देखा, पहिरे फकीरी खिलका ॥
 बाहर सुख से ज्ञान छुँटते, भीतर कोरा छिलका ॥
 भजन करन में गजब आलसी, जैसे थका मँजिल का ।
 औरन के पीसन में सुरमा, जैसे बड़ा सिल का ॥
 पढ़े लिखे कुछ ऐसेहि वैसे, बड़ा धंमड अकिल का ।
 जहरी बचन यों मुख से निकलें, साँप निकलता बिल का ॥
 भजन बिना सब जप तप झूठा, झूठा तवक्का फजल का ।
 क्या कहिये गुरु देव न पाया महरम आँख के तिल का ॥

— — —

नामदेव जी

नाम देव का जन्म दमासेर दर्जी के घर गोना बाई के गभ से पंढरपुर में हुआ था। महाराष्ट्र देश में इनका जन्म काल प्रायः ११५२ शाका अर्थात् सं० १३२७ माना जाता है। परंतु कुछ विद्वान इनका जन्मकाल इस के १०० वर्ष बाद अर्थात् सं० १४२७ में मानते हैं। इस का कारण वह यह बतलाते हैं कि चौदहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र प्रदेश में मुसलमानों का प्रवेश नहीं हो सका था और नामदेव की कविता मुसलमानों से विशेष रूप से प्रभावित है। इस लिए इनका जन्म काल अंततः १०० वर्ष पीछे ही मानना ठीक जान पड़ा। जो हो यह विषय अभी विवादग्रस्त है।

इनके गुरु एक कोई ज्ञानेश्वर महाराज कहे जाते हैं जो कि नाथपंथी (गुरु गोरखनाथ के अनुयायी) धारा के एक प्रसिद्ध जोगी गहनी नाथ (सं० १२८०—१३३०) के शिष्य निवृत्तिनाथ कं छोटे भाई और शिष्य थे।

नामदेव जी शैशव से बड़े भक्त थे और गृहस्थ होते हुए भी संसार से एक प्रकार से तटस्थ हो कर सदा संतसमागम में लीन रहा करते थे। इसी से इनका पुश्तैनी व्यवसाय (कपड़े सीने का) भी नष्ट हो गया और इन्हें घोर दरिद्रता का सामना करना पड़ा। पर ये कभी भी अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए। इनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी पर बाद में इन्हें हिंदी से प्रेम हुआ और बहुत से पद इन्होंने हिंदी में भी रचे। पंढरपुर के आदि देव बिठोबा को ही ये अपना इष्टदेव मानते थे। इनके बहुत से पद आदिग्रंथ में संगृहीत हैं। खोज में इनके चार ग्रंथ—‘नामदेव जी का पद,’ ‘राग सोरठ का पद,’ ‘नामदेव जी की वाणी,’ और ‘नामदेव जी की साखी’ मिले हैं। इनकी भक्ति बड़ी गंभीर थी और ये बड़े भारी गवैये भी कहे जाते हैं। बहुत से चमत्कार भी इनके संबंध में प्रसिद्ध हैं। कबीर और रैदास ने इन्हें आदर से स्मरण किया है। इस से स्पष्ट है कि संतों में इन का स्थान बहुत ऊँचा था।

नामदेव जी

भेद

एक अनेक व्यापक पूरक, जित देखौं तित सोई ।
माया चित्र विचित्र विमोहत, विरला बूझै कोई ॥
सब गोविंद है सब गोविंद है, गोविंद बिन नहिं कोई ।
सूत एक मनि सत्तसहस जस, ओत पोत प्रभु सोई ॥
जल तरंग अरु फेन बुद बुदा, जल तें भिन्न न होई ।
यह प्रपंच परब्रह्म की लीला, विचरत आन न होई ॥
मिथ्या भ्रम अरु स्वप्न मनोरथ, सत्य पदारथ जाना ।
सुकिरत मनसा गुरु उपदेशी, जागत ही मन माना ॥
कहत नामदेव हरि की रचना, देखो हृदय विचारी ।
घट घट अंतर सर्व निरंतर, केवल एक मुरारी ॥

प्रेम

भाई रे इन नैनन हरि पेखो ।
हरि की भक्ति साधु की संगति, सोई यह दिल लेखो ।
चरन सोई जो नचत प्रेम से, कर सोई जो पूजा ॥
सीस सोई जो नवै साधु के, रसना और न दृजा ।
यह संसार हाट को लेखा, सब को बनिजहिं आया ॥
जिन जसलादा तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया ।
आतम राम दँह धरि आयो, ता में हरि को देखो ॥
कहत नामदेव बलि बलि जैहाँ, हरि भजि और न लेखो ॥

नाम महिमा

तत्त गहन को नाम है, भजि लीजै सोई ।
लीला सिंध अगाध है, गति लखै न कोई ॥
कंचन मेरु सुमेरु, हय गज दीजै दाना ।
कोटि गऊ जो दान दे, नहिं नाम समाना ॥
जोग जग्य तें कहा सरै, तीरथ व्रत दाना ।
ओसै प्यास न भागि है, भजिये भगवाना ॥
पूजा करि साधू जानहिं, हरि को प्रन धारी ।
उनतें गोविंद पाइये, वे पर उपकारी ॥
एकै मन एकै दासा, एकै व्रत धरिये ।
नामदेव नाम जहाज है, भव सागर तरिये ॥

सदना जी

ये जाति के कसाई थे और इनका समय पंद्रहवीं शताब्दी का पिछला हिस्सा कहा जाता है। ये जीवहत्या नहीं करते थे। उदाहरण के रूप में इनका केवल एक पद दिया जा सका।

सदना जी

त्रिनय

नृप कन्या के कारने, एक भयो मेघ धारी ।
 कामारथो सुवारथो, वा की पैज सँवारी ॥
 तब गुन कहा जगत-गुरा, जो कर्म न नासै ।
 सिंह सरन कत जाइये, जो जंजुक प्रासै ॥
 एक बूंद जल कारने, चातक दुख पावै ।
 प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै ॥
 प्रान जो थके थिर नहीं, कैसे बिरमावो ।
 बूढ़ि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो ॥
 मैं नाहीं कछु हौं नहीं, कछु आहि न मोरा ।
 औसर लज्जा राख लेहु, सदना जन तोरा ॥

धर्मदास

इनका भी समय पंद्रहवीं शताब्दी का पिछला हिस्सा था कबीर के बाद
उनको गद्दी इन्हीं को मिली । यह कबीर के प्रधान शिष्यों में से थे और इनका जन्म
स्थान बायोगढ़ रीवाँ, और सत्सग स्थान काशी था ।

धर्मदास

शब्द

गुरु मिले अगम के बासी ॥ टेक ॥

उनके चरन कमल चित दीजे, सतगुरु मिले अविनासी ।
उनकी सीत प्रसादी लाँजे, छूटि जाय चौरासी ॥
अमृत बुंद भरै घट भीतर, साध संत जन लासी ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी ॥

गुरु मोहिं खूब निहाल कियो ॥ टेक ॥

बूझत जात रहे भय सागर पकरि के बाँहि लियो ।
चौदह लोक बसैं जम चौदह, उनहुँ से छोरि लियो ॥
तिनुका तोरि दियो परवाना, माथे हाथ दियो ।
नाम सुना दियो कट्टी माला, माथे तिलक दियो ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी पूरा लोक दियो ॥

नैन दरस बिन मरत पियासा ॥ टेक ॥

तुमहीं छाँड़ि भजूँ नहिं औरे, नाहिं दूसरी आसा ॥
आठो पहर रहूँ कर जोरी, करि लेहु आपन दासा ॥
निमु बासर रहूँ लव लीना, विनु देखे नहिं बिस्वासा ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, देहु निज लोक निवासा ॥

साहेब चितवो हमरी ओर ॥ टेक ॥

हम चितवै तुम चितवो नाहीं, तुम्हरो हृदय कठोर ॥
औरन को तो और भरोसा, हमें भरोसा तोर ॥
सुखमनि सेज बिछाओं गगन में, नित उठि कैरौ निहोर ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर बंदी छोर ॥

मैं हेरि रहूँ नैना सो नेह लगाई ॥ टेक ॥

राह चलत माहिं मिलि गये सतगुरु, सो सुख वरनि न जाई ॥
देह के दरस मोहिं बौरागे, लै गये चित्त चुराई ॥
छवि सन दरस कहाँ लागि वरनी, चाँद सुरज छिपी तब जाई ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई ॥

मेरा पिया बसै कौने देम हो ॥ टेक ॥

अपने पिया को दुंदुन हम निकसीं, केइ न कहत सनेस हो ॥
 पिया कारन हम भई हैं बावरी, धरो जागिनिया के मेस हो ॥
 ब्रह्मा बिस्तु महेस न जानै, का जानै सारद सेस हो ॥
 धनि जो अगम अगोचर पइलन, हम सब सहत कलेस हो ॥
 उहाँ के हाल कबीर गुरु जानें, आवत जात हमेस हो ॥

सजन से प्रीति मोहिं लागी, दरस को भयो अनुरागी ॥
 नहीं वैराग मोहिं आवै, साहेब के गुन नितै गावै ॥
 अभरन भूपन तनै साजुँ, पिया को देखि हँस हुलसुँ ॥
 भया है गैव का डका, चलो जहं दस है बंका ॥
 बिना अतु फूल एक फूला, भंवर रँग देखि के भूला ॥
 तकत छवि टरै ना टारी, होय तिस बरन बलिहारी ॥
 कहे धरमदास कर जोरी, साहेब से अरज है मोरी ॥

पिया बिन मोहिं नीद न आवे ॥ टेक ॥

खन गरजै खन विजुली चमकै । ऊपर से मोहिं भाकि दिखावै ॥
 सासु ननद घर दारुनि आहूँ । नित मोहिं बिरह सतावै ॥
 जोगिन है कै मैं बन बन दूँदूँ । केऊ न सुधि बतलावै ॥
 धरमदास बिनवै कर जोरी । केइ नेरे केइ दूर बतावै ॥

पिया बिन मोहिं नीक न लागै गाँव ॥ टेक ॥

चलत चलत मेरे चरन दुखित भे । आंखिन परिगै धूर ॥
 आगे चलूँ पंथ नहिं सूझै । पाछे परै न पांव ॥
 सासुरे जाउं िया नहिं चीन्हें । नैहर जात लजाउं ॥
 इहां मेर गांव उहां मेर पाही । बीचे अमरपुर धाम ॥
 धरमदास बिनवै कर जोरी । तहां गांव न ठांव ॥

साहेब दीनबंधु हितकारी ॥ टेक ॥

केटिन ऐगुन बालक करई । मात पिता चित एक न धारी ॥
 तुम गुरु मात पिता जीवन के । मैं अति दीन दुखारी ॥
 प्रनतपाल करना निधान प्रभु । हमरी और निहारी ॥
 जुगन जुगन से तुम चलि आये । जीवन के हितकारी ॥
 सदा भरोसे रहूँ तुम्हारे । तुम प्रतिपाल हमारी ॥
 मेरे तुमहीं सत सुकृति ही । अंतर और न धारी ॥
 जानत हो जग के तन मन की । अब कस मोहिं बिसारी ॥

को कहि सकै तुम्हारी महिमा । केहि न दिख्यो पद भारी ।
धरमदास पर दाया कीन्ही । सेवक अहाँ तुम्हारी ॥

साहेब मेरो चूक हमारी ॥ टेक ॥

बार बार मोहिं डंड भयो है, चूक भई अति भारी ॥
अब हम आये निकट तुम्हारे, अब मो तनहिं निहारो ।
करनामय तुम नाम धराये, तुम समरथ अब मेरो ॥
ऐसी बिपति भई मोहिं ऊपर, काइ न हीत हमारो ।
तरस्त जीव रहै निस बासर, जानि जनहिं तुम दौ रौ ॥
अब की चूक छिमा कर साहेब, अब सनमुख हँ हेरो ।
तुम सतगुरु सकल सुख दाता सब्द पान तै तारो ॥
धरमदास बिनवै कर जोगी, करौ बंदगी तेरो ।

साहेब बूड़त नाव अब मेरी ॥ टेक ॥

काम क्रोध की लहर उठतु है, मोह पवन भक्तमेरी ॥
लोभ मेरे हिरदे घुमरतु है, सागर वार न पारी ।
कपट की भँवर परतु है बहुतै, वा में बेडा अटको ॥
काल फांस लियो है दूबारे, आया सरन तुम्हारी ।
धरमदास पर दाया कीन्ही, काठि फंद जिव तारी ।
कहै कबीर सुनो हो धर्मन, सतगुरु सरवन उबारी ॥

साहेब मेरी ओर निहारो ॥ टेक ॥

परजा पुत्र अहाँ मैं साहेब, बहुत बात मैं टारी ॥
हैं मैं केाटि जनम को पारी, मन बच करम असारो ।
एकौ कर्म छुटे ना कबहूँ, बहु विधि बात बिगारो ॥
हैं अपराधी बहुत जुगन को, नइया मोर उबारो ।
बदी छेार सकल सुखदाता, करनामय करत पुकारो ॥
साँस चढाई पाप को मोटरी, आयो तुम्हारे दुबारे ।
को अस हमरे भार उतारे, तुमहीं हेतु हमारो ॥
धरमदास यह बिनती बिनवै, सतगुरु मोके तागे ।
साहेब कबीर हंस के राजा, अमर लोक पहुँचावो ॥

साहेब कौन कमी घर तेरो ॥ टेक ॥

भूखे अन्न पियासे पानी, कपडा से तन धेरो ।
जो कुछ न्यामत सबै महल में, लरच खजाना ढेरो ।

खाक से पाक कियो पल माहीं, है समरथ बल तेरो ॥
 भव से काढ़ि कियो तरनी पर, खेइ लगावो सबेरो ।
 रहे न घाम छाँह दुनिया में, रहे न जम की चेरो ॥
 राव रंक रंक से राजा, छिन में बाजत तूरो ।
 मानो सत्त भूठ जनि जानो, सत्त बचन है पूरो ।
 धरमदास चरनन पर बिनवै, तुम गति सब भरे पूरो ॥

अब मोहिं दरसन देहु कबीर ॥ टेक ॥
 तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर ।
 अमृत भोजन हंसा पावै, सब्द धुनन की खीर ॥
 जहं देखों जहं पाट पटंवर, ओढ़न अंबर चीर ।
 धरमदास की अरज गोसांई, हंस लगावो तीर ॥

साहेब कौन देस मोहिं डारा ॥ टेक ॥
 वह तो देस अमर हंसन को, येहि जग काल पसारा ।
 देवहु सब्द अजर हंसन को, बहुरि न हूँ है अवतारा ॥
 निरगुन सरगुन दुंद पसारा, परि गये काल की धारा ।
 जहां देस है सत्त पुरुष का, अजर अमी का अहारा ॥
 धरमदास बिनवै को जोरी, अबकी अरज हमारा ।

साहेब लेइ चलो देस अपाना ॥ टेक ॥
 जम की त्रास सही ना जाई, केहि विधि धरोमैं ध्याना ।
 माया मोह भरम की मोटरी, यह सब काल कलपना ॥
 माया मोह भरम सब काटी, दीजै पद निखाना ।
 अमर लोक वह देस सुहैला, हंसा कीन्ह पयाना ॥
 धरमदास बिनवै को जोरी, आवागवन नसाना ।

तुम सतगुरु हम सेवक तुम्हरे ॥ टेक ॥
 कोई मरै औ गरियावै, दाद फिरियाद करय तुम हीं से ।
 सोवत जागत के रखपाला, तुमहीं छांडि भजों नहिं औरै ॥
 तुम धरनीधर सब्द अनाहद, अमृत भाव करो प्रभु सगरे ।
 तुम्हरी बिनय कहां लागि बरनां, धरमदास पद गहे हैं तुम्हरे ॥

चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो ।
 अगम महल चढ़ि चलो, जहां पिय से मिलो ॥
 मिलि चलो आपन देस, जहां छुधि छाजई तन ।
 सेत सब्द जहं खिले, हंस होइ आवही ॥

अग्र बस्तु मिलि जाय, सन्द टकसार हो ।
चहुं दिसि लागों भलरिया, तो लोक असंख हो ॥
अंबु दीप एक देस, पुरुष जहं रहहि हो ।
कहैं कबीर धर्मदास, बिछुरन नहिं होइ हो ॥

धनुष बान लिये ठाढ़, जोगिनि एक माया हो ।
छिनहिं में करत बिगार, तनिक नहिं दाया हो ॥
भिर भिर बहै बयार, प्रेम रस डोलै हो ।
चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो ॥
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिं आया हो ।
पिया बिनु सून मँदिलवा, बोलन लागे कागा हो ॥
कागा हो तुम कारे, कियो बटबारा हो ।
पिया मिलने की आस, बहुरि ना छूठहि हो ॥
कहैं कबीर धर्मदास, गुरु सँग चेला हो ।
हिल मिलि करो सतसंग, उतरि चलो पारा हो ॥

चलो सखि देखन चलिये, दुलह कबीर हैं ।
उन सों जुरल सनेह, जठर सों राखि हैं ॥
पांच तत्त को आसा, त्यागो बेगि कै ।
छांडो भिलि मिलि तेह, पुरुष गम राखि कै ॥
लांघो औघट घाट, पंथ निजि ताकि कै ।
गहो सुकृति जिन डोर, अगम गम राखि कै ॥
चार कोस आकास, तहाँ चढ़ि देखिये ।
आगे मारग भीनि, तो सूरत बिबेकिये ॥
मुकुट एक अनूप, छत्रसिर साजिहै ।
दुरत अग्र को चौर, सन्द धुनि गाजिहै ॥
सेत धुजा फहराय, भँवर तहं गुंजहीं ।
नितहिं उठै भनकार, गगन धनधोरहीं ॥
कहैं कबीर धर्मदास सों, मूल उचारिये ।
आगम गम्भ बताइ कै, हंस उचारिये ॥

बधावा संत सजाऊ हों ।

जा बिधि सतगुरु मेहर करैं, सोई बिधि बतलाऊ हो ।
रतन पटोरा डारि पांवड़े, सन्मुख जाऊ हो ॥
सब सखियां मिलि बाँटत बधाई, मंगल गाऊ हो ।

षसि षसि चंदन अँगना लिपाऊँ, चौक पुराऊँ हो ॥
 मेवा नरियर पान मिठाई, संजम सबै मंगाऊ हो ।
 खौर आम घृत अमृत भोजन, संत जिमाउल हो ॥
 चरन धोइ चरनामृत लेऊँ, सीस नवाऊँ हो ।
 जब मोरे साहेब तखत बिराजै, आरत लाऊँ हो ।
 पान पर्वान दया से पाऊँ, सब मिलि गाऊँ हो ॥
 जब मोरे सतगुरु पलंग पधारै, चरन दबाऊँ हो ।
 धरमदास याही बिधि करि, सतलोक सिधाऊँ हो ॥

साहेब सत गुरु घर आया हो ।

अँगना मोर जगमग भया, सुख संपति लाया हो ॥
 आधि गई मेरी हे सखी, आज सज्जन पाया हो ॥
 धन बिधाता लेख लिखा, निज भाग जगाया हो ॥
 कोमल बचन अँग दया घनेरी, कल्प वृच्छ की छाया हो ॥
 धन जननी अस संत जिन जाया, अनंद बधाया हो ॥
 जप तप नेम धर्म बहु कीन्हा, रसना नामहिं गाया हो ॥
 धरमदास सतगुरु सतसंग से । छिन में पर यह पाया हो ॥

होली

हमारी उमरिया होली खेलन की ।
 पिय मोसों मिल के बिछुर गयो हो ॥
 पिय हमरे हम पिय की पयारी ।
 पिय बिच अंतर परि गयो हो ॥
 पिया मिलै तब जियों मोरी सजनी ।
 पिया बिना जियरा निकल गयो हो ॥
 इत गोकुल उत मथुरा नगरी ।
 बीच सगर पिय मिलि गयो हो ॥
 धरमदास बिरहिनि पिय पावै ।
 चरन कंवल चित गहि रहो हो ॥

जग ये दोऊ खेलत होरी ।

माया ब्रह्मबिलास करत हैं, एक से एक बरजोरी ॥
 सच्चिदानन्द सरूप अखंडित, व्यापक है बस ठोरी ॥
 हिये नैन से परख परी जेहि, जोति समाय रहो री ॥
 जोवन जोर नैन सर मारते, ठहर सकै को कोरी ॥
 मदन प्रचंड उठै चमकारी, कामा करी चित चोरी ॥

निरगुन रूप अमान अखंडित, जा में गुन बिसरो री ॥
माया मुत्त अनंद कियो है, सबहि मैं अगर भरोरी ॥
कारन सुल्लभ स्थूल देंह धरि, भक्ति हेत तून तोरी ॥
धर्मनि विना दरस गुरु मूरत, कस भव पार भयो री ॥

गुरु बिन कौन हरै मोरी पीरा ॥ टेक ॥

रहत अली मलीन जुग, राई बिनत पाये एक हीरा ।
पाये हीरा रहे नहिं धीरा, लेइ के चले वोहि पारख तीरा ॥
सो हीरा साधू सब परखे, तब से भयो मन धीरा ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, अजर अमर गुरु पाये कबीरा ॥
आये दीन दयाल दया कीन्हा ॥ टेक ॥

दीन जानि गुरु समरथ आये, बिमल रूप दरसन दीन्हा ।
चरन धोइ चरनामृत लीन्हा, सिंहासन बैठक दीन्हा ॥
करं आरता प्रेम निछावर, तन मन धन अरपन कीन्हा ।
धरमदास पर दाया कीन्हा, सार सन्द सुमिरन दीन्हा ॥

बरनौ मैं साहेब तुम्हरे चरना ॥ टेक ॥

संतन सुख लायक दायक, प्रभु दुख हरना ।
सतजुग नाम अचित कहाये, खोडस हंस को दई सरना ॥
जेता नाम मुनिंद कहाये, मधुकर विनि को दई सरना ।
द्वापर करुनामय कहलाये, इंद्र मती के दुख हरना ॥
कलजुग नाम कबीर कहाये, धर्मदास अस्तुति बरना ।

सत नामै जपु जग लड़ने दे ॥ टेक ॥

यह संसार कांट की बारी, अरुभि सरुभि के मरने दे ।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुके तो भुँकने दे ॥
यह संसार भादों की नदिया, डूबि मरै तेहि मरने दे ।
धरमदास के साहेब कबीरा, पथर पूजै तो पुजने दे ॥

नैनन आगे ख्याल घनेरा ॥ टेक ॥

जैहि कारन जग डोलत भरमे ।
सो साहेब घट लीन्ह बसेरा ॥
का संभा का प्रात सबेरा ।
जहं देखू जहं साहेब मेरा ॥
अर्ध उर्ध बिच लगन लगो है ।
साहेब घट में कीन्हा डेरा ॥
साहेब कबीर एक माला दीन्हा ।
धरमदास घट ही बिच फेरा ॥

सतगुरु कहत नाम गुन न्यारा ॥ टेक ॥
 कोइ निर्गुन कोइ सर्गुन गावै, कोइ किरतिम कोइ करता ।
 लख चौरासी जीव जंतु में, सब घट एकै रमिता ॥
 सुनो साधु निरगुन की महिमा, बूझै बिरला कोई ।
 सरगुन फंदै सबै चलत है, सुर नर मुनि सब कोई ॥
 निर्गुन नाम निश्चिछुर कहिये, रहे सवन से न्यारा ।
 निर्गुन सर्गुन जम कै फंदा, वोहि के सकल पसारा ॥
 साहेब कबीर के चरन मनावो, साधुन के सिर ताजा ।
 धरमदास पर दाया कीन्हा, बांह गहे की लाजा ॥

मेरे मन बसि गये साहेब कबीर ॥ टेक ॥
 हिंदू के तुम गुरु कहावो, मुसलमान के पीर ॥
 दोऊ दीन ने भगड़ा माडेव, पायो नहीं सरीर ।
 सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति धीर ॥
 वेद कितेब मते के आगर, दोउ दीनन के पीर ।
 बड़े बड़े संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर ॥
 धरमदास की बिनय गुसाई, नाव लगावो तीर ।
